विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष-6 अंक-21 जनवरी - मार्च, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष-6	अंक-21	जनवरी-मार्च, 2021
Year - 06	**Volome - 21**	**January-March, 2021**

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

आलोचन दृष्टि प्रकाशन,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

दूरभाष :

9580560498 / 9451949951 / 7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 रामसजन पाण्डेय,** कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)।
- **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयए शिलांग, मेघालय।
- **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जिम्मेंदारी नहीं होगी और किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में होगा।

संपादकीय

आलोचना के कई प्रदेश एवं अंतर–प्रदेश होते हैं जिनमें हम जीवन भर गुजरते/विचरते रहते हैं। गुजरते/विचरते रहने का अपना अनुभव होता है, जो दिन–प्रति–दिन बढ़ता जाता है। पर, इस अनुभव की अभिव्यक्ति, आवश्यक उपादानों के अनुरूप अभिव्यक्त होती रहती है। यह आवश्यक उपादान व्यक्तिगत वैचारिक–मूड्स एवं सामाजिक दृश्यांकन के अनुरूप ही अधिकतर अभिव्यक्त होता है, किंतु इस यात्रा एवं अंतर–यात्रा की कभी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। शायद्, पूर्ण अभिव्यक्ति कर पाना असंभव भी है। इसीलिए कई बार बिहारी के दोहे 'कागद पर लिखत न बनत... मेरे हिय की बात' के आधार पर सांकेतिक अभिव्यक्ति करके आगे बढ़ जाना पड़ता है या फिर बढ़ने के लिए बाध्य/अभिशप्त होना पड़ता है। मतलब यह है कि अभिव्यक्ति कभी पूर्ण नहीं हो सकती या नहीं की जा सकती। अतः जो अभिव्यक्ति हुई है, वह किसी भी क्षेत्र की ही क्यों न हो ? अधूरी ही कही जा सकती है, और इस अधूरी–अभिव्यक्ति की ही हम लगातार अधूरी–अभिव्यक्ति(आलोचना) ही करते रहते हैं, जिसका निष्कर्ष भी अधूरा ही रहता है या कहा जा सकता है। मेरे कहने का आशय यह है कि हम जहाँ पर खड़े हैं, वहीं पर ही हम अपनी वैचारिक यात्रा एवं अंतर–यात्रा में सन्निहित रहते हैं, उसके पहले या बाद के/पर नहीं। अस्तु, इसकी यात्रा एवं अंतर–यात्रा ही हम सबका अभीष्ठ है, मंजिल नहीं। और, मंजिल कुछ होती भी नहीं, शायद्। इसी यात्रा में हम कुछ सीखते हैं, कुछ सिखाते हैं। कुछ सुनते हैं, कुछ सुनाते हैं। कुछ पढ़ते हैं, कुछ पढ़ाते हैं। कुछ कहते हैं, कुछ कहलाते हैं। कुछ लिखते हैं, कुछ लिखाते भी हैं। ये सीखने–सिखाने का, सुनने–सुनाने का, पढ़ने–पढ़ाने का, कहने–कहाने का एवं लिखने–लिखाने का सिलसिला सदैव गतिमान रहता है। यह हर व्यक्ति का अपना–अपना हो सकता है। मुक्तिबोध के कथन 'हर–एक छाती में आत्मा अधीरा है.... प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है' के आधार पर हम इसे बेहतर समझ सकते है, और यह समझ सांकेतिक ही है। इसी सांकेतिक भाषा में हमें प्रत्येक छाती की महाकाव्य–रूपी पीड़ा की तलाश, संवेदनशील हो करके करनी है और अपने वर्तमान से गुजरते हुए, भविष्य को बेहतर बनाने की आकांक्षा में सन्निहित रहते हुए, आगे बढ़ना है।

'आलोचन दृष्टि' पत्रिका का यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल हो जाना– एक बड़ी एवं महनीय उपलब्धि है, जिसका श्रेय समस्त बौद्धिक वर्ग, 'आलोचन दृष्टि' के 'संरक्षक एवं सलाहकार मंडल', 'संपादक मंडल' एवं आप सभी सुधी लेखकों और पाठकों को जाता है। यूजीसी से प्राप्त जानकारी/सूचना के आधार पर 14 जून 2019 के बाद छपने वाले सभी शोध–लेख/आलेख यूजीसी के केयर लिस्ट में मान्य माने जायेंगे।

प्रस्तुत अंक में लगभग 100 शोध पत्रों/आलेखों में, 43 शोध–पत्रों/आलेखों को संपादक मंडल के निर्णय के अनुरूप ही प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें हिंदी भाषा के 33 शोध–पत्र/आलेख, और 10 अंग्रेजी भाषा के शोध–पत्र/आलेख, शामिल किए गए हैं। साथ ही, भारत में 'भाषा चिंतन की परंपरा' विषय पर होने वाले महत्त्वपूर्ण 'राष्ट्रीय वेबीनार' जो 12 से 14, जनवरी 2021 के बीच सम्पन्न हुआ, की समीक्षा भी प्रकाशित की जा रही है। इस तरह कुल 44 शीर्षकों में पत्रिका का यह अंक प्रकाशित करते हुए गर्व की अनुभूति हो रही है। इस अंक में प्रो. संजीव कुमार दुबे सर एवं प्रो. निरंजन कुमार सर ने अपना बहुमूल्य शोध–लेख भेजकर हमें अनुगृहीत किया है। विश्वास है कि पत्रिका में आगे भी अपने ऐसे ही महनीय शोध–लेख/आलेख भेजकर सहयोग प्रदान करेंगे। मैं दोनों प्राध्यापकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं इस अंक के सभी लेखकों के प्रति, अपने पाठकों के प्रति एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के प्रति– हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिनके सहयोग के चलते ही पत्रिका का यह कलेवर आपके समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। आशा है, कि आप सबका यह सहयोग हमें हमेशा मिलता रहेगा...।

31 मार्च, 2021।

विषयानुक्रमणिका

1.	देश-प्रेम, जन-हित और लोक-शिक्षा के कथाकार प्रेमचंद *प्रो. संजीव कुमार दुबे*	1-4
2.	'अंधेर नगरी' : हास्य और व्यंग्य से परे राष्ट्रवादी भाव-कृति *प्रो. निरंजन कुमार*	5-8
3.	निराला के आरंभिक उपन्यासों में प्रतिरोध की चेतना *क्रान्ति बोध*	9-14
4.	मध्यकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और 'खंजन नयन' *डॉ. सुनील कुमार मानस*	15-19
5.	समकालीन हिंदी कविता में स्त्री एवं दलित अस्मिता के स्वर *डॉ. दिनेश साहू*	20-25
6.	मन्नू भण्डारी की कहानियों में स्त्री-अस्मिता के स्वर *डॉ. योगेश कुमार तिवारी*	26-29
7.	भूमंडलीकरण के दौर में परिवर्तित होता हिंदी-सिनेमा *डॉ. नीरज शर्मा*	30-34
8.	महामारी और अरुणाचली लोक-जीवन *डॉ. जमुना बीनी*	35-40
9.	लंका के साहित्य और कला पर भारतीय-संस्कृति का प्रभाव *डॉ. मनोज कुमार*	41-45
10.	वानस्पतिक सम्पदा की महत्ता एवं उसके संरक्षण में अथर्ववेद की भूमिका *डॉ. उष्मा यादव*	46-48
11.	अमृता प्रीतम और बसंत कुमार की कहानियाँ (कथ्य एवं शैली के संदर्भ में) *डॉ. पठान रहीम खान*	49-53
12.	भाषा और भाषांतर : एक झाँकी *डॉ. रघु नाथ यादव*	54-58
13.	यथार्थवादी उपन्यासकार प्रेमचंद *डॉ. रमेश यादव*	59-62
14.	जैन ग्रंथों में वर्णित महिलाओं की स्थिति का अवलोकन *डॉ. रमेश कुमार विश्वकर्मा*	63-67
15.	निर्मला देवी के काव्य की प्रणय चेतना (वियोग पक्ष के संदर्भ में) *चिन्मयी मिश्र*	68-74
16.	सुभद्रा कुमारी चौहान का काव्य और राष्ट्रीय-चेतना *साधना गुप्ता*	75-78

17.	**भीमाभूयाँ उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन** *रघुनंदन महापात्र*	79-81
18.	**भारत का विश्व-बंधुत्ववादी सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद (रामधारी सिंह दिनकर...)** *तरुण पालीवाल*	82-87
19.	**कामकाजी-विवाहित-स्त्री का आत्मसम्मान : 'शाल्मली'** *विवेक गुप्ता*	88-91
20.	**आपातकाल की विभीषिका और हिन्दी उपन्यास** *पंकज कुमार सिंह*	92-95
21.	**काशीनाथ सिंह की रचनाओं में व्यंग्य** *नेहा गुप्ता*	96-98
22.	**ज्ञानप्रकाश पाण्डेय की गज़लों में विद्रोह के स्वर** *आरती देवी*	99-103
23.	**समावेशी शिक्षा की आवश्यकता (दिव्यांग विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में)** *सुधीर कुमार तिवारी*	104-106
24.	**भाषाओं की जननी के रूप में संस्कृत का योगदान** *रंजय कुमार पटेल एवं डॉ. मनीषा रानी*	107-111
25.	**'खण्डवारी कोट' (चन्दौली, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त पुरातत्विक अवशेषों...** *डॉ. संजय कुमार कुशवाहा*	112-115
26.	**भारतीय हिन्दी साहित्य एवं समकालीन राजस्थानी कला में कृष्ण का रूपांकन** *कमल किशोर कश्यप एवं डॉ. इन्दु जोशी*	116-118
27.	**प्राचीन भारत में चिकित्सा एवं शल्य-चिकित्सा विज्ञान** *डॉ. रूपेश कुमार गुप्ता*	119-121
28.	**उत्तम स्वास्थ्य और यौगिक अभ्यास** *शिव कुमार तिवारी*	122-123
29.	**छत्तीसगढ़ में विकास जनित विस्थापन पश्चात् पुनर्वास की वर्तमान स्थिति..** *डॉ. श्रद्धा गिरोलकर एवं मुकेश्वर सोनवानी*	124-130
30.	**ओशो और नई शिक्षा का स्वरूप** *रवि कान्त*	131-134
31.	**भारतीय समाज और अम्बेडकर की दृष्टि** *उमेश कुमार*	135-137
32.	**नालन्दा की गच-कला** *डॉ. संजय कुमार*	138-141

33. रघुवंश महाकाव्य में वस्तु-ध्वनि की चारुता 142-147
डॉ. सुमन कुमारी

34. भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ (राष्ट्रीय वेबिनार, 12-14 जनवरी 2021) 148-149
डॉ. दयानिधि मिश्र

35. **A STUDY ON YOUTH WING OF JANTA DAL (S) IN KARNATAKA** 150-153
Dr. DEEKSHITH KUMAR M.

36. **A STUDY OF THE MENACING GROWTH OF MOBLYNCHING...** 154-158
Dr. Shweta Kumari

37. **THE IDEA OF RIGHTS IN HUMAN RIGHTS AND FEMINISM...** 159-163
Dr. Deepti Acharya

38. **REFUGEES AT HOME : THE CRISIS OF REVERSE MIGRATION...** 164-168
Dr. Anil Kumar Teotia

39. **The Portraits of Women in Keats's early poems** 169-172
Dr. Nikhilesh Dhar

40. **Indian Governor General's Mission and Travancore - Cochin Vision** 173-175
DR. SURESH J.

41. **Diasporic Consciousness of Women in Chitra Banerjee Divakaruni's ...** 176-179
Mr. R. Kanagaselvam & Dr. T.S. Geetha

42. **Recently Discovered Early Historical sites of Keonjhar District, Odisha** 180-185
Dr. Paramatap Pradhan

43. **OTT Platform and Indian Experimental Film Maker : A Study ...** 186-189
Ram Pravesh Rai & Dhiraj Shukla

44. **A Study on The Customer Behaviour Towards the Acceptance of Dining...** 190-199
Satish Singh & Dr. Hardik Bavishi

देश-प्रेम, जन-हित और लोक-शिक्षा के कथाकार प्रेमचंद

प्रो. संजीव कुमार दुबे*

प्रेमचंद शिक्षक थे तथा अनेक रूपों में शिक्षा विभाग से जुड़े रहे। उनका लेखन मनोरंजन एवं मनबहलाव का साधन मात्र नहीं था। दरअसल वे अपनी कहानियों के माध्यम से जन शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। यह शिक्षा केवल स्कूली कक्षाओं और पाठ्यक्रमों तक सीमित नहीं थी, अपितु उनके लिए भी थी, जो कक्षाओं और पाठ्यक्रमों से बाहर रह गए थे। जीवन ने उन्हें औपचारिक पाठ्यक्रमों की परिधि में आने का अवसर ही नहीं दिया था। ध्यान रहे प्रेमचंद भारत के नवसाक्षरों के लिए लिख रहे थे। उस पाठक वर्ग के लिए लिख रहे थे जो पहली पीढ़ी का साक्षर था। उसकी सीमित समझ को सरलता से विकसित करने, समाज और देश के प्रति जिम्मेदारी के भाव को जागृत करने, उनके नैतिक उन्नयन के लिए जैसे कथानक, चरित्र, भाषा और शिल्प की जरूरत थी, प्रेमचंद ने उसी को अपनाया। प्रेमचंद न अपने समकालीन विद्वान आलोचकों की आंखों का सूरमा बनने के लिए लिख रहे थे न आज के कथित विमर्श वादियों के लिए, जो प्रेमचंद के लेखन के खिलाफ एक सुनियोजित निंदा अभियान में लगे हुए हैं।

प्रेमचंद ने कुल 280 कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से 194 मूलतः उर्दू में लिखी गई हैं। हिन्दी और उर्दू में प्रेमचंद के कथा लेखन की अवधि लगभग तीस वर्ष ठहरती है। औसतन उन्होंने एक कहानी प्रतिमाह लिखी है। इधर के कुछ शोधकों ने खोज निकाला है कि उन्होंने इतनी अधिक मात्रा में कहानियाँ पारिश्रमिक की लालच में लिखीं। जिसने सरकारी नौकरी को ठोकर मारी हो, वह थोड़े से पारिश्रमिक की लालच में कहानियों का अंबार लगाता जाएगा, ऐसा मानना कुचेष्टा ही कही जाएगी। गौरतलब है कि जब वे गोरखपुर में कार्यरत थे, तभी वहाँ 8 फरवरी, 1921 को गांधीजी का पदार्पण हुआ था। गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर नौकरी से त्यागपत्र देने का निर्णय करने में उन्होंने बस एक सप्ताह का वक्त लगाया। 16 फरवरी 1921 को उन्होंने अपनी बीस साल पुरानी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया था।

'प्रेमचंद और उनका युग' पुस्तक में आलोचक रामविलास शर्मा, कहानीकार प्रेमचंद और उपन्यासकार प्रेमचंद की गैरजरूरी तुलना करते हुए लिखते हैं कि "यदि कहानीकार प्रेमचंद और उपन्यासकार प्रेमचंद में एक को ही हिन्दी साहित्य में जगह देने की बात हो तो शायद उपन्यासकार प्रेमचंद को ही उस जगह के लिए चुना जाएगा। "उनके अच्छे से अच्छे और घटिया से घटिया उपन्यासों के बीच इतना बड़ा फासला न मिलेगा जितना उनकी बढ़िया और घटिया कहानियों के बीच मिलता है।" इस तरह वे प्रेमचंद की लगभग पचास कहानियों को 'बढ़िया' की श्रेणी में रखते हैं। किसी भी रचनाकार की सभी रचनाएँ कथित श्रेष्ठता के मापदंड पर खरी नहीं उतर सकतीं। पर एक शीर्षस्थ कहानीकार की कतिपय कमजोर कहानियों को घटिया जैसे खाते में नहीं डाला जा सकता। वह भी तब जब वह हिन्दी कथा रचना की नयी राह निकाल रहा हो।

प्रेमचंद के हिन्दी–उर्दू कथा क्षेत्र में आगमन के पूर्व अरब की रातें, सिंदबाद का जहाजी, बेताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, गुल बकावली, तोता–मैना, तिलिस्म–ए–होशरूबा आदि की धूम थी। ऐसे ही माहौल को लक्ष्य कर के आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन्नायक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1884 में आह्वान किया था कि "उन्हीं किताबों को पढ़िए जो आपके नैतिक उत्थान में योग देती हैं। विदेशी वस्तुओं और विदेशी भाषा पर भरोसा न कीजिए, अपनी भाषा में प्रगति कीजिए... अपने बच्चों के हाथ में मीर हसन की 'मसनवी' और 'इंदर सभा' पकड़ा कर उन्हें बर्बाद न कीजिए।... उसे अपनाइये जो देश और राष्ट्र के हित में है।" बंग

*** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर।**

भंग के खिलाफ आंदोलन से लेकर प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन तक के तीन दशकों के भारतीय जीवन की धड़कन, उसका संघर्ष, उसकी पराजय, उसके दुख–दर्द अपनी समस्त गहराई और व्यापकता के साथ अगर किसी एक भारतीय लेखक में मिल सकता है, तो वह लेखक कोई और नहीं प्रेमचंद ही हैं।

उर्दू में प्रकाशित अपने पहले कथा संग्रह 'सोजे वतन' की भूमिका में उन्होंने लिखा "हरेक कौम का इल्म और अदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। जो खयालात कौम के दिमागों को मतहर्रिक (सक्रिय) करते हैं और जो जज्बात कौम के दिलों में गूंजते हैं वो नज्म–ओ–नस्त (गद्य–पद्य) के सफों में ऐसी सफाई से नजर आते हैं जैसे आईने में सूरत। "कौम के नये और पुराने खयालात में जिंदगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और इस्लाहेतमद्दुन (सांस्कृतिक सुधार) की तजवीजें सोची जाने लगी। इस जमाने के कसम–व–हिकायत (किस्से तथा कहानी) ज्यादातर इसलाह(सुधार) और तज्दीद (नवीनता) ही का पहलू लिये हुए हैं। अब हिंदुस्तान के कौमी खयाल ने बलोगीयत (बालिगपन, बुद्धिमत्ता) के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे–वतन के जज्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। क्यूंकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? "ये चंद कहानियाँ इसी असर का आगाज हैं और यकीन है कि ज्यों–ज्यों हमारे खयाल वसीह (विस्तृत) होते जाएंगे इसी रंग के लिटरेचर को रोज–अफ्जों(प्रतिदिन बढ़ना) फरोग (उन्नत) होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) जरूरत है जो नयी नस्ल के जिगर पर हुब्बे वतन (देश प्रेम) की अजमत (महिमा) का नक्शा जमाये।" हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिका सरस्वती में अपने कहानी संग्रह की समीक्षा के प्रकाशन हेतु तत्कालीन यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखे पत्र में उन्होंने दावा किया कि "यह किताब नफाए–आम (जनहित) में लिखी गई है। इस लिहाज से कीमत भी कम रखी गई है। जाती (निजी) नफा मकशूद(उद्देश्य) नहीं। बर बख्ते रिव्यू, किताब मिलने का पता जो नीचे दर्ज है जरूर नोट फर्मा दीजिएगा, नवाजिश होगी।"

जनहित के उद्देश्य और नयी नस्ल के हृदय में देश प्रेम का नक्शा जमाने के लिए उन्हें राजद्रोह के आरोप झेलने पड़े। अपने पहले शाहकार को, अपनी ही आँखों के सामने जब्ती और जलाए जाने का दृश्य देखना आसान नहीं रहा होगा। एक नवोदित कथाकार के लिए यह कितनी बड़ी कुर्बानी थी, अंदाज लगाना मुश्किल नहीं। प्रेमचंद के लिए देश प्रेम मात्र भौगोलिक विस्तार तक सीमित नहीं था। उनका देश प्रेम जनता को सभी स्तर भेदों से परे धकेल कर मनुष्यता की सामान्य आधार भूमि पर प्रतिष्ठित करना था। आलोचक मधुरेश ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश' में प्रेमचंद पर राजद्रोह का आरोप लगाने वाली ब्रिटिश हुकूमत की नीयत का विश्लेषण करते हुए लिखा है "भारतीय कथा साहित्य में प्रेमचंद कदाचित पहले लेखक हैं, जिन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन के सन्दर्भ में इस जातीय सद्भाव (जो सोजे वतन की पांच कहानियों में अभिव्यक्त हुआ है) के महत्व को समझा और भारी जोखिम उठा कर उसके विकास का रास्ता तैयार किया।" जातीय सद्भाव और सांप्रदायिक सौहार्द का जैसा निरूपण प्रेमचंद की कहानियों में हुआ है, वह उनके समकालीन कहानीकारों में विरल है। आज के समय में प्रेमचंद के देश प्रेम को समझने की जरूरत और बढ़ गई है। देश प्रेम को संकुचित नवराष्ट्रवाद के कदमों तले रौंदे जाने से बचाना होगा। कथित राष्ट्रवाद को देश प्रेम का पर्याय मान लिये जाने के खतरे सामने आने लगे हैं।

प्रेमचंद भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में जन को भागीदारी के लिए प्रेरित, प्रभावित और प्रतिबिंबित करने वाले कथाकार थे। वे देश की सामजिक–सांस्कृतिक आजादी के स्वप्नद्रष्टा थे। वे भारतीय नवजागरण की सुदीर्घ परियोजना के महत्वपूर्ण कार्यकर्ता थे। वे सामाजिक सुधार के लिए व्यक्ति के अंतर और बाह्य को परिष्कृत करने की जरूरत पर बल देते थे। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की जितनी आलोचना उनके कथा साहित्य में मिलती है, वह उनके समकालीनों में दुर्लभ है। प्रेमचंद के लिए देश की स्वाधीनता का अर्थ राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण भर नहीं था। उनके लिए आजादी का मतलब सामाजिक संरचना के सबसे निचले पायदान पर रह रहे दलित–पीड़ित किसान, मजदूर, ग्रामीण स्त्री–पुरुष में सहज मानवीय जीवन की आकांक्षाओं का बिरवा रोपना था। उनकी कलम का उद्देश्य हाशिए पर जी रहे लोगों में आत्मबल भरना और

उत्साह का संचार करना था, जिससे वे समता और बराबरी का स्वप्न देख सकें। वास्तव में उनका लेखन स्तर भेद करने वाले सामाजिक ढांचे पर प्रहार करता था, जिसके चलते ऊंच–नीच का भेद सदियों से चला आता था। यही कारण है कि इस सामाजिक ढांचे में कथित रूप से ऊंचे पायदान पर स्थित सामंतों, जमींदारों, नौकरशाहों, वकीलों, पंडे–पुरोहितों को उन्होंने जमकर फटकार लगाई। उनके चरित्र की नग्नता को सामान्य जनता (पाठक) के सामने उघार कर रख दिया।

प्रेमचंद के कथा साहित्य में हृदय परिवर्तन की चर्चा बहुत हुई है। इस क्रम में उन्हें आदर्शवादी, आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी, यथार्थवादी आदि कोटियों में रखने की कोशिश आलोचकों ने की है। मेरी समझ से साहित्य वही है जो परिवर्तन की भूमिका रचता है। साहित्य समाज का दर्पण इसलिए भी होता है कि दर्पण में अपना अक्स देखने के बाद हम वैसे नहीं रह जाते जैसे पहले थे। इसे स्थूलतम और सूक्ष्मतम, दोनों अर्थों में लिया जा सकता है। गौर करने वाली बात है कि प्रेमचंद अपने पात्रों के हृदय परिवर्तन के माध्यम से अपने पाठकों के हृदय परिवर्तन में कामयाबी हासिल करने लगते हैं। यह उनके लेखन की अन्यतम उपलब्धि है। पात्रों के हृदय परिवर्तन द्वारा काल्पनिक समाधान देने वाले प्रेमचंद का लेखकीय विकास यह है कि वे पाठकों के हृदय को उद्वेलित कर, उसकी विवेक चेतना को जागृत कर एक वास्तविक और स्थायी समाधान के लिए जन–समाज (पाठक समाज) को तैयार करते हैं। प्रेमचंद का लेखन हिन्दी पाठकों के मानसिक–शैक्षिक विकास के सामानांतर विकसित हुआ है। कहानी में वर्णित जीवन स्थितियों को बड़ी गहराई, गंभीरता और विश्वसनीयता से चित्रित कर पात्रों के स्वाभाविक हृदय परिवर्तन को वे जिस तरह संभव करते थे उससे पाठक में भी आत्म निरीक्षण और अपेक्षित परिवर्तन की पृष्ठभूमि निर्मित होती है।

प्रेमचंद ने किसान जीवन पर कहानियाँ ही नहीं लिखी हैं अपितु साहित्य की जमीन पर किसानी की है। किसान अपनी फसल बोने के पहले खेत को तैयार करता है। प्रेमचंद ने भी खेती शुरू करने के पूर्व साहित्य की जमीन पर फल–फूल रहे अनुपयोगी खर–कतवार की सफाई की। कहने की जरूरत नहीं कि उनके आगमन के पूर्व हिंदी और उर्दू में किस तरह की कथा प्रवृत्तियों का बोलबाला था। इस तरह के लेखन के आशिकों की बहुसंख्या थी। हिंदी–उर्दू के नवसाक्षर पाठक इसी तरह की रचनाओं के पठन–पाठन में प्रशिक्षित हुए थे। उन्हें दूसरे तरह की रचनाओं की ओर झटके से मोड़ देना आसान न था। प्रेमचंद ने अपने पूर्व की कथा प्रवृत्ति से प्रेम करने वाले पाठकों को न सिर्फ अपनी ओर खींचा अपितु बड़ी संख्या में नये पाठक निर्मित किए। ध्यान रहे एक किसान जब फसल उगाता है तो सिर्फ अनाज ही पैदा नहीं होता, उसके साथ घास–भूसा–डंठल भी उत्पन्न होता है, जिसके बिना अनाज की संभावना ही नहीं हो सकती। किसान जीवन और ग्राम जीवन से थोड़े भी परिचित लोग यह भली–भांति जानते हैं कि ये घास–भूसा–डंठल उनके दैनंदिन जीवन के लिए कितने उपयोगी होते हैं। किसानी में केवल किसान का स्वार्थ नहीं सधता अपितु पूरे परिवेश का हित–लाभ होता है। आज के दौर में केवल अनाज पा लेने की स्वार्थ बुद्धि के चलते स्वास्थ्य और पर्यावरण का जो संकट उत्पन्न हुआ है उससे हम अनजान नहीं हैं। अपनी खेती की पुरानी पद्धति को नष्ट करने की तमाम सजाएं भुगत कर एक बार पुनः हम उसी पारंपरिक ज्ञान से समृद्ध खेती की ओर लौट रहे हैं, जिसे ऑर्गेनिक खेती जैसे फैशनेबल नाम दे दिया गया है। ध्यान रहे प्रेमचंद ने केवल साफ–सुथरा छांटा–पछोरा अनाज चाहने वाले आज के आलोचकों के लिए ही नहीं लिखा है, बल्कि उनकी खेती का लाभ सभी को मिल सके इसका पूरा इंतजाम किया है।

प्रेमचंद स्त्री–पुरुष संबंध को समाज का महत्वपूर्ण आधार मानते थे। उन्होंने अपने लेखन के आरंभ से अंत तक समाज की दो महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्त्री और पुरुष के संबंधों, विवाह और दांपत्य से जुड़े लगभग सभी प्रश्नों पर विस्तार से लिखा है। दहेज, बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, विवाह पूर्व, विवाहेतर, बिना विवाह के संबंध और संतान, मौत, विमाता, प्रेमिका, लंपटता, दैहिक– मानसिक शोषण, परस्पर संदेह, डाह, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, प्रतिशोध, वेश्या, अनपढ़, पढ़ी लिखी, कामकाजी एवं सफल स्त्री, देसी स्त्री–पुरुष, विदेशी स्त्री–पुरुष, पातिव्रत्य, कुलटा, पुरुषों की स्वेच्छाचारिता आदि विषयों को अपनी कहानी में उठा कर प्रेमचंद ने समाज के विकास में स्वस्थ स्त्री–पुरुष संबंध की जरूरत को भली भाँती रेखांकित किया

है। प्रेमचंद की कथित पचास बढ़िया कहानियों के अलावा अन्य कम चर्चित कहानियों पर विचार करने से पता चलता है कि वे बहुत व्यापक दृष्टि के साथ जन शिक्षा के कार्य में लगे हुए थे। वे भारत के युवकों और युवतियों के पारस्परिक संबंधों को समानता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने की मानसिकता का निर्माण कर रहे थे।

कहते हैं कि स्त्री में पुरुष के गुण आ जाएं तो उसका अपकर्ष हो जाता है परंतु पुरुष में स्त्री के गुण आ जाएं तो न सिर्फ उसके चरित्र का उन्नयन हो जाता है, अपितु दया, करुणा, ममता, परोपकार से संचालित समाज के निर्माण में एक ईंट और जुड़ जाती है। प्रेमचंद के लेखन में स्त्रियों के प्रति हमदर्दी, उसके जीवन में सुधार की तड़प, पितृसत्ता के प्रभाव और शिक्षा के अभाव से पीड़ित स्त्री के चरित्र की दुर्बलता को दूर करने की चेष्टा उन्हें अपने समकालीनों से अलग करती है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं से जूझती–खपती स्त्री का करुण चित्र खींचा है। उनकी कहानियों में यह बात गौर करने लायक है कि समाज में स्त्री की गति और नियति का नियंता होने का दावा करने वाले पुरुष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों की अंतिम दशा कम दयनीय और करुणोत्पादक नहीं है। उनकी कहानियों में स्त्री पर अत्याचार करने, होने देने, चुप रहने, नजरअंदाज करने वाले पात्र अंततः अपनी गलती को स्वीकार करते हैं। प्रेमचंद अपनी कहानियों के परिवेश निर्माण और चरित्र संगठन में स्पष्ट दिखाते हैं कि कैसे वह पुरुष खुद अपनी लगाई आग में झुलस कर अपना जीवन बर्बाद कर लेने का जिम्मेवार है। इस तरह प्रेमचंद ने कथित स्त्री समस्याओं पर न लिखकर उसे स्त्री–पुरुष की साझी समस्या मानकर लिखा। दोनों को अपनी जिम्मेवारी के प्रति सजग किया। प्रेमचंद की अनेक अचर्चित कहानियों में पारिवारिक संबंधों की जटिलताओं–विडंबनाओं के प्रभावी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं जो नयी पीढी का मार्गदर्शन करने की क्षमता रखते हैं।

आधुनिक काल के हिन्दी लेखकों से प्रेमचंद की लोकप्रियता और सर्वस्वीकार्यता की तुलना नहीं की जा सकती है। यदि तुलना करनी ही है तो मध्यकाल के महाकवि, लोकनायक तुलसीदास की लोकप्रियता से करनी समीचीन होगी। हिन्दी लोक ने जिस तरह तुलसीदास को अपनाया है, उनकी चौपाइयों और दोहों में प्रस्तुत अमर सूक्तियों को करणीय और अकरणीय के निर्णय का आधार बनाया है, ठीक उसी तरह आधुनिक काल के रचनाकारों में प्रेमचंद को हिन्दी क्षेत्र ने अपनाया है। अभिजन और आमजन की रुचियों का पोषण और परिष्कार करने की जैसी क्षमता उनकी कहानियों में है, वैसी क्षमता उनके समकालीनों ही नहीं, हमारे समकालीनों में भी दुर्लभ है। अनायास नहीं है कि भारत के छोटे से रेलवे स्टेशन के पुस्तकों की दूकान पर वहाँ की स्थानीय भाषा में प्रेमचंद की कहानियां और उपन्यास मिल जाते हैं।

संदर्भ–ग्रन्थ–सूची :–

1. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग एक से आठ, संस्करण 2008, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली।
2. प्रेमचंद, सोजे वतन, संस्करण 2006, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली।
3. शर्मा रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, छात्र संस्करण, चौथी आवृत्ति–2004, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. मधुरेश, हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश, प्र. संस्करण 1997, आधार प्रकाशन, पंचकूला।

'अंधेर नगरी' : हास्य और व्यंग्य से परे राष्ट्रवादी भाव-कृति

प्रो. निरंजन कुमार*

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र साहित्य शिरोमणि ही नहीं अपितु चिंतक शिरोमणि भी थे। एक तरफ उनके नेतृत्व में "हिंदी नयी चाल में ढली" तो दूसरी तरफ जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भारतेंदु के बारे में लिखते हैं कि "उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया।"[1] यह नयी चाल और नवीन मार्ग भाषा के स्तर पर जहाँ 'खड़ी बोली हिंदी' का गद्य साहित्य में व्यवहार और 'खड़ी बोली हिंदी' का परिमार्जित प्रयोग था, तो दूसरी तरफ साहित्य और अंतर्वस्तु के स्तर पर नए–नए विचारों और विषयों का प्रवर्तन था। इसमें संदेह नहीं कि भारतेंदु ने नवीनता का जो मार्ग दिखाया वह उनके युग चेतना या युगबोध का ही प्रतिबिम्बन था। यह विदित है कि भारतेंदु का युग अंग्रेजी राज का युग है। देश की मुक्ति के लिए 1857 में हमारा पहला स्वाधीनता संग्राम घट चुका था। विभिन्न कारणों से हमारी हार होती है। अंग्रेजों ने इस संग्राम के सेनानियों को जहाँ बेदर्दी से कुचला, वहीं आम जनता पर भी इसकी गहरी गाज गिरी। अंग्रेजों के इस आतंक का ही परिणाम था कि 1857 के बाद कई सालों तक अंग्रेजों के खिलाफ वैसी आवाज नहीं उठ पाई। स्वयं भारतेंदु भी 1857 के स्वाधीनता संग्राम का भयभीत स्वर में उल्लेख करते हैं– "कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जल बल नासी। जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुँ भारतवासी।"[2]

लेकिन यह भी सही है कि इस हार के बाद पराधीनता का बोध और भी गहरा गया। इस पराधीनता के बोध से धीरे–धीरे स्वाधीनता की कामना व आकांक्षा का भाव भी जन्म ले रहा था। देश के स्वाधीनता की आकांक्षा व चेतना का भाव भारतेंदु के निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है जब वे 'कविवचन सुधा' में 1874 के एक अंक में लिखते हैं, "जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुआ, वैसे भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है।"[3] दरअसल स्वाधीनता, राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद विरोध की जैसी प्रखर चेतना भारतेंदु के यहाँ दिखती है वैसी तत्कालीन हिंदी साहित्य में अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ती। स्वाधीनता, राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद विरोध की इस चेतना का प्रमुख स्वर तो राजनीतिक है। इसके अतिरिक्त आर्थिक स्तर पर भी इस राष्ट्रीय चेतना और साम्राज्यवाद विरोध को वे स्वर देते हैं। वे लिखते हैं– "अंग्रेज व्यापारी माल भेजने लगे, देखो बढ़ई आदि छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है।"[4] एक तीसरे स्तर पर इस चेतना का एक सांस्कृतिक रूप भी है जिसमें वे अंग्रेजों अथवा पश्चिम की सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठता को चुनौती देते हुए दिखाई पड़ते हैं। इन संदर्भों में भारतेंदु के 'अंधेर नगरी' नाटक को देखना–समझना प्रासंगिक होगा जो उनके नाटकों में सबसे अधिक सशक्त, सबसे अधिक लोकप्रिय और सबसे अधिक चर्चित हैं। यह विदित है कि भारतेंदु ने नाटकों को सिर्फ मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रखा था। एक जगह वे लिखते हैं कि नाटक 'देश की कुचालों को सुधारने वाला' और 'कुशल करने वाला' होता है। कुचालों को सुधारना और कुशल करना प्रकारांतर से जनता को जागृत करना, उन्हें परिस्थितियों का भान कराना और उन्नति के मार्ग पर लाना है। और, यह चीजें हासिल करना पराधीन भारत में संभव नहीं हैं, इसलिए भारतेंदु जनता में स्वाधीनता की आकांक्षा जगाने के लिए उनमें राष्ट्रीयता की चेतना व राष्ट्र और संस्कृति के प्रति गौरव का भाव भरने का कार्य करते हैं। 'अंधेर नगरी' नाटक इस स्वाधीनता, राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना की श्रेष्ठतम परिणति है, जो राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तीनों ही धरातलों पर भारतेंदु की प्रखर राष्ट्रवादिता को प्रकट करती है।

कहने को 'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है यानि एक हास्य रचना। आरम्भिक आलोचकों ने इसमें विनोद और मनोरंजन को ही देखा। हालाँकि परवर्ती आलोचकों ने इसमें एक गहरा व्यंग्य भी पाया। उनकी दृष्टि में

*** प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

यह व्यंग्य एक तरह से अंग्रेजी राज का पर्दाफाश है। लेकिन व्यंग्य भी अपने आप में एक्टिव (Active) के बजाय अपेक्षाकृत एक पैसिव (Passive) प्रघटना बन कर रह जाती है, अगर व्यंग्य सिर्फ हास्य या तिलमिलाने तक सीमित रह जाए, किसी रूपांतरण अथवा परिवर्तन के लिए प्रेरित न करे। लेकिन भारतेंदु अंग्रेजी राज को लेकर हास्य, व्यंग्य या सिर्फ आलोचना तक सीमित नहीं रहते। हास्य, व्यंग्य या आलोचना से आगे बढ़कर जनता में वे आक्रोश भरने का काम करते हैं, अपनी परिस्थितियों को बदलने के लिए वे जनता को लगातार प्रेरित करते दिखाई पड़ते हैं। रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें "भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेजी राज की आलोचना ही नहीं की, वरन उसके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए जनता का आह्वान भी किया।"[5] 'अंधेर नगरी' नाटक इस बात का जीता–जागता प्रमाण है।

'अंधेर नगरी' नाटक की कथा की शुरुआत महंत और उसके दो शिष्यों के प्रवेश से होती है। एक का नाम गोबरधनदास और दूसरे का नारायणदास। दोनों के नाम भी बहुत सांकेतिक हैं, और चरित्र भी। गोबरधनदास का चरित्र भारतेंदु थोडा लालची और भौतिकतावाद से प्रेरित दिखाते हैं, तो दूसरी ओर नारायणदास का चरित्र संयमी और आध्यात्मिक है। इसलिए भिक्षा के संदर्भ में गोबरधनदास को 'मालबर' लोगों से मालदार भिक्षा की अपेक्षा है, जबकि नारायणदास 'सुंदर' अर्थात उत्तम और सात्विक भिक्षा की कामना करता है। भारतेंदु द्वारा गोबरधनदास को 'पश्चिम' की ओर भेजना तथा नारायणदास को 'पूरब' की ओर भेजना, पश्चिम और पूर्व की संस्कृतियों के अंतर को ही दिखाने का प्रयास है। अंग्रेजी अर्थात पश्चिमी भौतिकतावादी संस्कृति का जो सांस्कृतिक वर्चस्व भारत में कायम करने की कोशिश हो रही थी, उसकी न्यूनता और उसके खोखलेपन का पर्दाफाश गोबरधनदास के माध्यम से भारतेंदु करते हुए दिखाई पड़ते हैं, कि पश्चिमी भौतिकतावादी संस्कृति के अनेक दुष्परिणाम होंगे। याद रहे कि अंग्रेजी राज का राजनीतिक आधिपत्य सतत बना रहे, इसके लिए सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक रूप से भी लगातार प्रयास हो रहे थे। 'मैकाले का मिनट' और 'श्वेतों (अंग्रेजों) की नस्लीय श्रेष्ठता' की अवधारणा इसी श्रृंखला की कड़ियाँ थीं। इसी कड़ी में भारतीय संस्कृति और ज्ञान को निम्नतर ठहराया जा रहा था। 'पश्चिम' के ऊपर 'पूरब' की श्रेष्ठता को दर्शाकर भारतीयों को हीनता से उबारते हुए उनमें उत्साह का संचार करने का महती कार्य भारतेंदु इस प्रसंग के माध्यम से करते हैं।

नाटक का दूसरा अंक 'बाजार' अंक है। राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय संस्कृति की दृष्टि से यह अंक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ध्यान रहे कि नाटक का राज्य एक छोटा सा 'नगर–राज्य' है। उत्तर भारत का कोई नगर। लेकिन इस छोटे से 'नगर–राज्य' के बाजार में भारतेंदु मानो पूरे भारत को एकसाथ खड़ा कर देते हैं। पूरा बाजार एक छोटे से 'नगर–राज्य' का बाजार न होकर, एक अखिल भारतीय बाजार बन जाता है। सभी जातियों, मजहबों, क्षेत्रों, भाषाओं और वर्गों के लोग यहाँ जमा हैं। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों को विभिन्न खांचों में रखकर तोड़ने की जो कोशिशें लगातार हो रही थीं उसके बरअक्स भारतेंदु इन खांचों को तोड़ने की कोशिश करते हैं, और एक अखिल भारतीय भाव, एक राष्ट्रीय चेतना को जन्म देने का प्रयास करते हैं। दूसरी तरफ वे अंग्रेजों द्वारा हो रहे आर्थिक शोषण को भी उघाड़ते हैं। यही नहीं, बीच–बीच में अंग्रेजों की 'श्रेष्ठता' और 'अपराजेयता' की पोल खोलते हुए भारतीय संस्कृति का गौरवगान कर भारतवासियों को हीनता के भाव से उबारते हुए उनमें उत्साह का भी संचार करते हैं। बाजार दृश्य में विभिन्न लोग अपना अपना माल बेच रहे हैं। पहला व्यक्ति कबाबवाला है। वह जब कहता है कि "कबाब गरमागरम मसालेदार–चौरासी मसाला बहत्तर आँच का"[6], तो इसमें भारतीय समाज और संस्कृति की प्राचीन आर्थिक सम्पन्नता और सांस्कृतिक समृद्धि की ओर संकेत है। भारतेंदु दिखलाना चाहते हैं कि आज भले ही भारत दयनीय स्थिति में हो लेकिन पूर्व में हर तरह से समृद्ध रहा था। यह आर्थिक सम्पन्नता और सांस्कृतिक समृद्धि इसके खानपान में भी झलकती है जहाँ चौरासी किस्म के मसाले खाए जाते रहे हैं। ध्यान रहे कि पश्चिमी संस्कृति के खानपान में इतनी विविधता और इतनी समृद्धि नहीं होती थी। बाजार का अगला पात्र 'चना जोर गरम' बेचने वाला घासीराम है। इस चने को खाने वालों में गफूरन, तोको, मैना और मुन्नी जैसी वेश्याएं भी हैं। भारतेंदु यहाँ वेश्याओं को उपस्थित कर आजादी की लड़ाई में उनके महत्व को भी दिखलाना चाहते हैं। स्मरण रहे

कि 1857 के संग्राम में अनेक तवायफों और वेश्याओं ने गुप्तचर, मुखबिर से लेकर युद्ध करने तक का काम किया था। अजीजन बेगम का नाम इस संदर्भ में लिया जा सकता है। इस चने वाले के पास बंगाली भी आते हैं जिनकी स्वाधीनता संग्राम में महती भूमिका रही थी, तो हाकिम व अफसर भी आते हैं "जो सब पर दूना टिकस लगाते"[7]। आम जनता पर अंग्रेजी राज के हाकिम टैक्स पर टैक्स लादते जा रहे हैं जिससे जनता त्रस्त हो रही है। इन पंक्तियों में अंग्रेजी राज के हाकिम व अफसर द्वारा बेलगाम टैक्स लगाने के खिलाफ जनता में एक तरह से आक्रोश पैदा करने की कोशिश है, एक राजनीतिक चेतना भरने की कोशिश है।

अगली पात्र नारंगी बेचने वाली तो बाजार को अखिल भारतीय रूप में परिणत कर देती है। एक तरफ वह सिलहट (सुदूर पूरबी बंगाल, अब बांग्लादेश) की नारंगी बेच रही है तो उसके पास बुटबल (भारत–नेपाल सीमा के पास एक नेपाली कस्बा) की नारंगी भी है। फिर उत्तर भारत के क्षेत्रों रामबाग और आनदंबाग की नारंगियाँ भी वह बेच रही है। जब वह कहती है कि "मैं तो भूली लेकर संगी"[8], तो भारतवासियों में अप्रत्यक्ष रूप से एकता का भाव भरने की ही कोशिश करती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पात्र कुंजड़िन के माध्यम से राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता और राजनीतिक चेतना का भाव पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है जब वह कहती है "ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर"[9]। 'फूट और बैर' अभिधा में तो फल हैं लेकिन इसका व्यंग्यार्थ है भारतवासियों का आपसी फूट एवं वैर। भारतेंदु इस आपसी फूट एवं वैर को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता की कामना करते हैं क्योंकि देश की स्वाधीनता इसके बिना संभव नहीं। यहाँ एक अन्य महत्वपूर्ण बात रेखांकित करने की जरुरत है कि राष्ट्रीय एकता का यह सन्देश भारतेंदु किसी उच्च कुलीन या शिक्षित व्यक्ति के मुँह से न देकर एक अनपढ़, निम्नवर्गीय और 'निम्न' जाति की स्त्री पात्र कुंजड़िन के माध्यम से देते हैं। यह बात एक तरफ भारतेंदु की लोकतान्त्रिक चेतना का परिचय देता है तो दूसरी तरफ उनके इस दूरगामी चिन्तन का कि स्वाधीनता के महासंग्राम में निम्न वर्ग और स्त्रियों की बड़ी भूमिका रहेगी। याद रहे कि स्वाधीनता आन्दोलन जब गाँधी जी के नेतृत्व में आया, तो स्त्रियों के साथ–साथ बड़ी संख्या में निम्न वर्ग और 'निम्न' जाति के लोगों ने स्वाधीनता आन्दोलन में अभूतपूर्व सक्रियता दिखाते हुए अंग्रेजी राज की चूलें हिला दी थी।

बाजार दृश्य का अगला महत्वपूर्ण पात्र मुगल या कहें कि अफगानी व्यक्ति है। विदित हो कि साम, दाम, दंड और भेद आदि के माध्यम से अंग्रेजों ने भारतीयों के सामने अपने को एक अपराजेय और अजेय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया था। भारतीयों में एक हीनता का भाव भर गया था। भारतीयों को इस हीनता से उबारने और अंग्रेजों की इस तथाकथित अपराजेयता और अजेयता के भाव की असलियत को सामने लाने के लिए ही भारतेंदु मुगल या अफगानी पात्र का विधान करते हैं। जब यह अफगानी मुगल कहता है– "आमारा ऐसा मुल्क जिसमे अंग्रेज का भी दांत कट्टा ओ गया"[10], तो इसके पीछे यही व्यंजना है। इसी तरह पाचकवाला अपना चूरन बेचता हुए कुछ इसी तरह की बात कहता है कि "हिन्दू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम"[11]। यहाँ 'हिन्दू चूरन' का आशय हिन्द देश का चूरन है, और 'विलायत पूरन' का अभिप्राय है विलायत अर्थात् विदेशी राजा या साम्राज्य को पूर्ण अर्थात् समाप्त या खत्म कर देना। कुछ लोगों को यहाँ 'हिन्दू' शब्द से खटका लग सकता है। लेकिन यहाँ हिन्दू का अभिप्राय एक मजहब या पंथ नहीं, बल्कि हिंदुस्तान में रहने वाले सभी लोग हैं। भारतेंदु के प्रसिद्ध बलिया भाषण से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। उस व्याख्यान में भारतेंदु का वाक्य है– "जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी जाति, किसी रंग का क्यों न हो, वह हिन्दू है।"[12] आगे एक अन्य अर्थ में चूरन वाला जब कहता है कि "चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता"[13], तब अंग्रेजी राज के असली आर्थिक (कु)चरित्र का उद्घाटन भारतेंदु कर देते हैं, और अप्रत्यक्ष रूप से जनता में अंग्रेजी राज के प्रति आक्रोश भरते हैं, ताकि वह स्वाधीनता के लिए उपक्रम करे। अंग्रेजों के इस आर्थिक (कु)चरित्र को भारतेंदु ने बहुत पहले समझ लिया था। अपने 'कविवचन सुधा' में अंग्रेजी राज के लिए वह लिखते हैं– "क्या यह अनीति नहीं है कि अनुमान से दो सौ वर्ष हुए इनका अधिकार इस देश में हैं। इन्होंने हमारे धन–धान्य की वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया और केवल

अपनी भाषा सिखाई और सब व्यापार और धन अपने हस्तगत किया। क्या यह खेद की बात नहीं है कि हमको कला कौशल से विमुख रखा और आप स्वतः व्यापारी बनकर सब देश–भर का धन और धान्य अपने देश में ले गए।"[14] नाटक का चौथा अंक राजसभा दृश्य है, जिसमें उस राज्य के चौपट्ट राजा की कारगुजारियों और उसके रंग–ढंग और उसके अन्यायपूर्ण न्यायप्रणाली के दर्शन होते हैं। चौपट्ट राजा की ऊटपटांग बातें, ऊटपटांग व्यवहार और ऊटपटांग न्याय अंग्रेजी राज व्यवस्था की ओर इशारा करते हैं जहाँ मनमाने ढंग से चौपट्ट राजा की तरह ही ऊटपटांग नियम–कानून बन रहे थे और न्याय हो रहा था। नाटक का अंत कुछ लोगों को 'नाटकीय' लग सकता है। लेकिन चौपट्ट राजा का फाँसी पर चढ़ना और महंत द्वारा कहना कि "जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज, ते ऐसहिं आपुहिं नसैं जैसे चौपट राज"[15] इन चीजों के माध्यम से भारतेंदु हरिश्चन्द्र अंग्रेजी राज व्यवस्था के नाश की कामना करते हैं ताकि स्वाधीनता का स्वप्न साकार हो सके।

समग्र रूप से कहें तो भारतेंदु की 'अंधेर नगरी' हास्य या अंग्रेजी–राज पर एक व्यंग्य से बहुत आगे की रचना है। पूरे रचना–विधान के पीछे उनकी एक दूरगामी दृष्टि है– जनता को जागृत करना, उनमें अंग्रेजी राज व्यवस्था के प्रति आक्रोश भरना, उनमें राष्ट्रीयता की चेतना व राष्ट्र और संस्कृति के प्रति गौरव का भाव जगाना, उनमें एक अखिल भारतीय भाव भरना और अंततः स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उन्हें तैयार करना। राष्ट्रीयता, अखिल भारतीयता और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को हिंदी साहित्य में स्थापित करने में 'अंधेर नगरी' कृति पूर्ण सफल रही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

संदर्भ–सूची :–

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 308 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019।
2. भारतेंदु ग्रंथावली खंड 1, प्राक्कथन, नमन प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016।
3. कविवचन सुधा', संपादक, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, 6 जुलाई 1874।
4. कविवचन सुधा', संपादक, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, 9 फरवरी 1874।
5. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश–2, पृष्ठ 386, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009।
6. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, अंधेर नगरी, पृष्ठ 49, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016।
7. वही 50।
8. वही 50।
9. वही 51।
10. वही 51।
11. वही 52।
12. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' (बलिया भाषण),1884, https://www.hindisamay.com/
13. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, अंधेर नगरी, पृष्ठ 52, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 2016।
14. कविवचन सुधा', संपादक, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, 30 सितम्बर 1872।
15. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, अंधेर नगरी, पृष्ठ 72, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016।

निराला के आरंभिक उपन्यासों में प्रतिरोध की चेतना

क्रान्ति बोध*

हालिया महामारी के दौरान जब पिछले स्पेनिश फ्लू का जिक्र चला तो संयोगवश हिंदी में केवल निराला का उदाहरण निकला जिन्होंने उसे अपने साहित्य में दर्ज किया था। लेकिन बड़े से बड़े चैनल यहाँ तक कि बीबीसी हिंदी ने भी उसे निराला की आत्मकथा 'कुल्ली भाट' से लिया गया बताया। हालांकि हिंदी का प्रत्येक अध्येता जानता है कि 'कुल्ली भाट' कोई आत्मकथा नहीं लगभग एक रेखाचित्र या कहें कि प्रथम पुरुष में कही गई एक लंबी कहानी है जिसमें निराला का जीवन उनकी शैली के कारण बारंबार आया है। पर इससे एक बात तो पता चलती है कि निराला की कविताओं की अपेक्षा उनका कथा साहित्य कितना अनदेखा, कितना अलक्षित और कितना अरेखांकित रहा है। बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरी चमार, कुल्ली भाट जैसे अंतिम पायदान पर मौजूद गरीब के जीवन को केंद्र में रखकर लिखना ही निराला की ताकत है, और इनकी चर्चा भी निराला के गद्य लेखन के संदर्भ में होती रहती है लेकिन उनकी आरंभिक उपन्यासात्मक कृतियां आलोचना के दायरे से बाहर ही रही हैं। इसीलिए बहुत कम उपन्यास के इतिहास में निराला का नाम दिखाई देगा, जबकि निराला को पढ़ते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला अपने उपन्यासों को उसी प्रतिरोधी चेतना या यूं कहें कि प्रगतिशील चेतना के साथ रच रहे थे जो उनके काव्य साहित्य का प्राण तत्व है, वही नवजागरण एवं राष्ट्र निर्माण की चेतना वहाँ भी उसी रूप में दिपदिपा रही है।

निराला के उपन्यासों के पीछे समाज निर्माण की सक्रिय चेतना है। क्योंकि निराला उपन्यासों के माध्यम से कविता की ही तरह सामाजिक दायित्व के निर्वहन की अपेक्षा रखते थे। अपने 1933 के लेख 'हिंदी साहित्य में उपन्यास' में वे लिखते हैं कि 'जब तक किसी बहते प्रवाह के प्रतिकूल किसी सत्य की बुनियाद पर ठहर कर कोई उपन्यास नई नई रचनाओं के चित्र नहीं दिखलाता तब तक न तो उसे साहित्यिक शक्ति प्राप्त होती है और न समाज को नवीन प्रवाह मान जीवन।'[1] अगर गौर से देखें तो इस कथन में हमें तीन बातें प्रमुखता से मिलती हैं, पहली 'बहते प्रवाह के प्रतिकूल होना' दूसरी 'सत्य की बुनियाद पर ठहराव रखना' और तीसरी 'नई–नई रचनाओं के चित्र दिखाना'। अब शायद यही किसी उपन्यास को रचते समय निराला के प्रस्थान बिंदु रहे होंगे या प्रेरणा के क्षेत्र रहे होंगे। निराला शिल्प की नवता के, उसमें नई शैली के साथ नए कथ्य को प्रस्तुत करने के बड़े आग्रही रहे हैं और वे अपने पूर्व की परम्परा को ठीक से जांच कर यह निर्णय लेते हैं, क्योंकि अन्यत्र वे लिखते हैं कि 'बड़ी बड़ी तोंद वाले औपन्यासिक सेठों की महफिल में यह विधा अपना सही मार्ग नहीं तलाश पा रही है।'[2] इससे यह तो जाहिर ही होता है कि निराला इस विधा के भीतर भी नए शिल्प और नए कथ्य की तलाश जारी रखना चाहते थे।

निराला की प्रयोगशील रचनाधर्मिता एवं सामाजिक प्रतिबद्धता भी उन्हें उपन्यासों और उसके भीतर अनेक प्रयोगों की ओर आकृष्ट करती है। उनके लेखन का काल छायावाद से प्रारंभ होता है और संभवतः 1946 के बाद निराला उपन्यास लिखना बंद कर देते हैं। भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष काल को निराला अपने उपन्यासों का आधार बनाते हैं और उपनिवेश विरोधी तथा सामंतवाद विरोधी चेतना को नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं।[3] क्योंकि निराला छायावाद के संस्कारों से युक्त लेखक हैं उनके आरंभिक उपन्यासों अप्सरा, अलका, प्रभावती और निरूपमा में रोमांटिक कल्पना का प्रसार सहज दृष्टव्य होता है, हालांकि इनमें भी निराला की दृष्टि सामाजिक विसंगतियों और राष्ट्र निर्माण पर बराबर बनी रही है। किंतु कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, काले कारनामे और चमेली में जिस सूक्ष्मता और

*** सहायक प्रध्यापक, हिन्दी, एम एम एच कालेज, गाजियाबाद।**

परिपक्वता के साथ यथार्थ और मनोविज्ञान को उन्होंने पकड़ा है, इन्हीं कृतियों में वे अपनी उपन्यास संबंधी मान्यताओं के साथ न्याय कर पाने में भी सक्षम हो सके हैं।

कल्पनाशील रोमांटिक उपन्यासों में, जैसा कि निराला स्वयं 'अप्सरा' के समर्पण में कहते हैं कि 'ईच्छा न रहने पर भी प्रासंगिक काव्य दर्शन, समाज–राजनीति आदि की कुछ बातें चरित्रों के साथ व्यवहारिक जीवन समस्या की तरह आ पड़ी हैं।'[4] यह बात उनके बाकी तीनों उपन्यासों के साथ भी बराबर चलती रहती है। यद्यपि 'प्रभावती' को छोड़कर वे उत्तरोत्तर यथार्थ की ओर झुके हुए दिखाई देते हैं और एक रोचक संयोग यह भी है कि अपने पहले चारों उपन्यास निराला ने नायिकाओं के नाम पर लिखे हैं,और सभी के नायक पढ़े–लिखे जागृत एवं साहसी और नायिकाएं प्रत्युत्पन्नमतिशालिनी हैं। लेकिन मुख्य कथा प्रेम की ही है। 'निरुपमा' में तो यह प्रेम राष्ट्र निर्माण के लिए अपनी अंतिम सीमा पर जाता हुआ वायवीय एवं प्लेटोनिक स्तर पर पहुंच जाता है। अपने एक लेख 'राष्ट्र और नारी' में निराला लिखते हैं कि 'यह ज्ञान राशि भी यदि हर तरफ से हमारे राष्ट्र की नारियों को पराश्रित कर रखे तो उनके हृदय से निकला स्वतंत्रता का स्रोत पर–राष्ट्र–सागर–वाही होगा, उसका प्रवाह कभी भी अपने ज्ञान के महासागर की ओर नहीं हो सकता।'[5] कनक, अलका (शोभा), प्रभा और निरूपमा सभी पढ़ी–लिखी ज्ञानशील नायिकाएं हैं, निर्भीकता और सहृदयता उनका चारित्रिक गुण है। दरअसल निराला शिक्षा की आवश्यकता एवं अनिवार्यता पर जोर दे रहे थे। वह प्रत्येक उपन्यास में शिक्षित चरित्र और जनता को शिक्षित करने की प्रेरणा का प्रचार कर रहे थे। वह नवजागरण लेते भारत में समझ चुके थे कि यदि राष्ट्र को नई चारित्रिक ऊंचाई पर ले जाना है तो उसके निर्माण का केंद्र स्त्रियों की शिक्षा ही होगी।

'अप्सरा' में यूं तो वेश्या–पुत्री कनक के प्रेम एवं हिंदी–साहित्य सेवी राजकुमार के प्रेम से, विवाह से जुड़ी कथा है किंतु निराला ने अपनी बात तारा और चंदन सिंह के माध्यम से ज्यादा कहलवाई है। हरदोई के एक जिले में राष्ट्रीय विद्यालय चंदन सिंह द्वारा खुलवाना या कि तारा का यह कहना कि 'बहन मनुष्यों के अज्ञान की मार मनुष्य ही तो सहते हैं' आदि प्रसंग निराला के इस कथन कि 'अप्सरा' स्वयं मुझे जिस ओर ले गई, मैं दीपक– पतंग की तरह उसके साथ रहा' को नाकाफी बताते हुए प्रतीत होते हैं। अप्सरा में निराला के आगे एक ओर यदि प्रेमचंद वाला सामाजिक राजनीतिक प्रतिश्रुति का रास्ता था तो दूसरी ओर जैनेंद्र कुमार एवं इलाचंद्र जोशी के वे संभावनापूर्ण नायिका प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी थे। प्रेमचंद से अलगाव के कारण ही यह नयी धारा महत्व पा सकी थी। निराला एक तो प्रेमचंद की कोरी छाया मात्र बनकर नहीं रहना चाहते थे और नई परंपरा में स्पर्धा भाव भी शाश्वत रूप से रखते हैं। निराला के आगे यह एक चुनौती की तरह था। लेकिन एक तीसरा पेंच भी उनके यहाँ दिखाई देता है, वह यह कि उनके अपने निजी जीवन की आर्थिक संभावनाएं उपन्यासों में कविता से अपेक्षाकृत ज्यादा थी सो लोकरुचि का ख्याल भी उन्हें रखना था ताकि आर्थिक आधार पर भी वे अपने लिखे को स्थापित करवा सकें। हालांकि निराला ने उपन्यासों में प्रेमचंद वाला रास्ता ही ज्यादा श्रेयस्कर समझा ऐसा उनके साहित्य को पढ़ने के उपरांत लगता है। पर्याप्त नाटकीयता, घटना–प्रधानता, संकुल कथानक तथा लोक की तरफ झुकाव आदि विशेषताएँ लोक रुचि के ही दबाव के परिणाम स्वरूप थीं, जबकि समय के राजनैतिक सामाजिक सवालों से जुड़ना उनकी अपनी समझदारी जागरूकता एवं चेतना के दबाव के परिणामस्वरूप उपन्यासों में दाखिल हो रही थी।

'अलका' में निराला समसामयिक यथार्थ पर दृष्टि रखते हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद और देशी सामंतवाद के गठजोड़ ने गांव को नर्क बना दिया। पूरी सामाजिक व्यवस्था का चित्रण एक दलित किसान के नजरिए से दिखाते हुए निराला लिखते हैं कि 'एड़ी चोटी का पसीना एक करके मुश्किल से पेट भर खाने को आता है। लगान चुकाता है। भिक्षुक को भीख देता है और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता है। कभी–कभी उन्हीं की कृपा से कचहरी जा, बैरिस्टर साहब को भी कुछ दे आता है। जमींदार, पुलिस, कचहरी, समाज सभी जगह वह नीच, अधम, मनुष्य की पदवी से रहित ठोकरें खाने वाला है। कोई देख न ले और रोने का मतलब और और न सोचे इसलिए नहीं रोता। एकांत में ईश्वर को पुकार, शून्य देख दुख के

आंसू पीकर रह जाता है।... सदा इसके लिए सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य रूप राक्षसों से मिले दुखों का पहाड़ रखा हुआ है। यह उसे अपने कर्मों का फल समझ किसी को भी इसके लिए न कोसकर, चुपचाप ढोता चला जा रहा है।'[6] जमींदारों द्वारा बहू–बेटियों का बलात्कार एवं दैहिक शोषण होने पर शोभा को (जो बाद में अलका है) गांव छोड़कर भागना पड़ता है। उसका पति विजय (जो मुंबई में पढ़ता है) उसकी खोज में दर–दर भटकता है और अंत में कथानक के घातों–प्रतिघातों के बाद अति नाटकीय तरीके से अलका से मिलता है। इस अति नाटकीय कथावस्तु में सर्वाधिक महत्व की बात समकालीन समाज का चित्रण ही है जिसके अन्य नाना चित्र नानाविध रूप हम बाद के उपन्यासों में देखते भी हैं।

निराला के समय में देश का स्वाधीनता आंदोलन चरम पर है। गांधी जी अपने सत्य और अहिंसा के प्रयोग धड़ाधड़ कर रहे हैं। स्वराज आने को है। पर कहाँ? बुधुआ लोध महंगू से पूछता है– 'सुराज का है रे!' इस पर मंहगू कहता है 'किसानों का राज।' बुधुआ फिर पूछता है कि 'तब यह जमींदार और पटवारी क्या करेंगे?' महंगू कहता है– 'झख मारेंगे।' पर 'बुधुआ कुछ न समझ सका कि देश में, गांव में रहते हुए कैसे झख मार सकते हैं। महंगू गहराई तक नहीं समझता था। सुनता था तो कुछ पचीसों उलटफेर के बाद आज खुद भी यह न मानता था कि यह पुलिस वाली सरकार और जमींदार लोग लगान वाला हक छोड़कर ख्वाब की तरह कैसे गायब हो जाएंगे।'[7] बुधुआ डरते–डरते पूछता है कि ये कहाँ जाएंगे? इस पर महंगू झल्लाकर कहता है कि 'गन्धी महारानी का प्रताप ऐसा है कि इनके हाथ बंध जाएंगे और बोल बंद हो जाएगा, तब ये किसानों के तलवे चाटेंगे।'[8] यही बुधुआ लगान न दे पाने के कारण जमींदार से पशुवत पीटा जाता है। यह है आम ग्रामीण जनता की स्वराज की समझदारी, स्वराज का स्वप्न और समाज की सच्चाई। निराला इसे समझते हुए लिखते हैं 'स्वतंत्रता के नाम से देश घोर परतंत्र है। संवाद पत्र एक दल विशेष, व्यक्ति विशेष की नीति के प्रचारक हैं। संपादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गीत नहीं जानते अर्थात उनके भीतर वैसी पोल भी है।'[9] इसीलिए निराला गांवों से शुरुआत करना चाहते हैं। किसानों को संगठित होते देखना चाहते हैं। बिना संगठन के कुछ नहीं हो सकता। 'अलका' में विजय लोगों को इकट्ठा करता है 'सब लोग बाहर आए। जमींदार के उपद्रवों से बचने के लिए गांव के लोगों को किस प्रकार संगठित होना चाहिए। एक अलग कोष सर्वसाधारण की भलाई के लिए एकत्र कर रखने पर मौके पर काम देता है, नहीं तो उपाय शून्य गरीब रियाया जमींदार का मुकाबला नहीं कर सकती। फूटकर एक–एक आदमी जमींदार से नहीं लड़ सकते, इसलिए उनका संगठन जरूरी है।... जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कंधे पर रखा रहेगा। अज्ञान के अंधेरे गड्ढे से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिए बेहद जरूरी है।'[10]

महाविप्लव के बाद की परिस्थितियों में 'दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करने' की बात निश्चित तौर पर एक ऐतिहासिक संदर्भ रूसी क्रांति की याद दिलाती है यद्यपि निराला यहाँ भी उसका साफ जिक्र नहीं करते। लेकिन यह बात साफ है कि निराला अपने उपन्यासों में अपने आसपास के जीवन को, अंतरराष्ट्रीय घटनाओं और बेहतरी के प्रयासों के साथ जोड़ करके देखने की कोशिश कर रहे थे, और वे चाहते थे कि जिस प्रकार से किसानों की दशा और समाज की दिशा बाहर के देशों में नए ज्ञान की रोशनी में सुधर रही है, वैसी ही स्थितियां भारत में भी निर्मित हों तो बेहतर है। क्योंकि जिस तरह गांधी जी अपने स्वराज के माध्यम से अचानक यहाँ के सामंती परिवेश को ख्वाब की तरह गायब कर देने का स्वप्न दिखा रहे हैं वह न तो वास्तविक है और न ही संभावना पूर्ण ही।

यहाँ निराला की वही चेतना रूप ग्रहण करना प्रारंभ करती है जिसके लिए 'नए पत्ते' की तमाम कविताएं याद की जाती हैं। यही वह पृष्ठभूमि है जहाँ से निराला कांग्रेस, गांधी और स्वाधीनता आंदोलन की कमजोरियों को पकड़ना और पहचानना प्रारंभ करते हैं। 'अलका' में भी किसानों एवं दलितों की लामबंदी कसम खाकर हो गई। डिप्टी साहब आए और दबाव बनने के बाद दलितों की जीत हुई। आंदोलन को बल

मिला। 'जिन जिन गांव में अभी शिक्षा का न हुआ था वहाँ वहाँ होना निश्चित हो गया। वहाँ के कई गांव का विजय प्रमुख मनुष्य माना जाने लगा।... विजय भी अपने निश्चय के अनुसार पूरी ताकत के साथ शिक्षा के विस्तार पर लगा।'[11] निराला शिक्षा को, महाजनों–जमींदारों से छुटकारे हेतु ग्रामीणों का कोष या बैंक बनाने को प्रारंभिक जरूरत बताते हैं। इसलिए क्योंकि 'नेता मनुष्य नहीं सभी विषयों की संकलित ज्ञान–राशि का भाव होता है। किसी भी तरह के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है' और 'किसी प्रकार के सुधार का आधार मस्तिष्क होता है। जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है।

यद्यपि इस उपन्यास में जमींदार स्नेह शंकर का आदर्श चरित्र एवं राम राज्य तथा कई अन्य अंतर्विरोध भी हैं जिनकी आलोचना डॉ रामविलास शर्मा जी ने की है वे कहते हैं 'सन् 30 में जो आंदोलन चला था, उससे किसानों की स्थिति में कोई मौलिक परिवर्तन न होगा, यह निराला जी ने देखा था। लेकिन जो भी परिवर्तन होगा वह किस तरह होगा, इसकी साफ तस्वीर 'अलका' में नहीं आई। स्नेह शंकर को देखकर तो मालूम होता है कि अगर इसी तरह के सभी जमींदार हों तो जमींदारी प्रथा के होते हुए भी किसानों के लिए रामराज्य हो जाए। स्नेह शंकर कहते हैं 'जनता वाह–वाह करती है और बजाने वाले देवता को पुष्पमाला लेकर यथा अभ्यास जैसे सुझाया गया, पूजने को दौड़ती है।' इसमें संदेह नहीं कि बहुत से नेता जनता को भ्रम में डाल देते हैं, परंतु यह भ्रम बहुत दिनों तक नहीं चलता। किसान अपने अनुभव से सच और झूठ का भेद समझ लेते हैं। स्नेह शंकर किसानों में शिक्षा प्रसार पर जोर देते हैं किंतु उन्हें क्या सिखाया जाए यह नहीं बताते। इसी प्रकार विजय किसानों का संगठन करने तो जाता है लेकिन वे संगठित होकर किसके खिलाफ और कैसे लड़ेंगे यह साफ–साफ नहीं बताता। यह स्पष्ट है कि यह उपन्यास निराला के जीवन में संक्रमण काल का द्योतक है, वे इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि उनकी रोमांस की दुनिया ज्यादा दिन न चलेगी।'[12]

हालांकि रामविलास जी यह बात देखते हैं कि निराला किसानों के आंदोलन को किसी एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ाते हुए नहीं दिखाई देते। लेकिन यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि यह उपन्यास निराला की मानसिक भाव भूमि को निर्मित कर रहे हैं। वह उस आवश्यकता को पहचान रहे हैं जो भारत के ग्रामीण किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए प्रारंभिक शर्त है। वह समझ रहे हैं कि किसानों को यदि लड़ना है तो संगठित होना और जमींदारी व्यवस्था के सामने खड़े होना आवश्यक होगा। इसीलिए रामविलास जी की आपत्ति वास्तविक नहीं। निराला के पास एक विजन है भले ही वह धुंधला सही। दूसरी बात यह है कि रोमांटिक उपन्यासों में निराला का छायावादी और प्रेमचंद युगीन आदर्शवाद सर्वाधिक प्रभावी एवं हावी है निराला जितना यथार्थ की भूमि पर हैं उतने ही वेदांत की भाव भूमि एवं आदर्श के कल्पना लोक में भी हैं। दरअसल उन्हें कमजोरियों का, सामाजिक बुराइयों का, भारत की समस्या का पता है, लेकिन वह हल के लिए छटपटा रहे हैं। वह समाधान विकसित एवं शिक्षित समाजों में खोज रहे हैं, जिसे लोग समझ नहीं पा रहे। इस बात को वे 'निरूपमा' के निवेदन में स्वीकार करते हैं 'दूसरे उन्नत समाज उपन्यास लेखक की जो सहायता करते हैं वह हिंदी के समाज से प्राप्त नहीं। इसलिए काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ती है, जैसे समाज की लेखक आशा करता है और जिसका होना संभव भी है। अनभ्यस्त और स्वभाव संचालितों को वहाँ अस्वाभाविकता मिलती है। पर वह है स्वाभाविक। साथ ही प्रचलित छोटे–छोटे चित्र सहारे के लिए रहते हैं, साधारणों की समझ में उतना ही आता है।'[13] स्पष्ट है कि निराला एक विजन, एक समाधान अपने समय के अन्य देशीय समाजों की हलचलों से निकालने की कोशिश कर रहे हैं। और यह भी समझ रहे हैं कि यह समाधान भारत में भी संभव हैं। जरूरत केवल उस तरह की स्थितियों एवं संभावनाओं को यहाँ के पढ़े–लिखे समाज के सामने प्रस्तुत करने की है, उन्हें समझाने की है, समाधानों को महसूस करने और समाज में तत्सम रूप प्रयोग करने की है।

इसके बावजूद 'निरूपमा' में निराला यथार्थवादी चित्रण में 'अलका' से आगे बढ़े हुए हैं। निराला ने स्वयं गांव गढ़ाकोला में रहते हुए ब्राह्मणों के रूढ़िवादी संस्कार, पाखंड, जड़ता एवं कमीने षड्यंत्रों को देखा

था। ये ब्राह्मण गरीब हैं, हल जोतते हैं, बेगार करते हैं, शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, किंतु सामाजिक बदलाव की एक ही आहट पर खूंखार, असभ्य और गैर मानवीय व्यवहार करते हैं। आशय है ग्रामीण यथार्थ का जैसा सजीव अंकन निराला ने 'निरूपमा' में किया है वैसा हिंदी के किसी अन्य साहित्यकार– उपन्यासकार के यहाँ देखने को विरले ही मिलेगा। यह निराला की यथार्थवादी प्रगतिशील चेतना का ही परिचायक है।

प्रेम के कथानक को केंद्रित किए इस उपन्यास की तीन बातें मुख्य हैं, पहली– कुमार स्वयं जो कि लंदन विश्वविद्यालय से अंग्रेजी का डी. लिट. है, दूसरी–उसके परिवार का गुजारा, तीसरी–निरूपमा की संपत्ति एवं विवाह तथा अंतर्राज्यीय उच्चता या क्षेत्रीय भेदभाव की समस्या (यथा बंगालियों की शेष भारत पर)। यह क्षेत्रवाद या क्षेत्रीय श्रेष्ठता की समस्या की ओर हिंदी साहित्य में कदाचित पहला इशारा था। निरुपमा कुमार के साथ प्रेम करती है, मामा एवं अन्य संबंधियों की इच्छा से प्रायः सारे काम करती है, किंतु यामिनी हरण से विवाह के संदर्भ में उसकी निश्चयात्मकता कहती है– 'कुमार अविवाहित है, मैं कुमार को चाहती हूं, भले वह बंगाली नहीं पर मनुष्य हैं। कुछ हों या न हों, मैं चाहती हूं, पहली बात यह है।' विद्रोह के लिए मन कुछ और आगे बढ़ता है– 'मैं लज्जा करूं भी क्यों? विवाह मन का है। मेरा मन जिसे नहीं चाहता, मैं क्यों उससे विवाह करूं?' खास बात यह है कि यह वही समय है जब पढ़ी लिखी एवं सामाजिक प्रतिबंधों से दबी महादेवी जी तक अपने मन की अभिव्यक्ति के लिए रहस्य एवं झीने पर्दे का आसरा ले रही थीं, किंतु एक नायिका के द्वारा अपनी बात को सीधे यूं कहलवा देना निराला के ही बस की बात थी। यहीं निराला एक और क्रांतिकारी काम कुमार से करवाते हैं, यह 1939 के भारत में तो बिल्कुल भी संभव नहीं रहा होगा कि डी.लिट. कुमार बेरोजगारी की मार सहता हुआ बूट पॉलिश करता है और उसे इसमें झिझक या संकोच नहीं। वह चर्मकारों का काम करते हुए भी कर्तव्यबोध, ईमानदारी एवं आत्मसम्मान से भरा हुआ है और पूछने पर अपनी जाति कर्मानुसार ही यामिनी बाबू को बताता है। यह सब जानने पर उसे होटल से निकाल दिया जाता है एवं उसके परिवार का गांव वालों द्वारा बहिष्कार हो जाता है। कर्मानुसार वर्ण निर्धारण की अकुंठित स्वीकार्यता पहली बार निराला का ही नायक हिंदी साहित्य में करता है। हालांकि कुमार तो अपने तर्कों से खुद के प्रति समाज के व्यवहार को समझ लेता है किंतु गांव में उसके घर पर भाई रामचंद्र पर बहिष्कार का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, जिसे निराला यू दिखाते हैं– 'गांव वालों के असद् हृदय और अमानुषिक व्यवहार का असर मां से अधिक बालक पर पड़ा था। जिन्हें वह भक्ति करता था, अपना समझता था, जिनके प्रति संसार के अन्य सभी लोगों से अधिक उसका आकर्षण था, जब वही संसार के सबसे बड़े शत्रुओं में बदल गए तब बालक अवाक् रह गया। मनुष्य–मनुष्य के प्रति इतना बड़ा वैर कर सकता है यह कभी उसकी कल्पना में न आया था। उसके लिए गांव भर के द्वार बंद हैं। कोई उससे प्रीति पूर्वक नहीं बोलता।'[14]

कुमार की तरह ही यामिनी बाबू भी विलायत से पढ़े हैं किंतु सुरेश बाबू की संगत के कारण पंचायत में उनका बहिष्कार नहीं होता। गांव वालों के इस दोहरे मापदंड का उदाहरण मुखिया का कथन है 'जब कहो कि रेल में मुसलमान, किरस्तान सब रहते हैं, पानी न पिएंगे तो धर्म चला जाएगा तो इस तरह धर्म नहीं जाता। कहा है राजा, जोगी, अगिन, जल इनकी उल्टी रीति। न जाने कब क्या कर बैठें। इनसे विग्रह ठीक नहीं। फिर हमारे अपने नहीं। और हमारा सरबस इनके हाथ में है। काछी, कुर्मी, तमोली, तेली ब्रह्मभोज करते हैं सब लोग जाते हो। खाते हो और दक्खिना ले आते हो तब धर्म कहाँ बह जाता है।'[15] लेकिन अंततः कुमार का विवाह जमींदार निरुपमा से हो जाता है। बहिष्कृत कुमार अब उन्हीं का राजा है मुखिया फिर तर्क देता है 'पागल हो राजा से कोई बैर करता है। अब वे दिन नहीं हैं। लखनऊ में कितने विलायतिहा हैं, उनके हाथ का पानी बंद है?'[16] यह प्रश्न चिन्ह उपन्यास को समाप्त करता है। यहीं निराला वह सबसे बड़ा प्रश्न चिन्ह लगाते हैं जहाँ समर्थ के आगे किसी प्रकार का दोष नहीं है और समर्थ हो जाना ही एकमात्र कसौटी है समाज में मान्यता प्राप्त करने की। आपकी पढ़ाई, आपके आदर्श, आपके अच्छे कर्म समाज में आपको कदाचित किंचित सम्मान दिलवा दें लेकिन सामर्थ्य संपन्नता वह एकमात्र कसौटी है जो

हर किस्म के सुविधावादी तर्कों को करने के लिए तैयार रहती है। निराला की दृष्टि राष्ट्र निर्माण एवं समाज निर्माण पर लगातार बनी रहती है उनके पीछे के उपन्यासों कुल्ली भाट, बिल्लेश्वर बकरिहा, काले कारनामे, चोटी की पकड़, चमेली आदि में यथार्थ के प्रति प्रतिरोध ही चेतना उत्तरोत्तर विकसित होती गई है। किंतु प्रेमचंदयुगीन समाजोन्मुख आदर्शवाद के दौर में निराला के रोमांटिक उपन्यास भी इस विधा में और सामाजिक प्रतिबद्धता में भी, किन्ही उपन्यासों से कमतर नहीं हैं। गोपाल राय इस विषय में लिखते हैं कि 'हिंदी के सबसे बड़े उपन्यासकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में किसानों की तकलीफों और जमींदारों–साहूकारों तथा सरकारी तंत्र द्वारा उनके शोषण का चित्रण तो किया पर वे किसानों –मजदूरों द्वारा व्यवस्था के खिलाफ खुलकर चित्रण करने में कतरा गए। उनका ध्यान इस तथ्य की ओर प्रायः नहीं गया कि कांग्रेस का नेतृत्व जमींदारों–पूंजीपतियों के विरुद्ध किसानों–मजदूरों के विद्रोह को उभरने न देने की कोशिश करता था। इसका कारण था कांग्रेस – नेतृत्व का वर्ग स्वार्थ।... इस प्रकार कांग्रेस नेतृत्व और किसान जनता के वर्ग स्वार्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे, जिसे निराला ने प्रेमचंद की तुलना में ज्यादा अच्छी तरह से समझा था।'[17]

हाशिए की जनता का प्रतिनिधित्व निराला ने साहित्य में सबसे आगे रहकर किया। नारी एवं दलित मुक्ति संग्राम की पहली कड़ी के बतौर कथा–साहित्य के भीतर भी निराला सदा सर्वदा याद किए जाएंगे। भले ही निराला के यह प्रारंभिक उपन्यास रचना तंत्र और संगठन की दृष्टि से किसी बड़ी उपलब्धि के उदाहरण न दिखते हों लेकिन उनका महत्व साम्राज्यवादी और सामंती उत्पीड़न के सक्रिय प्रतिरोध की दृष्टि से हमेशा अक्षुण्ण रहेगा।

संदर्भ–सूची :–

1. हिंदी उपन्यास, निराला रचनावली, खंड 5, संपा. नंद किशोर नवल, राजकमल प्रका., दिल्ली, 1992,पृष्ठ 474।
2. अप्सरा, वक्तव्य, निराला रचनावली, खंड 5, पृष्ठ संख्या 19।
3. परमानंद श्रीवास्तव, निराला, भारतीय साहित्य के निर्माता श्रंखला, साहित्य अकादमी, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 78।
4. अप्सरा, वक्तव्य, निराला रचनावली, खंड 3, पृष्ठ संख्या 19।
5. राष्ट्र और नारी, निराला रचनावली, खंड 6, पृष्ठ संख्या 290।
6. अलका, निराला रचनावली, खंड 3, पृष्ठ संख्या 153।
7. वही, पृष्ठ संख्या 157।
8. वही, पृष्ठ संख्या 157।
9. वही, पृष्ठ संख्या 151।
10. वही, पृष्ठ संख्या 164–165।
11. वही, पृष्ठ संख्या 176।
12. डॉ. रामविलास शर्मा, निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण, पांचवीं आवृत्ति पृष्ठ संख्या 73।
13. निरुपमा, निवेदन, निराला रचनावली, खंड 3, पृष्ठ संख्या 340।
14. निरुपमा, निराला रचनावली, खंड 3, पृष्ठ संख्या 381–382।
15. वही, पृष्ठ संख्या 401।
16. वही, पृष्ठ संख्या 433।
17. डॉ. गोपाल राय, महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन, संपा. डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी, श्री बड़ाबाजार कुमारसम्य पुस्तकालय, कलकत्ता, पृष्ठ संख्या 260।

मध्यकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और 'खंजन नयन'

डॉ. सुनील कुमार मानस*

अमृतलाल नागर सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के खोजी रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं चाहे वह ऐतिहासिक दृष्टि से हो या फिर सामाजिक दृष्टि। वह निरंतर अपने लेखन में गहन अध्ययन एवं वार्तालाप से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर एक प्रकार से पारिवारिक–सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश की प्रमाणिकता को सिद्ध करते हैं और यही प्रमाणिकता उनके लेखन का यथार्थ है। इस यथार्थ की एक भाव–भूमि मार्क्सवादी विचारधारा भी तैयार करती है, जिसे प्रगतिवादी या प्रगतिशील–धारा की रचनाओं के रूप में जाना जाता हैं। अमृतलाल नागर की प्रगतिशीलता इस अर्थ से हटकर सांस्कृतिकता की ओर झुक जाती है। इस तरह हम कह सकते है कि वे सांस्कृतिक–प्रगतिशील सामाजिक रचनाकार हैं।

अमृतलाल नागर की वैचारिक यात्रा का औपन्यासिक सूत्रपात **महाकाल** के प्रकाशन से शुरू होता है और 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'खंजन नयन' आदि उपन्यासों से होते हुए 'पीढ़ियाँ' तक पहुँचता है। ये सभी उपन्यास गहन–खोजी–मनोवृत्ति की सामाजिक–सांस्कृतिक पड़ताल है जिसे सामाजिक परंपराओं के विकास के साथ जोड़कर देखना अधिक समीचीन जान पड़ता है। उनके जीवनी–परक उपन्यासों में 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' का विशेष रूप से नाम लिया जाता है। ये दोनों उपन्यास क्रमशः तुलसीदास एवं सूरदास के जीवन पर केंद्रित है और मध्यकालीन समाज के दिग्दर्शक भी। ये दोनों उपन्यास 'को बढ़ छोट कहत अपराधू' की तरह है, पर जितना लोगों की जुबान में 'मानस का हंस' चढ़ा, उतना 'खंजन नयन' नहीं। इसका एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि तुलसी के प्रति लोगों की सांस्कृतिक जिज्ञासा अधिक रही है और सूरदास के प्रति कुछ कम, लेकिन अमृतलाल की निगाहों में दोनों सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक चिंतन के अग्रदूत के रूप में हमारे सामने उपस्थित रहे हैं, जिनमें भारतीय ज्ञान की संपदा भी है और उसकी चिंता भी। ये दोनों उसकी रक्षा के लिए प्रतिबंध से दिखाई देते हैं। दोनों में जिजीविषा भरी पड़ी है। पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ये दोनों उपेक्षित किए जाते हैं पर परिवार, समाज, धर्म एवं संस्कृति को मनुष्यता का पाठ पढ़ाते में ये पीछे नहीं रहते। इस तरह से ये दोनों भारतीय सांस्कृतिक समाज के संरक्षक है और उसके भवितव्य के उन्नायक भी।

'खंजन नयन' के विषय में आलोचकों का ध्यान प्रायः नहीं गया और यदि कहीं गया है तो उपेक्षित रूप से। इसलिए इस उपन्यास को फिर से पढ़ने एवं समझने की आवश्यकता है। इस उपन्यास के संदर्भ में हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामचंद्र तिवारी ने अपने ग्रंथ 'हिंदी का गद्य–साहित्य' में लिखा है कि प्रस्तुत उपन्यास सूरदास के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें लेखक ने तत्कालिक जनजीवन को 'आधुनिक मानवतावादी'[1] दृष्टि से देखा है। कुछ इसी तरह से गोपाल राय ने भी अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में लिखा है कि 'खंजन नयन, मानस का हंस की ही परंपरा का, महाकवि सूरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। सूरदास के भक्त और कवि व्यक्तित्व को उभारना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए जन्मान्ध बालक सूर के चरित्र का विकास बहुत मार्मिक है। यह संघर्ष सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक–मनोवैज्ञानिक स्तर पर उनके जीवन–पर्यंत चलता रहता है, जिसकी आँच में तप कर सूर परम भक्त कवि सूरदास बनता है। सूरदास के व्यक्तित्व–निर्माण के क्रम में नागर जी ने तत्कालीन ऐतिहासिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी सजगता के साथ अंकन किया है। यद्यपि सृजनात्मक दृष्टि से खंजन नयन, मानस का हंस की ऊँचाई नहीं प्राप्त कर सका है पर नागर जी की औपन्यासिक प्रतिभा की चमक इसमें भी दिखाई पड़ती है।'[2] ऐसा लगता है जैसे डॉ रामचंद्र तिवारी ने 'खंजन नयन' को पढ़ा ही नहीं और गोपाल राय ने अपने अंतर्विरोध की राय 'खंजन नयन' के विषय में रख

*** प्रधान–संपादक–आलोचन दृष्टि, एवं प्राध्यापक– हिन्दी, बहाउद्दीन आर्ट्स कालेज, जूनागढ़ (गुजरात)**

दी। एक तरफ वे इस उपन्यास को 'मानस का हंस' से कमतर या कमजोर आंकते हैं और दूसरी तरफ नागर जी की प्रतिभा में उनको चमक भी दिखाई देती है। इस तरह से दोनों महत्त्वपूर्ण आलोचक 'खंजन नयन' को 'मानस का हंस' का पिछलग्गू बना देते हैं, और अन्य आलोचकों एवं पाठकों का ध्यान ही इस उपन्यास की ओर जाता नहीं।

प्रस्तुत उपन्यास अमृतलाल नागर के गहन अध्ययन का परिणाम है। खासतौर सीताराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'सूरसागर', 'श्रीमद्भागवत' एवं 'पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य'; गोपीनाथ जी की 'श्रीकृष्ण प्रसंग', डॉ. सैयद अतहर अब्बास रिजवी द्वारा अनूदित 'आदि तुर्ककालीन भारत' एवं 'तुगलककालीन भारत', डॉ. आशीर्वादी लाल कृत 'सल्तनत ऑफ देलही', डॉ. मोती चंद्र द्वारा लिखा 'काशी का इतिहास', डॉ. कृष्णदत्त बाजपेई द्वारा लिखित 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास', प्रभु दयाल मित्तल कृत 'सूर निर्णय', पं. बालमुकुंद चतुर्वेदी का 'सप्ततरंगात्मक सूरसागर' आदि पुस्तकों का अध्ययन, परासौली, मथुरा, गोकुल, आगरा, काशी और अयोध्या आदि नगरों का भ्रमण एवं महत्वपूर्ण वार्ताएं– इस पुस्तक के संवेदनात्मक अंशों के उपजीव्य हैं, जिसे कल्पना के रंग में रंगकर नागर जी जीवंत कर दिया है।

इस उपन्यास में 21 परिच्छेद हैं, जिसे पूरा करने में लगभग 1 वर्ष का समय लगता है जिसके विषय में स्वयं उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है कि 'उपन्यास 30 नवंबर 1979 को सौ. अचला के घर में लिखना आरंभ किया। अधिकांश भाग 'श्रीकृष्ण जन्मभूमि अंतरराष्ट्रीय विश्राम गृह' में और अंतिम परिच्छेद परासौली की सूर कुटी में 23 अक्टूबर 1980 ई. शरद पूर्णिमा के दिन लिख कर इसे पूरा किया।'[3]

खंजन नयन मूलतः जीवनीपरक उपन्यास है, जिसमें केवल सूरदास के जीवन का उल्लेख नहीं है बल्कि उस समय के सामाजिक–सांस्कृतिक मध्यकालीन इतिहास का दिग्दर्शन भी है। केंद्र में सूरदास को रखते हुए उस समय के परिवेश को जीवंत कर देना ही नागरजी का प्रयास रहा है। इस प्रयास में सूरदास के जीवन के संपूर्ण आयामों की तलाश की है और एक मुकम्मल सामयिक तस्वीर भी। इस मुकम्मल तस्वीर में बहुत से प्रसंग है जो आकर्षित करते हैं। काले नाग का संदर्भ, कंतों का संदर्भ विशेष रुप से। ये नई उद्भावनाएं लगती हैं। मथुरा की जिस अंधियारी कोठरी में सूरदास के रुकने की व्यवस्था कालू करता है, उसी कोठरी में एक बूढ़ा नाग भी रहता है। इस बूढ़े नाग की फुँफकार को देखकर शुरुआत में सूरदास डर जाता है लेकिन धीरे–धीरे उससे उसका अनुराग बढ़ता जाता है। यहाँ तक की वह काला नाग सूरदास के सीने में बैठकर नाना प्रकार के कृत्य करने लगता है। सूरदास अपने हाथों से ही उसकी केचली छूटाता है। सूरदास उसके लिए दूध की व्यवस्था भी प्रतिदिन करने लगता है। सूरदास का नाग के प्रति ये जो भावनात्मक लगाव है, निश्चित रूप से स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। यह स्वाभाविक है भी नहीं किन्तु घटना को प्रसंगोद्भावना की दृष्टि से स्वीकार कर लेने में साहित्यिक भाव की पुष्टि हो जाती है, भले ही वह ऐतिहासिक दृष्टि एवं स्वाभाविक दृष्टि से मेल न खाती हो।

इसी तरह से कंतों भी एक प्रसंगोद्भावना लगती है जिसमें सूरदास के प्रेम की पुष्टि होती है और यह पुष्टि शारीरिक धरातल से ऊपर उठा हुआ मानसिक–आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा हुआ लगता है। दोनों एक–दूसरे को बेहद पसंद करते हैं। दोनों को एक–दूसरे के इज्जत और आबरू की पारिवारिक एवं सामाजिक समझ भी है। दोनों किसी अन्य के प्रति आकर्षित नहीं होते। दोनों पूरी निष्ठा के साथ कुछ लगाव, कुछ तनाव में भी साथ रहने की कोशिश करते हैं। कंतो सूरदास की धार्मिक जगहों में घूमने की इच्छा पूरी करने का– हर संभव प्रयास करती है। जब सूरदास और कंतो को पीटा जाता है, उसके बाद सूरदास मना करता है तुम मेरे पास मत आया करो, जिस पर कंतो कहती है कि 'तुमे मेरो साथ रहवो अच्छो नांय लगे, पर मैं तो या चरनन को छोड़ूंगी नांय और भौत छुड़ाओगे तो इन्हीं पै अपने परान तज दऊंगी।'[4] यह एक ऐसा संदर्भ है जहाँ सूरदास पूरी तरह से कंतो के आगे मौन रहकर सब स्वीकृत कर लेता है। अयोध्या नगरी के दर्शन करने की चाहत में सूरदास कंतो के साथ निकलता हैं और इलाहाबाद से जब आगे बढ़ते हैं, तभी रास्ते में पठानों के गांव में नूरे नामक व्यक्ति से उनका झगड़ा होता है और कंतो

मारी जाती है, सूरदास कोल्हू का बैल बन जाता है। यह धर्म के औन्मादिक रूप का चित्रण है। इस गांव में कंतो की मृत्यु और सूरदास का तेल पेरना– हिंदू मुस्लिम की सांप्रदायिक झड़प की झलक है। पर ध्यान्तव्य है कि उपन्यास में जो परिकल्पना सूरदास की प्रेमिका कंतो की हुई है वह बहुत मार्मिक है। कंतो और सूरदास के बीच गहरा लगाव हो जाता है और यह लगाव इतना बढ़ जाता है कि समाज की नजरों में वह स्वीकार नहीं हो पाता, जिसके चलते सूरदास को मारा–पीटा जाता है और कंतों को भी। लेकिन इन दोनों के लगाव में कोई कमी नहीं आती है। कृष्ण–भक्ति से ओतप्रोत सूरदास को पाकर कंतो अपने को धन्य समझती है और सूरदास कंतो को अपना एक सहारा। यहाँ तक कि सूरदास की कई इच्छाओं की प्रतिपूर्ति भी कंतो करती/कराती है। गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा, मथुरा भ्रमण, पुराना शिवाला, वृंदावन आदि जगहों का कंतो ही सूरदास को भ्रमण कराती है। इसी क्रम में जब सूरदास की मनसा अयोध्या देखने की होती है तो कंतो ही उसे ले करके जाती है। यह अलग बात है वह यात्रा उसकी पूरी यात्रा हो जाती है और सूर की अधूरी। सूरदास कंतों का यह प्रेम चित्रण के आधार पर काफी हद तक शारीरिकता से ऊपर उठा हुआ जान पड़ता है।

उपन्यास की शुरुआत वृंदावन से मथुरा जा रही नाव में बैठे यात्रियों के आपसी वार्तालाप एवं नाव को मथुरा न ले जाने के आगाह से होती है– ''मथुरा मती जइयों। खून की मल्हारें गाई जा रही हैं वांपे।''[5] इस वाक्य से नाव में बैठे सभी लोगों के होश उड़ जाते हैं। पूँछने पर मालूम होता है कि 'सुलतान के राज में मारकाट के काजे कभी कोऊ बात होवे है भला। त्यौहार कौ दिना, हमारी माँ–बहन के माथे का सिंदूर आग की लपटों सौ उठ रयो है चौराये चौराये पै...।''[6] नाव के सभी लोग परेशान होते हैं। सावनी तीज का यह दिन कुमारी और सुहागिनों का त्यौहार है लेकिन वहाँ खून की होली शुरू हो जाती है। रचनाकार ने लिखा है कि 'पिछले 8–9 बरसों से चले आ रहे प्रलय काल में जिन सुहागवंतियों की ससुरालें मथुरा के आस–पास के गांवों और कस्बों में हैं वे तो तीज के दिन अपने मैके नहीं आ पाती हैं, पर शहर के भीतर आस–पास के मोहल्लों में या शहर से लगे गाँवों में जिनके मैके–ससुराल हैं उनके दिलों में तीज का उल्लास पत्थर पर हरियाली–सा उमग ही पड़ता है। मृत्यु की भयानकता भी जीवन के सांस्कारिक उत्सव को जड़ नहीं बना सकी। हाथों में मेहंदियां रची, गुलगुले पके, झूले पड़े, कजरी मल्हारें गाई जाने लगी।'[7] रचनाकार इन सब उत्सव धर्मिता के बावजूद भी लिखता है कि 'बौहरे खुन्नामल के घर घुसकर के उनके कर्जदार पठान और उसके साथियों ने खूनी चीज बना डाली। न इज्ज़त बची न लक्ष्मी।'[8] साप्रदायिक की एक और चर्चा करते हुए लिखते हैं कि 'धर्म के नाम पर बदला लेने के लिए स्त्री और धन की लूट कुछ लोगों के लिए पुण्य कार्य बन गई। कुछ बरसों पहले सिकंदर सुल्तान ने जब गद्दी पर बैठने के बाद महावन से आकर मथुरा में पहली मारकाट मचाई थी तब जो परिवार जबरन मुसलमान बनाए गए थे वे ही इस समय शहर में सबसे अधिक आतंककारी हैं। मथुरा के सैकड़ों घरों में लाशें पड़ी है, अनेक मोहल्ले धू–धू कर जल रहे हैं। काजियों, मुल्लाओं की जय–जयकार बोलकर, सुल्तान और दीन की हुचकियां ले–लेकर नए मुसलमान गुंडे हिन्दू बस्तियां लूट रहे हैं।'[9] इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में सांप्रदायिक रूप से हिंदू धर्म को दमित करने के जितने उपक्रम हैं उनकी भी यदा–कदा चर्चा की गयी है। यहाँ तक की हिंदुओं के अंदर मुस्लिम हमलावरों का भय व्याप्त रहता है।

एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग दाऊ बाबा से मिलने का है जिसमें वे सूरदास के पीठ में हाथ रखकर कहते हैं कि ''पुत्र, यदि तू काया से शूरवीर होता तो तुझसे कहता कि देश की स्वतंत्रता के लिए विदेशी दुष्टों का नाश कर। पंडित होता तो कहता कि स्वाध्याय में आसक्ति रमाँ तू है कवि, गायक है। हजारों लाखों को अपनी काव्य और गायन कलाओं से रिझा सकता है। लोक मानस विखंडित और आस्थाहीन हो रहा है। इन्हें जीने के लिए आस्था चाहिए, शांति चाहिए, रस चाहिए। भजन–कीर्तन से अपनी आसक्ति बढ़ा और लोक मंगल के लिए नाम प्रचार कर। तेरा भी मंगल होगा। राजगढ़ के स्वामी हरिदास इन दिनों बृंदावन में रस साधना कर रहे हैं। एक बार उनके पास भी हो आ। तुझे प्रेरणा–प्रकाश मिलेगा।'[10] इस तरह सूरदास के

जीवन में कई उपदेशक आते हैं जो उन्हें शिक्षित–दीक्षित करते हैं। संगीत, साहित्य और ज्योतिष की शिक्षा में उसने जो महारथ हाशिल की, वह इन्हीं महानुभावों से।

काशी के ही नरेश सूरदास को छुड़ाते हैं और उसे अयोध्या ले जाते हैं जहाँ नागेश्वर नाथ जी के दर्शन करता है एवं अयोध्या नगरी घूमता है। कीर्तन–भजन करता है। जिसके विषय में नागर जी ने लिखा है कि 'ब्रज का अंधा सूर अवधवासियों की आंखों का नूर बन गया।'[11] फिर वह काशी आ जाता है और अपने संगीत, प्रवचन के माध्यम से महत्वपूर्ण पहचान बनाता है। काशी का मध्यकालीन समाज बड़े–झमेले रखता है, जिसके शिकार तुलसी भी हुए और सूरदास भी। तुलसी ने काशी नहीं छोड़ा, पर सूर काशी छोड़कर के महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य बन गए और फिर आजीवन उनके कहने पर श्रीकृष्ण के संकीर्तन गाते रहे। सूरदास का स्वाभिमानी व्यक्तित्व कभी किसी के सामने झुका नहीं। धर्म की डींग उसे कभी नहीं व्यापी। उसने काशी प्रवास के समय कहा भी है– 'मैं यवनो की बस्ती में भी गाऊंगा। जहाँ मेरे श्याम कहेंगे वहाँ जाऊंगा।'[12] जैसा सूर के श्याम मन ने कहा वैसा उसने किया और 'न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर' की तरह अपने को प्रभु चरणों पर समर्पित कर दिया।

बालक सूरदास के बाल–मन का चित्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसका यह बाल–मन कई बार कृष्ण के प्रति कई तरह की जिज्ञासा रखता है। जब उसे मालूम होता है कि अकबर का अर्थ सर्वश्रेष्ठ होता है और अल्ला का पवित्र, तो कहता है 'श्याम तुम सचमुच अकबर हो', 'श्रीकृष्ण तो स्वयं अल्ला है, उन्हें कौन मारेगा।'[13] जब मन खींझता है तो यह भी कह डालता है कि '...इस रूप से तो तुम्हारा मर्यादा पुरुषोत्तम वाला रूप ही श्रेष्ठ है। अन्याय का प्रतिकार करने के लिए उन्होंने धनुषबाण धारण तो किया था...किन्तु तुम भी वृन्दावन विहार छोड़कर कंस को मारने के लिए मथुरा धाए थे। साधुओं की रक्षा और दुष्टों का संहार करने के लिए तुम भी अवतार धारण करके हेतु वचनबद्ध हो। वेगि पधारो राधा माधव।'[14] पर कई बार मानसिक उद्वेग इतना बढ़ जाता है कि यह भी कह डालते हैं कि 'हमारे कृष्ण भगवान तो अब अल्ला के आगे घुटने टेक चुके हैं।' पर दूसरे क्षण पलटवार करते हैं– 'विश्वास से शक्ति उत्पन्न होती है, दया निधान। अविश्वासी मनुष्य ही धर्म परिवर्तन की बात सोच सकता है।'[15] या 'श्याम मैं तुम्हारे संबंध में कुछ भी बुरा नहीं सुनना चाहता।'[16] इन सब बातों का अभिप्राय कृष्ण से अनुग्रह करना है कि मथुरा की म्लेच्छों से रक्षा करें। म्लेच्छ एक प्रकार की अमानवीय विचारधारा का भी प्रतीक है, जिसकी सूरदास समाप्ति देखना चाहता है।

एक और महत्वपूर्ण प्रसंग है सूरदास के जीवन का। सूरदास एक सामान्य ब्राम्हण परिवार, जो काफी गरीब था, में पैदा होता है। अपने भाइयों में छोटा है। पिता संगीत के अच्छे जानकार रहते हैं और जैसा गला सूरदास को मिलता है वैसा किसी अन्य भाई को नहीं। अस्तु सभी उससे जलते हैं। माँ और पिता ही उसकी चिंता करते हैं। अन्य को कोई परवाह नहीं रहती। माँ उसे श्याम सखा बनाती है, और कहती हैं– यही तुम्हारे साथ खेलेंगे। बालक सूर कई बार निराश होता है लेकिन अंत में कृष्ण स्वयं सूरदास की जुबान से खेलते रहते हैं और इस खेल में सूरदास हमेशा के लिए मदमस्त हो जाता है।

कई बार सूरदास का मन अतीत की स्मृतियों की ओर लौटता है जिसमें सबसे अधिक उसकी माँ उसे याद आती है। माँ ही खाने, पीने खेलने में उसका सहयोग करती है। जब सूरदास को कोई अपना मित्र नहीं बनाता। कोई उसके साथ नहीं खेलता, तो उसकी माँ उसे कहती है कि तू श्याम को अपना मित्र बना और उन्हीं के साथ खेल, और फिर बालक सूरदास कई बार श्याम को पुकारता है, उनके न आने पर निराश भी होता है लेकिन उसके मन में श्याम के प्रति गहरा अनुराग और विश्वास जगता एवं बढ़ता है।

एक बड़ी दिलचस्प घटना है। अंधे सूरदास को सब कुछ बताने और समझाने के लिए उसकी माँ उसे पक्षियों और पशुओं के मिट्टी की मूर्ति बना कर देती है, और कहती है इसे छू करके पशुओं की पक्षियों को आकृति को पहचानों। उन्हीं के शब्दों में 'मैया ने उनके लिए तरह–तरह के पशु पक्षी बनाए थे। तोता, कौवा, गाय, हाथी, घोड़ा। तोता हरा होता है, कौवा काला होता है, गाय, घोड़ा सफेद–भूरे, काले, चितकबरे

रंगों के होते हैं। चील सबसे बड़ी, कागा उससे छोटा, सुग्गा उससे भी छोटा, गौरेया और छोटी लाल मुनिया सबसे छोटी।'[17] इस तरह से माँ अपने सूरदास को सूरज बनाती रहती है। माँ कभी भी सूरदास को सूरा नहीं बोली, हमेशा सूरज ही कहती है।

सूरत का मन बहुत जिज्ञासु रहता है। हर एक बात को वह जानना चाहता है और यह जानना उसको अपने स्पर्श से ही संभव होता है। संवेदनशील इतना की हर एक छोटी–सी बात को शब्दों की ध्वनि के माध्यम से तुरंत भाफ लेता है। आखिर जिसके प्राणों की भाषा संगीत बन गई हो, उसे हर चीज संगीत से ही समझ में आ जाती है। सूरदास जितना बड़ा संगीतज्ञ है, उतना ही बड़ा ज्योतिषी। उसने अपने ज्योतिष के दम पर बड़ी पहचान हासिल की लेकिन अपने ज्योतिष को व्यापार का विषय नहीं बनाया। लोगों की सेवा करना अपना धर्म समझा। इसी धर्म के आधार पर उसने ज्योतिष का प्रयोग किया। चाहे परिवार के संदर्भ में हो या फिर समाज के संदर्भ में।

सूरदास की जो गहरी पीड़ा है वह यह है कि जो म्लेच्छों के दिन प्रति दिन के आक्रमण से जनता भयाक्रांत हो रही है और भारतीय संस्कृत की मर्यादा का नाश हो रहा है। सांस्कृतिक धार्मिक तीर्थ–स्थलों को लूटा जा रहा है। बहू–बेटियों के साथ अमर्यादित कृत्य हो रहे है। ये सभी बातें कहीं न कहीं मानवीय जीवन को समाप्त कर रही हैं। सूरदास उस मानवीय–व्यवस्था को कायम करने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता हैं।

इस तरह सूरदास का पूरा व्यक्तित्व स्वाभाविक एवं सांस्कृतिक परिवेश की निर्मित करने वाला है। भले ही उसको जीवन में तमाम पीड़ाओं का सामना करना पड़ा हो किंतु वह है हमेशा मनुष्यता के पक्ष में खड़ा हुआ दिखाई देता है। इसी मनुष्यता के सांस्कृतिक परिवेश की रक्षा के लिए अमृतलाल नागर ने खंजन नयन की रचना की है, जिसमें सूरदास 'खंजन नैन रूप रस माते' के रूप निरूतित होकर, सजीव एवं जीवंत हो उठते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2007, पृ. 203।
2. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ. 227।
3. खंजन नयन, अमृतलाल नगर, राजपाल एंड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1981, भूमिका, पृ. 8।
4. वही, पृ. 107।
5. वही, पृ. 9।
6. वहीं।
7. वहीं।
8. वही, पृ. 8–9।
9. वही, पृ. 9।
10. वही, पृ. 88।
11. वही, पृ. 131।
12. वही, पृ. 143।
13. वही, पृ. 81।
14. वही, पृ. 102।
15. वही, पृ. 66।
16. वही, पृ. 82।
17. वही, पृ. 93।

ꕤ★ꕤ

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री एवं दलित अस्मिता के स्वर

डॉ. दिनेश साहू*

समकालीन हिंदी कविता अस्मिता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में हर व्यक्ति अपनी अस्मिता को बनाये रखना चाहता है एवं अनेक रचनाकारों को अपने जाति एवं समुदाय की अस्मिता के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। इन्हें अपनी अस्मिता की पहचान दिलाने के लिए कभी–कभी विद्रोह का भी सामना करना पड़ता है। मुख्यधारा से अलगाव का बोध व्यक्ति में अस्मिता का प्रश्न उठाता है। 'अस्मन' शब्द से 'अस्मिता' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'मैं हूँ' यानि मेरी अपनी पहचान। प्रसिद्ध कथाकार राजेंद्र यादव का मानना है कि "अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ–साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे सन्दर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर, पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग के हिस्से हैं।"[1] ठीक इसी तरह प्रसिद्ध चिंतक अमर्त्य सेन का मानना है कि अस्मिता को प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा हिंसा को जन्म देती है। अपनी अस्मिता पर आये खतरे के समक्ष अन्य भावनाएँ जैसे सहानुभूति, सहनशीलता, सद्भावना इत्यादि क्षीण हो जाती है। व्यक्ति कभी कभी सिर्फ अपनी 'अस्मिता' की चिंता नहीं करता है बल्कि वह अपने पूरे वर्ग, जाति, समुदाय की अस्मिता की चिंता करता है। समाज द्वारा अपने वर्ग को विविध अधिकारों से वंचित रखने के लिए वह अपनी आवाज उठाता है। प्रसिद्ध लेखिका अर्चना वर्मा का मानना है कि "अस्मिता एक हद तक सम्बद्धता, सरोकार, लगाव, और अपनत्व का प्रश्न भी है जिसे अंग्रेजी में 'सेन्स ऑफ बिलानगिंग' कहा जाता है।"[2]

इस प्रकार देखा जाता है कि अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे सन्दर्भ तय करते हैं। ये सन्दर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा इत्यादि के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे ही हमारे समाज में स्त्री और दलित हमेशा से अपनी अस्मिता का प्रश्न साहित्य के माध्यम से उठाते आ रहे हैं। अगर स्त्री की बात करें तो प्राचीन युग से स्त्री को समाज में वैधानिक दृष्टि से उच्चतम माना गया है, परन्तु व्यावहारिक रूप से उसे वह दर्जा नहीं दिया गया। उसे सदियों से समाज में नीचा स्थान दिया गया। उसे हमेशा पुरुषों के अधीन रहने का आदेश दिया गया। परिवार के दायित्व उसे सौंप दिया गया ताकि वह घर की चारदीवारी से बाहर जा न सके। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन देखने को मिला। संविधान बनने के समय लिंग, जाति और भाषा आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया। परन्तु दुखद स्थिति यह रही कि संविधान में कही गयी बातों का अनुपालन जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हो पाया। पूर्व से चली आ रही पुरुष सत्ता की सोच को वह बदल नहीं पाई। महादेवी वर्मा ने स्त्री की इस दशा पर उनका निबन्ध–संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है "युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े–बड़े साम्राज्य बह गए, संस्कृतियाँ लुप्त हो गई, जातियां मिट गई, संसार में अनेक असम्भव परिवर्तन संभव हो गए, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी। आज भी जब सारा गतिशील संसार निरंतर परिवर्तन की अनिवार्यता प्रमाणित कर रहा है, स्त्रियों के जीवन काटछांट कर उसी साँचे के बराबर बनाने का प्रयत्न हो रहा है जो प्राचीनतम युग में ढाला गया था।"[3] मध्यकाल में स्त्रियों के प्रति समाज में अनेक कठोर नियम बनाये गए थे और स्त्रियाँ इसे बड़े दुःख के साथ अनुपालन भी करती थी। उसका मुख्य कर्तव्य पुरुषों की सेवा से जोड़ दिया गया था। मोहिनी, ठगिनी, नागिन, माया आदि कहकर उसका बहिष्कार किया गया। वैसे भारत में अगर देखा जाय तो स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को आधुनिक काल में विभिन्न समाज–सुधारकों ने उठाना शुरू कर दिया था। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में नवजागरण की लहर के साथ

***सहायक प्रोफेसर एवं प्रभारी, हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम –737101।**

स्त्री से जुड़े प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया जाने लगा था। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले आदि ने स्त्री को समाज में पुरुषों के बराबर अधिकार देने के लिए तथा उसकी शिक्षा व्यवस्था को सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किये। समाज में फैली विविध कुप्रथाओं के कारण स्त्री की जो हीन दशा थी उसे इन समाज सुधारकों ने दूर करने का प्रयास किया। उपर्युक्त समाज सुधारकों के प्रयत्न से स्त्रियों के अधिकार में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन ने नारी अस्मिता की पहचान में काफी सहयोग किया। मिशाल के तौर पर बड़ी संख्या में महिलाओं ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में भागीदारी निभाई। इस संदर्भ में आशारानी व्होरा लिखती है– "नारी जागरण का प्रश्न हो या नारी अधिकारों का या राष्ट्रीय कार्यों में नारी की भागीदारी का, पुरुषों ने आगे बढ़कर उसका आह्वान किया और दोनों कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई व समाज–सुधार के कार्यों में भाग लेते रहें।"[4] इस तरह स्वाधीनता की लड़ाई में स्त्री–चेतना का एक भव्य–रूप हमें देखने को मिलता है, जिसमें वह घर की चारदीवारी को लांघते हुए पुरुषों के साथ बराबर की भागीदारी लेती हैं। नारी ने स्वाधीनता आन्दोलन में जो योगदान दिया वह समाज के सभी पुरुष वर्गों को स्तब्ध करने में सक्षम रहा और वह स्वयं को जागृत कर प्रगति के मार्ग पर चलने में उन्मुख हुई। इसके साथ साथ 1950 ई. से लागू हुए हमारे भारतीय संविधान में समान दर्जा प्राप्त करने के बाद स्त्रियों ने हर क्षेत्र में अपनी उन्नति की है। आज नारी अपनी अस्मिता की पहचान को समाज में बरकरार रखने के लिए शिक्षा जैसी अस्त्र को अपनाई हुई है। वह जानती है कि यह शिक्षा ही उसे समाज में पुरुषों के साथ बराबरी का अधिकार दे सकता है।

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति एवं संविधान लागू होने के बाद भारतीय स्त्रियाँ अपने अधिकारों से परिचित होती है। वे साहित्य के क्षेत्र में अपनी अस्मिता को लेकर विभिन्न सवाल कराती हुई नजर आती हैं। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी के माध्यम से वे अपने अस्तित्व से हमें रूबरू कराती है। समकालीन कविता इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनामिका, रंजना जायसवाल, रमणिका गुप्ता, वंदना मिश्र, कात्यायनी, निर्मला गर्ग, अर्चना वर्मा, निलेश रघुवंशी, तेजी ग्रोवर, सविता सिंह आदि प्रमुख कवयित्रियों ने स्त्री अस्मिता के विविध पहलुओं को उजागर किया है। अनामिका की समकालीन कवयित्रियों में एक अलग पहचान है। उनकी अधिकतर कविताओं में स्त्री अस्मिता का स्वर देखने को मिलता है। उनकी 'चीख' शीर्षक कविता में स्त्री पर सदियों से हो रहे अत्याचार के कारण उसमें विद्रोह की भावना जगने लगी है। पुरुष द्वारा बनाये गए नैतिक मानदंडों से स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है। जैसे–

"एक चीख मेरे भीतर दबी है!
उसका बस चले अगर तो
मेरी पसलियाँ तोड़ती
निकल आये बाहर।"[5]

समकालीन कवयित्री रंजना जायसवाल इस संसार में स्त्री की पहचान करवाती हुई अपनी कविता 'जब मैं स्त्री हूँ' में व्यंग्यात्मक स्वर में लिखती है।

"मैं स्त्री हूँ और जब मैं स्त्री हूँ/तो मुझे स्वतन्त्र
प्रेम का अधिकार नहीं है/करना होगा उसी से प्रेम
जिसे वे चुनेंगे हमारे लिए
उनके प्रेम–प्रस्तावों को/स्वीकारना जरूरी है हमारे लिए
पर हमारी/पहल पर वे
काट लेंगे हमारे नाक–कान।"[6]

इस कविता के माध्यम से लेखिका कहती है कि स्त्री होने से समाज में हमें कोई भी निर्णय का अधिकार नहीं लेने दिया जाता। लेकिन कवयित्री इस कविता के माध्यम से स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को समाज के सामने पेश करना चाहती है कि अब वह जमाना नहीं रहा किं हमारे पास कोई अधिकार नहीं है।

वह अपने अधिकार से परिचित है इसीलिए बस पुरुष समाज को इतना कह देना चाहती है कि वह भी मनुष्य है।

रमणिका गुप्ता ने भी स्त्री अस्मिता जैसे विषयों को अपनी विविध कविताओं में उठाया है। उनकी 'आदमी की पसली' नामक कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कविता में स्त्री की आत्मनिर्भरता को उन्होंने अंकित किया है। वर्तमान स्त्री किसी का बोझ बनकर नहीं जीना चाहती है। वह अपनी जिम्मेदारी स्वयं लेना जान गयी है। समाज में वह अपनी पहचान अपने कर्मों के माध्यम से स्वयं बनाना चाहती है।

"मैं मरूंगी भी नहीं
नहीं किसीको अपना गला घोंटने दूंगी
और न ही जिन्दा रहने की अहसास मानूंगी
किसी का बोझ नहीं बनूँगी
चूँकि मैं स्वयं बोझ बर्दाश्त करने की क्षमता रखती हूँ।"[7]

वंदना मिश्र भी अपनी कविताओं में स्त्री अस्मिता के कई सवाल उठाई हैं। समाज में स्त्री को हमेशा परतंत्र के रूप में अपनी जिंदगी गुजारनी पड़ी है। इसीलिए कवयित्री नारी को जागृत करने का प्रयास करती है। वह स्त्री को पुरुष के शिकंजे से बाहर निकलकर स्वयं की दुनिया गढ़ने का आह्वान करती है।

"नहीं अब और नहीं/कहती रहोगी कब तक
सही समय आने की/देखोगी राह कब तक
तिनके की सहारे की/जोहोगी बाट कब तक
उठो अब कर डालो/जो भी करना चाहो
कहेगा कौन क्या/कहेगा कब तक/कब तक।"[8]

समकालीन कवयित्रियों में कात्यायनी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस समाज में वे स्त्री को पुरुष के साथ बराबर रूप में चलने का आगाह करती है। कात्यायनी का 'सात भाइयों के बीच चम्पा' स्त्री अस्मिता पर लिखी गयी कविताओं का संकलन है, जिसमें अत्यधिक कविताएँ स्त्री–अस्मिता पर केन्द्रित है। उनके अनुसार नारी जीवित रहकर ही इस समाज में अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है। वह लिखती है–

"मौत की दया पर/जीने से/बेहतर है
जिन्दा रहने की ख्वाहिश/के हाथों मारा जाना।"[9]

समकालीन कवयित्री इंदु जैन, निलेश रघुवंशी, अमृता प्रीतम, तेजी ग्रोवर, सविता सिंह आदि की कविताओं में भी स्त्री अस्मिता के विविध स्वर उठाये गए हैं। इंदु जैन परंपराओं के प्रति विद्रोह करती हुई स्त्री–पुरुष की समानता की बात करती है। प्रभा खेतान द्वारा रचित 'सीढ़िया चढ़ गयी मैं' काव्य–संग्रह की अधिकतर कविताओं में स्त्री अस्मिता एवं जागरूकता की अभिव्यक्ति है। वे नारी को रूढ़ि और संकुचित मानसिकता से बाहर निकलने का ऐलान करती है। अमृता प्रीतम की कविताओं की स्त्रियाँ स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए घर की चारदीवारी से बाहर निकलने का साहस करके अपना अलग अस्तित्व बनाने का साहस रखती है। सुषमा सिंह भ्रुण हत्या, परिवार में बेटा–बेटी में किया जानेवाला भेदभाव के प्रश्न अपनी कविताओं में उठाती है। इस प्रकार उपर्युक्त कवयित्रियाँ समाज में सदियों से चली आ रही स्त्रियों पर अत्याचार, समाज में दबी, कुचली, असंवेदनशील मान्यताओं को चकनाचूर कर एक नवीन मान्यता का शिल्यान्यास करने का प्रयास करती हैं।

दलित अस्मिता का स्वर भी आधुनिक काल में विभिन्न कवियों द्वारा द्वारा उठाये जा रहे हैं। सदियों से समाज में दलित की स्थिति सभी क्षेत्रों में सबसे निम्न होने के कारण आज दलित लेखकों द्वारा उनकी

अस्मिता पर विविध प्रकार की चिंताएं साहित्य में देखने को मिलता है। सदियों से दलित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक शोषण के शिकार होते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त अशिक्षा, बेरोजगार, बीमारी, छुआछूत आदि समस्याओं से भी वह जूझ रहे हैं। सवर्ण समाज द्वारा सदियों से हाशिये पर रखे जाने के बाद दलित उस रूढ़ बंधन से निकलने का प्रयास कर रहा है। आधुनिक काल के आरम्भ में ही 'हीरा डोम' द्वारा 'अछूत की शिकायत' कविता लिखी गयी थी। इस कविता में हीरा डोम भगवान से शिकायत करते हैं कि आप प्रहलाद, गजराज, विभीषण और द्रौपदी की रक्षा में तत्परता दिखाते हैं, किन्तु हमने ऐसा क्या अपराध किया है कि आप हमारी रक्षा नहीं करते हैं। जिस समय हीरा डोम की यह कविता छपी थी उस समय आज की तरह दलित अस्मिता के प्रश्न दलित लेखकों द्वारा नहीं उठाये जा रहे थे। तत्कालीन समय में हम सभी अंग्रेजों के अधीन अपना जीवन–निर्वाह कर रहे थे। अपनों के बीच में समाज में भले ही भेद–भाव था परन्तु वह समय था हम सभी को मिलकर स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने का।

1960 ई. के बाद हिंदी जगत में दलित लेखकों की एक बड़ी मंडली देखने को मिलती है। ये दलित लेखक साहित्य के प्रायः सभी विधाओं में अपनी लेखनी से दलित अस्मिता के प्रश्नों को सामने लाते हैं। कविता के क्षेत्र में भी ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह 'बेचैन', मोहनदास नैमिशराय, कँवल भारती, मलखान सिंह, सुखवीर सिंह, कर्मशील भारती, दयानंद बटोही आदि प्रमुख कवियों के नाम लिए जा सकते हैं।

दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में दलित अस्मिता के विविध प्रश्न को उठाते हुए लिखते हैं "हजारों साल के ऐतिहासिक परिदृश्य में दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न सहा है, विषमताएँ झेली है, भेदभाव और शोषण ने उसके मस्तिष्क पर जो गहरी रेखाएँ खींची है, ऐसी वर्ण व्यवस्था से उपजी विषमताओं और विसंगतियों को दृष्टि में रखकर ही दलित साहित्य का विश्लेषण करके सौंदर्यशास्त्र और साहित्यिक मूल्यांकन के अध्ययन की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। साहित्यिक सृजन दलित जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने के साथ उसे पहचानने का भी एक साधन है।"[10] उन्होंने अपने 'सदियों के संताप' काव्य–संग्रह में संकलित विविध कविताओं में दलित अस्मिता के प्रश्न उठाये हैं। वे लिखते हैं–

"हमने अपनी उँगलियों के किनारों पर दुःस्वप्न की आँच को
असंख्यन बार सहा है/ताजा चुभी फाँस की तरह
और अपने ही घरों में/संकीर्ण पतली गलियों में
कुनमुनाती गंदगी से/टखनों तक सने पाँव में
सुना है/दहाड़ती आवाजों को
किसी चीख की मानिंद/जो हमारे हृदय से
मस्तिष्क तक का सफर तय करने में/थक कर सो गई है।"[11]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि अपने लोगों पर गुजरी हुई उस व्यथा का जिक्र कर रहा है, जो बहुत ही दर्दनाक था। इसी प्रकार वाल्मीकि जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज की भोगी हुई यथार्थ का वर्णन करते हुए अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने का काम किया है।

जयप्रकाश कर्दम ने भी 'गूंगा नहीं था मैं' और 'तिनका तिनका आग' काव्य–संग्रह की विविध कविताओं में दलित जीवन के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत करते हुए उनकी अस्मिता के प्रश्नों को हमारे सामने रखते हैं। 'गूंगा नहीं था मैं' काव्य–संग्रह में उन्होंने दलित वर्ग को महत्व देकर उसकी उपेक्षा, वेदना, पीड़ा एवं असहायता को अपने काव्य का विषय बनाया है। 'तिनका तिनका आग' काव्य–संग्रह में उन्होंने दलितों की अस्मिता से जुड़े सवालों को उठाने का प्रयास किया है। उनकी कविताएँ अपने आप में विद्रोह से भरी हुई है। वे लिखते हैं–

"तमाम विरोधों और दबावों के बावजूद
जाति के जंगल का यह जीव

अपनी मुक्ति के लिए अड़ा है
अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए लड़ा है।"[12]

मोहनदास नैमिशराय दलित साहित्य के हठयोगी साहित्यकार हैं। वे साहित्य जगत में दलित अस्मिता पर अधिक प्रश्न उठाने के कारण लम्बे समय तक उपेक्षित, अपमानित और प्रताड़ित होते रहे हैं। उनके साहित्य में दलित जीवन के यथार्थ का वर्णन हुआ है। उनके काव्य–संग्रह 'सफदर एक बयान' में संकलित कविताएँ दलित अस्मिता से संबंधित है। उन्होंने सफदर हाशमी पर लम्बी कविता लिखी है और उन्होंने इस कविता के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि वर्णवादी राजनीतिक व्यवस्थाएँ माफियाओं को जन्म देती है और जो भी इसका प्रतिवाद करता है उसकी हत्या करा दी जाती है। वे अपने दलित भाई–बंधुओं को इनसे लड़ने के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं–

"कलम के साथ/हर समय
तुम्हारे पास बन्दुक होनी चाहिए
शब्दों का विरोध करनेवाला माफिया का
सामना करने के लिए
मेरी मानो/एक हो जाओ।"[13]

श्योराज सिंह 'बेचैन' अपने विद्यार्थी जीवन से दलितों को उसकी अस्मिता की पहचान दिलाने में लगे हुए थे। वे पहले मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे परन्तु बाद में उनके साहित्य में अम्बेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जाता है। उनकी कविताओं में दलित समाज में जागृति पैदा करने का भाव निहित है। उनके काव्य–संग्रह 'नई फसल', 'क्रोंच हूँ मैं' 'भोर के अंधरे में' और 'चमार की चाय' आदि दलित अस्मिता की दृष्टि से प्रसिद्ध है। वे अपने दलित समाज के उत्थान के लिए उन्हें शिक्षित होने को कहते हैं। दलित समाज जब शिक्षित होगा तभी अपनी जाति को वह आगे ले जा पायेगा। सरकारी स्कूलों की जगह पर निजी स्कूलों के आ जाने से दलित समाज पर चिंता जाहिर करते हुए वे लिखते हैं–

"बंद हो गए/सरकारी स्कूल
और खुल गए/स्वीवृत्त पोषित
निजी संस्थान–दुकान
अब कैसे पढ़ पाएंगे
दलित/आदिवासी।"[14]

हिन्दी दलित साहित्य को सशक्त बनाने में 'कँवल भारती' जी की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कँवल भारती जी ने हिंदी दलित साहित्य में कविता, आलोचना, वैचारिकी एवं पत्रकारिता आदि विधाओं में अपनी कलम चलाकर दलित साहित्य की सीमाओं को विस्तृत कर उसे सशक्त बनाने का यत्न किया है। उनके कविता संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती!' में डॉ. आंबेडकर के महत्वपूर्ण संघर्षों का स्मरण के साथ साथ वर्णव्यवस्था, जाति, धर्म एवं सामाजिक विसंगतियों के विरोध में अनेक कविताएं संकलित हैं। इन्होंने अपनी 'मातृभूमि' शीर्षक कविता के माध्यम से दलितों की अस्मिता एवं विकास के लिए सर्वस्व त्याग कर देना चाहते हैं। यथा–

"विकसित हो अब नई चेतना
दलित उत्थान लक्ष्य हमारा
अब सारे बलिदान हमारे
अर्पित हो निज के विकास पर।"[15]

उपर्युक्त कवियों के अलावा भी डॉ. कुसुम 'वियोगी' का 'व्यवस्था का विषधर', सुशीला टाकभौरे के 'यह तुम भी जानो', 'अनुभूति के घेरे' मंशाराम विद्रोही का 'दलित पचासा' आदि काव्य संग्रह दलित अस्मिता की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविताओं में स्त्री और दलित अस्मिता की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। प्राचीनकाल से ही जिन स्त्रियों एवं दलितों को दबाया गया था वे समकालीन युग में पूर्णरूप से अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति देने में सक्षम हुए हैं। समकालीन कविता में स्त्री एवं दलित अपने परंपरागत बंधनों के मकड़जाल से मुक्ति चाहते हैं। इस काल के कवि एवं कवयित्रियों को अपनी अस्मिता की पहचान दिलाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है। वे अपने वंचित, पीड़ित एवं प्रताड़ित भाई–बहनों को समाज में प्रतिष्ठा दिलाने में लगे हुए हैं। इनकी कविताओं में हमें परंपरागत जड़ मूल्यों, रूढ़ियों का विरोध एवं इनके प्रति हीनता आदि का विरोध देखने को मिलता है। आज स्त्री और दलित वर्ग अपने अस्तित्व के प्रति सचेत एवं अपनी अस्मिता के प्रति हर दृष्टि से सजग है।

संदर्भ–सूची :–

1. हंस, जून–2003, पृ. 09।
2. अस्मिता विमर्श की स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, प्रथम संस्करण 2008 ई., पृ.32।
3. महादेवी वर्मा, 'शृंखला की कड़ियाँ' लोकभारती प्रकाशन, पंचम संस्करण 1999 ई., पृ.22।
4. नारी शोषण : आइने और आयाम, आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 1992 ई., पृ.249।
5. खुरदुरी हथेलिया, अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई., पृ.43।
6. जब मैं स्त्री हूँ, रंजना जायसवाल, नयी किताब, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009 ई., पृ.14।
7. आदमी की पसली, रमणिका गुप्ता, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2000 ई., पृ.264।
8. वे फिर आये हैं, वंदना मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011 ई., पृ.72–73।
9. सात भाइयों के बीच चम्पा, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2008 ई., पृ.44।
10. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001ई., पृ.58।
11. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1889 ई., पृष्ठ.12।
12. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. डॉ. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006 ई., पृ.55।
13. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. डॉ. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006 ई., पृ.101।
14. भोर के अंधेरे में, श्योराज सिंह 'बेचैन', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2014 ई., पृ.58।
15. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कँवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, प्रथम संस्करण 1996 ई., पृ. 16।

मन्नू भण्डारी की कहानियों में स्त्री-अस्मिता के स्वर

डॉ. योगेश कुमार तिवारी*

जब मन्नू जी ने लेखन प्रारम्भ किया, तब देश में सामाजिक परिवर्तनों का दौर चल रहा था। आजादी के उपरान्त सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। मन्नू जी का पहला कहानी संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ। यह वह समय था, जब परिवार में बदलाव, सम्बन्धों में बदलाव, स्त्रियों की स्थिति में बदलाव व अन्य बदलावों की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। इन सामाजिक परिवर्तन का केन्द्र परिवार था और परिवार के केन्द्र में है स्त्री–पुरुष सम्बन्ध। यह जो सम्बन्धों में बदलाव आया इसका मुख्य कारण स्त्री की स्थिति में बदलाव है। पहले स्त्रियों की क्या स्थिति थी और शिक्षित होने से, आर्थिक रूप में स्वतन्त्र होने से, अपनी अस्मिता के प्रति सचेत होने से उसमें क्या–क्या परिवर्तन आए? इन बातों को मन्नू भण्डारी ने अपने साहित्य में केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। मन्नू भण्डारी की स्त्रियाँ स्वतन्त्र होकर भी अपनी भावनाओं से बँधी हुईं हैं। इसके लिए चाहे उन्हें अपनी निजी ज़िन्दगी और आदर्शों का बलिदान ही क्यों न देना पड़ा हो। मन्नू भण्डारी की स्त्रियाँ क्रान्तिकारी होने की कोशिश तो जरूर करती हैं पर वह स्वतन्त्र रूप से क्रान्तिकारी नहीं हो पाती है। अपने एक साक्षात्कार में मन्नू भण्डारी कहती हैं– "देखिए, मैं जिस पीढ़ी की हूँ उसमें कहीं संस्कारों से उभरने की कहानियाँ है; तो कहीं संस्कारों से टकराने की कहानियाँ है। स्त्री संस्कारों से मुक्त होना चाहती है। कई बार वह संस्कारों से पराजित हो जाती है और कई बार संस्कारों को पराजित करके आगे निकल जाती है"[1] मन्नू जी अपनी कहानियों में स्वतन्त्रता की सीमाओं को भी नियंत्रित करती हैं (चाहे वह पुरुष हो या स्त्री) क्योंकि उनका मानना है– "केवल स्त्री को ही नहीं, हर 'स्वतन्त्रता' की सीमाएं होती है वरना यह स्वतन्त्रता उच्छृंखलता बन जाती है। यदि कोई स्वतन्त्रता सीमाहीन स्वतन्त्रता है तो वह अच्छी नहीं लेकिन सीमा के कोई बंधे–बंधाएं नियम नहीं होते है।"[2]

जिस प्रकार मनुष्य का स्वभाव भिन्न–भिन्न होता है, ठीक उसी प्रकार मन्नू जी का कहानियों की स्त्रियों का स्वभाव भिन्न–भिन्न है। मन्नू जी की कुछ स्त्रियाँ घर की सीमाओं को लाँघकर बाहर के कर्म क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं और यह विश्वास दिलाती हैं कि यदि उन्हें भी अवसर, अधिकार, समाज का प्रोत्साहन और समर्थन मिले तो वह भी उन सारे कार्यों को उतनी ही निष्ठा और प्रमाणिकता से कर सकती है; जितना कि पुरुष करते हैं। तो कुछ स्त्रियाँ उन्हीं परम्परागत संस्कारों से बंधी हुई हैं और शोषण को अपना भाग्य मानकर चल रही हैं। इसका सशक्त उदाहरण साफ तौर पर 'नशा' कहानी में देखा जा सकता है। यहाँ पर मन्नू भण्डारी की कहानियों के स्त्री–चरित्रों की द्वन्दात्मक स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

मध्ययुगीन संस्कार एवं आधुनिकता के स्वर :– हमारे परिवेश की मानसिकता पूर्ण रूप से आधुनिक और परम्परागत संस्कारों से मुक्त नहीं हो पायी है। भौतिक जगत पर स्त्री और पुरुष आधुनिकता के पोषक जरूर दिखाई देते हैं; लेकिन वैचारिक/मानसिक स्तर पर वर्तमान में भी वे परम्परागत संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। भारतीय स्त्रियों ने स्त्री–जागरण सम्बन्धी बहुत से आन्दोलन किए गए, फिर भी स्त्री–जागरण जितना बाहय स्तर पर रहा है, उतना आन्तरिक धरातल पर नहीं रहा हैं, क्योंकि समाज और कानून की ओर से स्त्री को चाहे जितनी भी कानूनी और सामाजिक सुविधा या सुरक्षा प्रदान की गई हो, स्त्रियाँ उन सुविधाओं और सुरक्षा का प्रयोग अपने जीवन में कितना कर पाती हैं? यह प्रश्न विचार करने योग्य है।

आज के युग में आर्थिक समस्याएँ अन्य समस्याओं के तुलना में अत्याधिक भयंकर रूप ग्रहण करती जा रही हैं। पुरुष के साथ–साथ स्त्री को भी अर्थोपार्जन हेतु घर से बाहर या घर में रहकर भी व्यस्त रहना

*** संपादक–'आलोचन दृष्टि' एवं अतिथि विद्वान–हिन्दी, पं. शम्भूनाथ शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र)।**

पड़ता है। इस प्रकार वह भी घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करती है; किन्तु इसके बाद भी परिवार के प्रत्येक सदस्य यह चाहते हैं कि इन सब व्यस्तताओं के अतिरिक्त भी वह पहले की भाँति माँ, पत्नी, बहू, बेटी अथवा बहन के दायित्वों का निर्वहन करती रहे। अतः दोहरे मानदण्डों में बँटी रहने के कारण स्त्री को मानसिक तनाव अधिक झेलना पड़ता है। इस प्रकार आधुनिकता एवं परम्पराओं के द्वन्द्व में स्त्री की 'स्थिति दोहरा बोझ ढोने' जैसी हो गई है। इसी वजह से उसकी भूमिका को लेकर अनेक उलझनें पैदा हो गई हैं– "इस संक्रान्ति काल में ये उलझनें इसलिए हैं, क्योंकि उसकी पुरानी और नई भूमिका में तालमेल नहीं है, स्वयं उसके अन्तर में भी संघर्ष है।.... चूँकि उसके परिवार के दूसरे सदस्यों के उत्तरदायित्व को दुबारा निश्चित नहीं किया गया है इसलिए तनाव और गलत फहमियाँ उत्पन्न होने की बहुत अधिक गुंजाइश रहती है।"[3] नारी को स्वयं अपने असमंजस से बचना पड़ता है। संघर्ष करना वर्तमान स्त्री की दिनचर्या बन गई है। कहानियों में चित्रित आधुनिक स्त्री, संघर्ष से जूझती हुई अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने का प्रयास करती है। कुछ तत्व अगर स्त्रियों और पुरुषों द्वारा स्वीकार लिए जाये तो सामंजस्य हो सकता है और अनेकों समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

परम्परागत संस्कारों से मुक्त होने की छटपटाहट में भारतीय स्त्री वर्तमान जीवन की दुःखद स्थितियों के मध्य जीने–मरने के लिए बाध्य है– परन्तु उसे परम्परागत जीवन–मूल्य, आधुनिकता की कसौटी पर भी खरा नहीं उतरने देते। कारण यह है कि रहन–सहन और वैचारिक धरातल पर आधुनिक बनने की इच्छा जब तक मात्र भावात्मक रहेगी, तब तक कुछ बनने, बनाने की इच्छा सामाजिक परिवर्तन के अर्थों में असफल होती रहेगी। 'त्रिशुक' कहानी भी इसी असफलता को स्पष्ट करती है एवं आधुनिकता के आवरण में लिपटी हुई स्त्री को अनावृत्त करती है और उसे 'आधुनिकता' और 'बौद्धिकता' के बावजूद परम्परागत मूल्यों की ओर वापस खींच लाती है। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को मन्नू जी ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने प्रयास किया है। आधुनिक जीवन–स्थितियों के समानान्तर अधिकार प्राप्त करने की लालसा या फिर वैचारिक धरातल पर आधुनिक बनने का प्रयास मन्नू जी त्रिशंकु कहानी में व्यक्त किया है। यह कहानी भारतीयों में मध्ययुगीन संस्कारों और आधुनिकता के द्वन्द्व को उजागर करने के कारण विशिष्टता रखती है। इसमें एक ओर मध्ययुगीन संस्कारों एवं परम्पराओं से बंधी होने की विवशता और दूसरी ओर अत्याधुनिक होने का अदम्य साहस कहानी के पात्रों को त्रिशंकु की स्थिति में लाकर खड़ा कर देती है। आज आधुनिकता का ढ़ोंग कर रहे बुद्धिजीवियों पर यह कहानी 'त्रिशंकु' एक कटाक्ष के रूप में है। आज अति आधुनिकता ने लोगों को दिग्भ्रमित कर दिया है। दोहरी मानसिकता रखने वाले अति आधुनिक लोगों पर मन्नू जी का यह तीक्ष्ण व्यंग्य है। मन्नू जी का मानना है कि स्त्रियों की बदनामी होते देख बड़े–बड़े आधुनिक लोग संस्कारशील बनने के लिए प्रयत्न करने लगते हैं। जिस कारण यह कहानी समाज पर भी एक व्यंग्य के रूप में है जिनकी मानसिकता सिर्फ दूसरों के घरों में झाँकने की है, वास्तविकता को समझने की नहीं। मन्नू जी की कहानी 'स्त्री–सुबोधिनी' भी ऐसी ही विवशता को उजागर करती है। कहानी त्रिशंकु और स्त्री–सुबोधनी में मात्र अन्तर यह है कि विवशता का बोध 'त्रिशंकु' में प्रारम्भ से शुरू होता है और 'स्त्री–सुबोधिनी' कहानी में विवशता का बोध अन्त में होता है। आते–जाते यायावर कहानी की नायिका मिताली पारम्परिक संस्कारों एवं परम्परागत रूढ़ियों में बँधी हुई भारतीय स्त्री है। जिसकी विडम्बना यह है कि वह इन रूढ़ियों, परम्पराओं एवं संस्कारों से मुक्त होने का प्रयास करती है परन्तु हो नहीं पाती। वैचारिक एवं बौद्धिक स्तर पर पुरुष जाति से बदला लेने की भावना रखते हुये भी वह द्रवित हो जाती है जिससे पुनः पुरुष उसे छलता है और अपनी यायावरी प्रवृत्ति को सिद्ध करता है।

आज के पुरुष आधुनिकता के नाम पर स्त्रियों को छलते रहते हैं, और विवाह के लिए पारम्परिक संस्कार युक्त आधुनिक विचारों से कहीं दूर कठपुतली जैसी लड़की को जीवनसाथी के रूप में स्वीकार करते हैं। 'रानी माँ का चबूतरा' कहानी निम्नवर्गीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका गुलाबी एक कर्मठ, जुझारू, स्वावलम्बी, ईमानदार एवं स्वाभिमानी स्त्री है, जो किसी से दया की भीख नहीं चाहती है। दिन भर कठोर परिश्रम के बाद भी उसे पेट भरने के लिए पर्याप्त मजदूरी नहीं प्राप्त होती है। वह न तो किसी के सामने हाथ पसारती है और न ही किसी की दया का पात्र बनना

चाहती है। वह कहती है कि "किसी के दान–पुन्न पर पलने वाली नहीं है गुलाबी, थूकती है तुम्हारे चन्दे पर।"[4] वह गाँव की अन्य महिलाओं की तरह अपना दुखड़ा रोने 'रानी माँ के चबूतरे' पर नहीं जाती। पूरा गाँव उसका विरोध करता है क्योंकि वह आस्था, एवं परम्पराओं पर विश्वास नहीं करती और न ही सामाजिक बन्धनों को स्वीकार करती है। वह अपने अतीत सम्बन्धों से मुक्त नही हो पाती हैं। स्त्रियों में भावात्मक स्तर पर संवेदनाएँ कभी भी मृतप्राय नहीं होती; जिसके कारण वह अपने विचार, अर्न्तद्वन्द्व आदि के बावजूद भी पुरुष का साथ चाहती हैं। यही कारण है कि वह सदैव छली जाती हैं।

मन्नू जी की कहानी 'तीन निगाहों की तस्वीर' उस धारणा को प्रकट करती है। जिसमें एक स्त्री का जीवन–पति की निगाहों में, समाज की निगाहों में एवं स्वयं की निगाहों में अलग–अलग तस्वीर उभारता है। यहाँ इन तीनों तस्वीरों में किसकी तस्वीर सही है? वस्तुतः उसी की तस्वीर सही होगी जिसने वह जिन्दगी भोगी होगी और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष किया होगा। इनकी कहानियों के ये पात्र सामाजिक परिस्थितियों की अनूभूति व्यक्त करते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से जटिल स्थितियों में फंसे हुये हैं। उनका अपना भविष्य भी इन्हीं स्थितियों पर या इसी समाज पर निर्भर करता है। वे मुक्त सम्बधों की बातें तो करती हैं किन्तु आन्तरिक मन में वे भारतीय परम्पराओं से जुड़ी हुई हैं और उससे छूट नहीं पाती हैं।

घर एवं बाहर के स्त्री स्वर :– भारतीय समाज में स्वतन्त्रता के पश्चात बहुत से परिवर्तन हुये है। परिवर्तनों के परिणामस्वरूप शिक्षित मध्यवर्गीय समाज में स्त्रियों के कन्धों पर न केवल पुरुषों के समान दायित्व आ पड़ा; बल्कि उससे कुछ अधिक दायित्वों को सामना उसे करना पड़ा। सामाजिक परिस्थितियों एवं परिवर्तित आर्थिक स्थितियों में स्त्रियों की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि हुई है, जिससे स्त्रियों को अपने अस्तित्व का बोध हुआ। अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ नौकरियों तथा व्यवसायों में प्रवेश पाने लगी हैं तथा पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं। घर की जिम्मेदारी ने संभालते हुये वह नौकरी व व्यवसाय को भी देखती हैं। लेकिन समाज में उनको देखने का दृष्टिकोण नहीं बदला, जिसके कारण स्त्रियों को अनेकों समस्याओं से जूझना पड़ता है। पढ़ी–लिखी होने के बावजूद उन्हें पितृसत्तात्मक समाज से अपनी अस्मिता के लिए सदैव संघर्ष करना पड़ रहा है।

आधुनिक भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति में कई परिवर्तन हुए हैं। वह पुरुष के समान ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यशील है। जब वह सुबह से लेकर शाम तक नोकरी कर घर लौटती है तो उसे अनेक पारिवारिक दायित्वों का भी निर्वाहन करना पड़ता है। पति से लेकर बच्चे तक, माँ–बाप, भाई–बहन, सास–ससुर, सभी को उससे अतिरिक्त अपेक्षाएं रहती है। घर और बाहर दोनों जगह उसे विभिन्न प्रकार के मानसिक संघर्ष झेलने पड़ते हैं, उसे मन्नू जी ने अपनी कहानियों में इस स्थिति को बड़े ही यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। कहानी 'क्षय', 'घुटन', 'आकाश के आईने में' के माध्यम से स्त्री के घर और बाहर के द्वन्द्व को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है।

पवित्रता एवं यौनिक इच्छाओं के स्त्री स्वर :– मन्नू जी ने अपनी कहानियों में स्त्री के सहज और स्वाभाविक रूप को रेखांकित करने का प्रयास किया है। कहीं भी बनावटीपन नहीं है। मन्नू जी की स्त्रियाँ कहीं भी दूसरों को धोखा नहीं देती वरन् स्वयं ही धोखा खाती हैं। वह कहीं संघर्ष करती है तो कहीं समझौता भी करती हैं। मन्नू जी की कहानियों की पात्राएं परम्पराओं से संघर्ष कर अपनी स्थिति में स्वयं ही सुधार लाती हुई प्रतीत होती हैं। वैसे भी पहले से मानवता के विकास का सूत्र द्वन्द्वमूलक रहा हैं– "द्वन्द्व मे रहकर भी मन्नू भण्डारी की नारी मानवतावादी निर्णय लेती है। मन्नू भण्डारी की पात्राएँ घुटन, दबाव और पीड़ा न सहकर आदर्श नारी की मूर्ति तोड़ एक यथार्थवादी नारी का चित्र अंकित करती है।"[5]

कहानी लेखन में वैवाहिक जीवन में पड़ती दरार को लेकर बहुत सशक्त कहानियाँ लिखी गई। इन कहानियों में परम्परागत रूप में प्रेम के त्रिकोण को वर्णित या कल्पित करके ही कुछ स्थितियाँ नहीं बुनी गई है, अपितु जीवन की वास्तविकताओं के उन बोझिल क्षणों और आत्मसंघर्ष की उन स्थितियों को भी चित्रित किया गया है जो आज तक सर्वथा अछूती थी। इन कहानियों को पढ़कर लगता है कि वैवाहिक जीवन पर इतना कुछ लिखा जाकर अभी भी बहुत कुछ लिखना बाकी है। नई कहानी से पहले की कहानियों में प्रेम

का त्रिकोण, एक पुरुष दो नारियों अथवा दो पुरुष, एक नारी प्रस्तुत कर इस तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति को चित्रित किया गया। बंधे–बंधाये सूत्रों के आधार पर रची गयी कहानियों में प्रेम का त्रिकोण प्रायः कल्पित और गढ़ी हुई स्थितियों में प्रेम की विजय होती है।

इस प्रकार इस कहानी में आधुनिक युग में पति–पत्नी सम्बन्धों के मध्य गहराते द्वन्द्व को स्पष्ट करते हुये, मन्नू जी ने पुरुष की मानसिक कमजोरी और स्त्री की अनैतिक सम्बन्धों से मुक्त मानवीय मूल्यों की रक्षा का पहलू स्पष्ट किया। आज के इस संक्रामक दौर में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को जिन द्वन्द्वात्मक स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। मन्नू जी ने तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति से दाम्पत्य–सम्बन्धों के मध्य आयी दूरी को अनुभूतिपूर्ण एवं यथार्थ रूप से चित्रित किया है। 'ऊँचाई' 'तीसरा आदमी', 'कील और कसक', 'बन्द दराजों का साथ' तथा 'बाहों का घेरा' कहानी में इस तीसरे की उपस्थिति से ही दाम्पत्य जीवन में तनाव आया है। पति विशेषतः पत्नी को उसकी सम्पूर्णता एवं पवित्रता में पाना चाहता है। तीसरें की उपस्थिति इस सम्पूर्ण समर्पण को बाधित करती है।

'ऊँचाई' कहानी में दाम्पत्य सम्बन्धों में तन की पवित्रता अथवा अपवित्रता में विश्वास रखने वाली मनोवृत्ति पर आघात करती है। इस विश्वास–अविश्वास की स्थिति में जीने की अपेक्षा वह किसी के रिक्त जीवन को पूर्ण बनाना ही अपना कर्तव्य समझती है।

कहानी 'कील और कसक' दमित यौन लालसाओं की कहानी है। 'बन्द दराजो के साथ' कहानी में आधुनिक महिला अपने पति का सम्बन्ध अन्य स्त्री के साथ स्वीकार नहीं कर सकती और अपने पति से सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है। इस तनाव में रोना, धोना, क्रोध, घृणा या आत्महत्या जैसी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती, बल्कि इस तनाव में पूर्ण परिपक्वता है तथा एक दूसरे की विवशता जानने की क्षमता है। वैसे इस तनाव में दुःख और व्यथा तो अवश्य है पर इस स्थिति को स्वीकारने की तैयारी भी है क्योंकि– "जिन्दगी का हर पहलू हर स्थिति और हर सम्बन्ध एक समाधानहीन समस्या होकर ही आता है जिसे सुलझाया नहीं जा सकता है केवल भोगा जा सकता है।"[6] इस कहानी में नारी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जीवन को पूरी तरह से जीने की चाह को पूर्ण करने के लिए यथा सम्भव प्रयास करती है। उसके भीतर चलने वाले मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को मन्नू जी ने बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रित किया है। जिसमें शारीरिक पवित्रता का प्रश्न ही नहीं उठता है यहाँ विश्वास ही सर्वोपरि है। दाम्पत्य जीवन में तनाव वैसे तो अन्य कई कारणों से उत्पन्न होता है। कभी पति–पत्नी का एक दूसरे के प्रति ईमानदार न होना तो कभी दोनों का एक दूसरे के प्रति सन्देह करना भी तनाव का कारण हो सकता है।

मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में आधुनिक स्त्री के परिवर्तनशील रूप के अनेक आयाम दृष्टिगोचर होते है। अपने अस्तित्व के प्रति सजग एवं अपने 'स्व' को पहचानने वाली, विपरीत परिस्थितियों में भी 'स्वत्व' स्थापित करने के लिए संघर्षशील, निरन्तर जूझती और टूटती, सामाजिक, पारिवारिक विसंगतियों के साथ अनेक विकृतियों का सामना करती हुई और उस पर विजयी होने के कारण प्रयत्नशील स्त्री का जीवन्त रूप मन्नू जी की कहानियों में परिलक्षित है।

संदर्भ–सूची :–

1. ओझा, सीमा (संपा.); आजकल, मार्च 2008 साक्षात्कार (मन्नू भण्डारी व कल्पना शर्मा की बातचीत) पृष्ठ संख्या; 15।
2. वही; पृष्ठ संख्या; 15।
3. कपूर, डॉ. प्रेमिला; 'कामकाजी भारतीय नारी' राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली, (1976) पृष्ठ संख्या; 36।
4. भण्डारी, मन्नू; 'सम्पूर्ण कहानियाँ' राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31 अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008; पृष्ठ संख्या; 216।
5. हाडे, गुलाब राय; 'मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य' प्रकाशक विद्या बिहार, कानपुर, प्रथम संस्करण (1987) पृष्ठ संख्या; 68।
6. भण्डारी, मन्नू; 'सम्पूर्ण कहानियाँ' राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31 अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008; पृष्ठ संख्या; 338।

꧁★꧂

भूमंडलीकरण के दौर में परिवर्तित होता हिंदी सिनेमा

डॉ. नीरज शर्मा *

इसमें संदेह नहीं कि वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण प्रकारांतर से भूमंडीकरण है जो महाजनी सभ्यता प्रेमचंद का विस्तार है। प्रायः वैश्वीकरण को वसुधैव कुटुंबकम का आधुनिक संस्करण भी कह दिया जाता है जो अनुचित है, क्योंकि इसका तो सूत्र वाक्य ही –"कृण्वंतो विश्व बाजारम" अर्थात् यह कुटुंब संस्कृति को विस्थापित कर के बाजार संस्कृति को स्थापित करने वाली प्रक्रिया है। जिसके द्वारा समस्त भूमंडल को ऐसे विश्वग्राम में तब्दील किया जाना अपेक्षित है जिसका मुखिया अमेरिका है और जो किसी भी प्रकार आम आदमी के रहने लायक जगह नहीं है। भूमंडलीकरण पर चर्चा करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि "भूमंडलीकरण स्थानीय और विश्वव्यापी है। ग्लोबल की मार की जद में स्थानीय और विश्व दोनों हैं''।[1]

इस प्रकार वैश्वीकरण अपनी तमाम व्यवसायिक क्रांति के साथ आम आदमी के पुनर्वास की समस्या को प्रजनित करता है, बावजूद इसके कि वह उदारीकरण के सहारे आर्थिक असंतुलन को कम करने का प्रयास करता है। लेकिन इस प्रयास का परिणाम यह है कि जीवन गरीबों के लिए निरंतर दुष्कर होता जा रहा है बाजारवाद के रास्ते संचार क्रांति के सहारे वैश्वीकरण कारपोरेट संस्कृति को सुस्थापित करने का काम करता दिखाई देता है। इसके साथ ही वह उत्तर आधुनिक विमर्श के अनुरूप बहुलतावाद और बहु–केंद्रीयता का समर्थन करता है जिससे तरह–तरह के विमर्श प्रतिरोध की शक्ल में सामने आते हैं तथा प्रायः अराजकता के वातावरण की निर्मिती कर देते हैं। यह बहु–केंद्रीयता अस्मिताओं के संघर्ष और वर्चस्व की लड़ाईओं को बढ़ावा देती है, इसमें संदेह नहीं। वैश्वीकरण को आधुनिकीकरण का विस्तार भी माना जा सकता है और प्रतिवाद भी। विज्ञान पर आधारित आधुनिकीकरण तर्क प्रधान समाज पर बल देता है, जबकि क्रय–विक्रय पर आधारित वैश्वीकरण भोगप्रधान समाज का निर्माण कर रहा है। 'तर्क' के स्थान पर इस कॉरपोरेट संस्कृति का बीज शब्द 'इच्छा' बन गया है। अनेक प्रकार के विमर्शों ने उभर कर मनुष्य को अपदस्थ करके वर्चस्व प्राप्ति या सत्ता प्राप्ति के लिए लालायित समूह को आगे कर दिया है– चाहे वह स्त्री समूह हो या आदिवासी समूह सबको पावर चाहिए ताकि तमाम दमित इच्छाएँ पूरी हो सके। कहने का अभिप्राय है कि वैश्वीकरण ग्लोबल विलेज के नाम पर ग्लोबल बाजार की सृष्टि कर रहा है इसके साथ ही मूल्य दृष्टि में भारी बदलाव लक्षित किए जा रहे हैं।

जिस तरह साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है ठीक उसी तरह हम हिंदी सिनेमा को भी समाज का दर्पण मान सकते हैं। सिनेमा के महत्त्व पर चर्चा करते हुए राही मासूम रजा लिखते हैं कि "फिल्म मात्र आनंद का एक साधन ही नहीं है, फिल्म मानसिक विकास का भी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण माध्यम है''।[2] किंतु कुछ समाजशास्त्रीय मानते हैं कि आज समाज में जो व्याभिचार का वातावरण फैला हुआ है उसके लिए बहुत हद तक तक सिनेमा ही जिम्मेदार है। किंतु वहीं एक दूसरा वर्ग भी है जो यह मानता है कि समाज में जो घटित होता है उसी की पुनरावृत्ति सिनेमा में की जाती है। लेकिन ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि भूमंडलीकरण के दौर में आज का सिनेमा समाज से दूर होता जा रहा, हाँ समाज के एक तबके से वह जरूर जुड़ा हुआ है जो मल्टिप्लेक्स कल्चर से जुड़ा हुआ है। विष्णु नागर भारत एक बाजार है नामक व्यंग में लिखते हैं– " भारत कभी एक देश हुआ करता था, आजकल एक बाजार हो चुका है, बहुत बड़ा और बहुत चमकीला बाजार''।[3]

90 के दशक के पश्चात् फिल्म की कथा में जो बदलाव आया उससे समाज उन्नत हुआ या अवनत यह तय करना बड़ा आवश्यक है। क्योंकि फिल्मों में जिस तरीके से अश्लीलता, हिंसा, मारधाड़, सेक्स का

*** हिंदी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, (प.बं.)**

खुला प्रदर्शन हो रहा है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है इनके बिना कोई फिल्म बन ही नहीं सकती। भूमंडलीकरण की जिस आँधी में देश उलझा वह आँधी सामान्य व्यक्ति को उसकी संस्कृति से धीरे–धीरे काट रही है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आए फिल्म जगत में परिवर्तनों को लक्ष्य कर मृत्युंजय लिखते हैं कि " फिल्म के संदर्भ में इस आर्थिक उपनिवेशवाद का महत्त्व इस अर्थ में काबिल–ए–गौर है कि इस अंतिम दशक की फिल्मों में इसके प्रभाव को सीधे–सीधे लक्षित किया जा सकता है''।[4]

हिंदी सिनेमा के इतिहास पर यदि हम एक विहंगम दृष्टि संक्षिप्त रूप में डालें तो हम देख सकते हैं की 40 और 50 का दशक हिंदी सिनेमा का उत्कर्ष काल रहा है। 40 के दशक में अनेक ऐसी फिल्में बनी जिसमें देश की वास्तविक समस्याओं का फिल्मांकन किया गया। 40 के दशक की एक फिल्म 'दो बीघा जमीन' (विमल राय द्वारा निर्देशित) भारतीय समाज के किसानों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण दर्शकों के सामने प्रस्तुत करती है। इस प्रकार का चित्रण जो जीवंत हो यही तत्कालीन समय की माँग थी जो आज के भारतीय सिनेमा से तिरोहित हो गयी है।

50 के दशक में भारत में भारतीय सिनेमा में सामाजिक विषय को आधार बनाकर फिल्में बनाने का दौर शुरू हुआ, यह समय आजादी प्राप्ति का समय था। भारत की उन्नति के लिए अनेक तरह से प्रयास किए जा रहे थे। सिनेमा के स्तर से भी भारत की उन्नति के लिए प्रयास किए गए। इस दौर में अल्पसंख्यकों के पुनरुत्थान, मजदूरों, किसानों, शोषितों, पीड़ितों को केंद्र कर फिल्में बनाई गई। इस दौर की एक फिल्म 'दो आंखें बारह हाथ' वी. शांताराम के निर्देशन में बनी। इस फिल्म में सजायाफ्ता कैदियों के सुधार के संबंध में प्रयास था। यह फिल्म भारतीय सिनेमा के इतिहास में अत्यंत सफल तथा सार्थक साबित हुई। इसके अतिरिक्त इस दौर में कुछ अन्य फिल्में भी बनी जो अलग–अलग सामाजिक विषयों पर केंद्रित थीं और वह अपने विषय के कारण सफल भी साबित हुईं।

60 और 70 का दशक भारत के इतिहास का काला अध्याय माना जाता है। इसका कारण 62 में चीन से युद्ध, 65 में पाकिस्तान से युद्ध और 75 में इमरजेंसी रहाँ इस सब के कारण देश की आर्थिक सामाजिक स्थिति बहुत ज्यादा बिगड़ गई भ्रष्टाचार, घूसखोरी, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, जमाखोरी जैसी अनेक समस्याओं ने समूचे देश को अपने आगोश में लेना शुरू कर दिया। इस दौर में बनी कई फिल्में काफी सार्थक रहीं जिनमें से एक चेतन आनंद की 'हकीकत', मनोज कुमार की 'उपकार', देवानंद की 'प्रेम पुजारी', तथा मनोज कुमार की 'रोटी कपड़ा और मकान', तथा 'दीवार' इस दौर की कुछ अच्छी फिल्में मानी जाती हैं। जिसमें भारतीय जनमानस के अंतस में व्याप्त असंतोष की अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया या कह लें अंतस में व्याप्त असंतोष को महत्त्व दिया गया। 60 और 70 के इस दौर में पारिवारिक संबंधों को भी केंद्र कर अनेक फिल्में बनी।

80 के दशक में भारतीय सिनेमा का मुख्य मुद्दा सामाजिक विषय ही रहा स्त्रियों का शोषण, पारिवारिक मूल्य तथा जमीदारी व्यवस्था को केंद्र में रखकर अनेक निर्देशकों ने फिल्में बनाई। इन सब का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज का कल्याण ही था। इस तरह की फिल्मों में 'इंसाफ का तराजू', 'आक्रोश', 'सौतन', 'आशा', तथा 'विधाता' आदि की चर्चा की जा सकती है।

90 के दशक में भारतीय सिनेमा में काफी बदलाव नजर आता है इसका सबसे बड़ा कारण था भारत ने दुनिया के लिए अपने सारे दरवाजे खोल दिए। मास कल्चर का जो विकास हुआ उसने न केवल सिनेमा अपितु लगभग सारे संचार माध्यमों को अपने आगोश में ले लिया। फलस्वरूप इस दशक की फिल्मों के विषय में काफी बदलाव दिखलाई पड़ता है। फिल्मकारों ने भी ऐसे विषय चुनने शुरू किये जो सीमित वर्ग की पसंद के थे। इसका प्रमुख कारण रहा भूमंडलीकरण के बाद कमाई डॉलर में होना। 10 मई 1988 को केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने घोषणा कर दी कि अब फिल्म निर्माण को उद्योग माना जाएगा और 19 अक्टूबर 2000 को केंद्र सरकार ने मनोरंजन उद्योग के अंतर्गत आने वाली गतिविधियों को इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट बैंक ऑफ इंडिया एक्ट 1964 के तहत औद्योगिक गतिविधि मान लिया।

इसके पश्चात् हिंदी सिनेमा का विषय सामाजिक हित तिरोहित हो कर व्यवसायिक हित में पूर्ण रूप से रंग गया। अब सिनेमा का उद्देश्य किसी प्रकार का कोई सामाजिक कल्याण न रहकर सिर्फ पैसा कमाना और इस उद्योग से ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना रह गया। 20 वीं सदी के अंतिम दशक में भूमंडलीकरण कई बड़े परिवर्तनों के साथ अवतरित होता है। यह भारतीय जनमानस को न सिर्फ संचार क्रांति के अनुरूप करता है बल्कि उदारीकरण के साथ ही साथ सांस्कृतिक उपनिवेशवाद की भी पृष्ठभूमि तैयार करता दिखलाई पड़ता है।

हम सिर्फ यह नहीं कह सकते कि भूमंडलीकरण ने भारतीय सिनेमा को सिर्फ नुकसान पहुँचाया भूमंडलीकरण के प्रभाव से भारतीय सिनेमा जगत को ढेरों फायदे भी हुए हैं जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। भूमंडलीकरण के फलस्वरुप ही हम दूसरी भाषाओं में बनने वाली फिल्मों को भी देख और समझ सकते हैं। बड़े बजट और बड़े बैनरों में बनने वाली फिल्में एक साथ अनेक भाषाओं में बनती हैं तथा अनेक क्षेत्रों में एक साथ प्रदर्शित की जाती हैं। इससे सिनेमा से जुड़े लोगों को लाभ तथा फायदा पहुँता है। सिनेमा को उद्योग का दर्जा प्राप्त है इसलिए लाभ कमाना इसका प्रमुख ध्येय है। एक चीज यहाँ और ध्यान देने की है कि भूमंडलीकरण के ही कारण आज अनेक भारतीय फिल्में और फिल्मकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना कर देश को गौरवान्वित कर रहे हैं।

भूमंडलीकरण के प्रभाव के ही फलस्वरूप साहित्य के ही समान हिंदी सिनेमा ने आदिवासियों तथा दलितों की पीड़ा को और बेहतर तरीके से समझा और उसे आत्मसात भी किया। सिनेमा और साहित्य के बीच एक सामंजस्य स्थापित हुआ। आदिवासी और दलित जीवन की समस्याओं को लेकर भी भारतीय सिनेमा जगत ने अतुलनीय कार्य किया है इन विषयों पर बनी फिल्मों में चमकू, रावण, जय भीम, कामरेड जोगवा, लाल सलाम, गांधी, लगान, बैंडिट क्वीन आदि अनेक फिल्में हैं जिनमें भारतीय हाशिए का समाज अपनी पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत हुआ है। स्त्रियों को लेकर हिंदी सिनेमा हमेशा से ही जागरूक रहा है गॉडमदर, कामसूत्र, चमेली, चांदनी बार, हीरोइन जैसी अनेक फिल्मों ने हिंदी सिनेमा के माध्यम से स्त्री विमर्श की एक नई परिभाषा गढ़ी है।

भारतीय जीवन को प्रभावित करने में आतंकवाद और सांप्रदायिकता का भी बड़ा योगदान रहाँ फिल्म निर्देशकों ने इन विषयों पर भी फिल्में बनाकर भारतीय समाज को उनकी सच्चाई से अवगत कराने का कार्य किया है। ऐसी फिल्मों में रोजा, सरफरोश, ब्लैक फ्राईडे, माचिस, गदर आदि की चर्चा की जा सकती है। इन फिल्मों के फिल्मांकन से भारतीय आतंकवाद और सांप्रदायिकता के मनोविज्ञान को समझने में दर्शकों को सुविधा होती है।

भारतीय हिंदी सिनेमा में एक प्रमुख मुद्दा भारतीय राजनीति का बढ़ता हुआ प्रभाव या हस्तक्षेप भी रहा है। ऐसी फिल्मों के अंतर्गत निर्देशकों ने राजनीति के आधुनिक व्यवसायिक चरित्र को पेश किया है। ऐसी प्रमुख फिल्में अपहरण, राजनीति, गुलाल, रंग दे बसंती, सत्याग्रह आदि हैं। इन फिल्मों जहाँ राजनीति की व्यवसायिकता को स्पष्ट किया गया है, वहीं बाजारवाद से उसके घनिष्ठ संबंध को भी उजागर किया गया है। राजनीति में किस कदर छिछलापन समाहित हो गया है यह फिल्में इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

भूमंडलीकरण के साथ टेक्नोलॉजी भी भारतीय सिनेमा में आई, सिनेमा की दृष्टि से टेक्नोलॉजी का प्रवेश अच्छा माना गया है। सिनेमा का हथियार कैमरा छोटे बजट के फिल्मकारों को भी सहज उपलब्ध है। यह कैमरा ही सिनेमा को पूँजी की जकड़न से मुक्ति की राह दिखाता है। इससे नई संभावनाओं का विकास होता है। विदेशी कंपनियों वाल्ट डिजनी, कोलंबिया पिक्चर्स, सोनी फॉक्स आदि कंपनियाँ हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में आ गयीं। इसके अतिरिक्त भारतीय सिनेमा में विदेशी टेक्नीशियनों की उपस्थिति दर्ज हुई। भारतीय सिनेमा लगान में रसल शैली, लव आजकल में गिज ली मोन्टीरो, काइट्स में बारबरा मोरी आदि अनेक नाम श्रृंखलाबद्ध रूप से दिखलाई हैं।

बेशक यह सच है कि लोकप्रिय हिंदी सिनेमा से गरीब, गाँव और विभिन्न विषय गायब हुए हैं पर इसका सीधा संबंध सिनेमा की बदलती दर्शक दीर्घा से जोड़ना चाहिये। बीते दशक में मल्टीप्लेक्स के आने के साथ किस तरह सिनेमा देखना बेतहाशा महँगा हुआ है। सिनेमा की दर्शक दीर्घा से तो आम आदमी को बाहर ही कर दिया गया है। लाखों करोड़ों रुपए की लागत से बनने वाला आज का व्यवसायिक हिंदी सिनेमा बाजार की माँग के अनुसार होगा इसमें कोई दो राय नहीं। किंतु जब दर्शक ही नहीं रहेंगे तो फिल्मकार फिल्म बनाकर भी क्या करेंगे। पर इस का अर्थ यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि हिंदी सिनेमा में समस्या मूलक यथार्थवादी फिल्में नहीं बनती, बनती है पर उन्हें दर्शक नहीं मिलते। भूमंडलीकरण ने भारतीय सिनेमा के दर्शकों का मिजाज बदल कर रख दिया है। करोड़ों रुपए की लागत से बनने वाला सिनेमा बाजार की माँग के आधार पर निर्मित होता है। फिल्म निर्माता अपने आर्थिक नुकसान के डर से ऐसी फिल्में नहीं बनाते हैं जिन्हें दर्शक कम पसंद करें। अब तक बहुत सी ऐसी बेहतरीन फिल्में बन चुकी है जिन्हें या तो दर्शक ही नहीं मिले यह वह अभी भी दर्शकों के अभाव के कारण से रिलीज ही नहीं हो पाई।

पहले सिनेमा में वह दिखाया जाता था जो समाज में घटित होता था परंतु बदलती परिस्थितियों में भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के प्रभाव के कारण अब स्थितियां उलट गई है जो सिनेमा में दिखाया जाता है अब वह समाज में घटित होता है। भूमंडलीकण के दौर की आज की युवा पीढ़ी आत्मसंतुष्ट और कूल बनने के चक्कर में लगी हुई है। जापानी फिल्मकार कुरोसावा इस पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि "पूँजीवादी देशों में ऐसी फिल्में बनती हैं जिनका असर मादक होता है उन्हें ऐसा दर्शक चाहिए जो सोचने में असमर्थ हो"।[5] सिनेमा का एक बड़ा गुण दर्शकों को अधिकाधिक संख्या में अपनी ओर खींचने की ताकत है। यह गुण एक ओर जहाँ साहित्य को लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बन सकता है वहीं सिनेमा के कलाकारों को भी जनमानस में प्रतिष्ठित कर सकता है। जरूरत है इसका सही ढंग से इस्तेमाल करने की। सिनेमा के संदर्भ में जार्ज बर्नाड शा ने एक भविष्यवाणी की थी कि "सिनेमा को हीन दृष्टि से मत देखिए। एक दिन सिनेमा के लोग पूरी मानव जाति के शासक बनेगे"[6]। यह भविष्यवाणी आज सच होती दिख रही।

सिनेमा का आगमन साहित्य के पश्चात् हुआ। सिनेमा के प्रादुर्भाव से ही साहित्य का विशेष स्थान माना जाता है। सफल साहित्य सफल फिल्में दे चुका है। साहित्य के कारण ही फिल्मों में विविधता और सुंदरता आयी किंतु अधिकांशतः देखा जाता है कि साहित्य पर आधारित फिल्में प्रभावशाली नहीं बन पाती उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है कि सिनेमा साहित्य की बारीकियों को नहीं पकड़ पाता। साहित्य की यह बारीकियाँ ही दर्शकों की भावनाओं विचारों तथा कल्पनाओं में उफान ला सकते हैं। भले ही यह दोनों पृथक विधाएँ हों किंतु इन दोनों का बड़ा गहरा और अटूट रिश्ता रहा है। भारत में बनने वाली पहली फिल्म दादा साहब फाल्के द्वारा बनाई गई जो भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक पर आधारित थी।

आधुनिक हिंदी सिनेमा में अब फूहड़पन अधिक बिकता है इसका मुख्य कारण पूँजीवाद की देन है। प्राचीन काल से ही हम पैसों और संस्कारों में दुराव देखते आए हैं यह दुराव हिंदी सिनेमा में भी चरम पर दिखलाई पड़ रहा है। नायक नायिकाओं के कपड़ों का चलन भी तेजी से बदल कर नंगे शरीर की नुमाइश की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है। भूमंडलीकरण के प्रभाव ने समूची भारतीय जीवन शैली को प्रभावित किया है और हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर भी प्रहार किया है। भारतीय समाज पर उपभोक्तावादी संस्कृति हावी हो चुकी है। भारतीय सिनेमा बेशक रोज नए–नए मार्ग तलाश रहा है लेकिन अपनी संस्कृति को विस्मृत कर यह जो विकास की कोशिश हो रही है यह कोशिश एकाँगी और अधूरी मानी जाएगी। आज उचित कथानक और सही उद्देश्य को लेकर बनने वाली फिल्मों को विस्मृत कर दिया जाता है। वैसे मेरी अपनी दृष्टि में सिनेमा में मनोरंजन वहीं तक स्वीकार किया जाना चाहिए जहाँ तक हमारी सभ्यता तथा संस्कृति को कोई हानी न पहुँचती हो।

अर्थ के स्तर पर मजबूती कौन नहीं चाहता यह मजबूती गर्व की बात है किंतु इस अर्थ प्राप्ति के चक्कर में यदि हम अपनी पहचान अपने वजूद को विस्मृत कर दें या अपनी पहचान को खोकर आर्थिक रूप से मजबूत बने तो यह हमारे लिए शर्म की बात है। सिनेमा जगत को उद्योग का दर्जा दिया गया है निश्चय

ही सभी फिल्मकार निर्देशक अपनी फिल्मों के माध्यम से अधिक से अधिक अर्थ प्राप्त करना चाहते हैं। इस कारण देश और समाज के प्रति उनकी जो अपनी जिम्मेदारी है वह उसको विस्मृत कर बैठे हैं। फिल्म निर्देशक या फिल्म के कलाकार या फिल्मों से जुड़े लोग भी तो हमारे समाज का ही हिस्सा है इनके हिस्से का जो मानवीय कर्म है उसे इन्हें विस्मृत नहीं करना चाहिए।

हिंदी सिनेमा का भी नैतिक दायित्व अपने समाज के प्रति बनता है यदि वह अपने नैतिक सामाजिक दायित्व का सही ढंग से निर्वाह करेगा तभी वह जनमानस के स्मृतियों में लंबे समय तक विराजमान रह पाएगा। अतः भारतीय सिनेमा को मनोरंजन के साथ अपने दायित्वों को भी सही ढंग से निभाना होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. चतुर्वेदी डॉ. जगदीशवर, मीडिया समग्र– 4, जन माध्यम और मास कल्चर, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं–2013, पृ.102।
2. रजा, डॉ. राही मासूम, सिंह (प्रो.) कुँवरपाल(संपा. एवं संकलन), सिनेमा और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं–2001, पृ.42।
3. नागर विष्णु, भारत एक बाजार है, समकालीन भारतीय साहित्य, अंक–156, जुलाई–अगस्त– 2011, पृ.– 195।
4. मृत्युंजय– सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली, प्रथम सं– 2004, पृ.103।
5. कुमार अरुण, सिनेमा और हिंदी सिनेमा, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, संस्करण 2007, पृ.– 31।
6. पुनीत बिसारिया, राजनारायण शुक्लः भारतीय सिनेमा का सफरनाम, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण–2013, पृ.48

महामारी और अरुणाचली लोक-जीवन

डॉ. जमुना बीनी*

पिछले साल मार्च के महीने में देश के माननीय प्रधानमंत्री जी ने कोरोना महामारी से लड़ने के लिए एक कारगर उपाय के रूप में 'जनता कर्फ्यु' का आह्वान करते हुए, जनता से अपने घरों पर रहने की अपील कीं। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य था संक्रमण का रोकथाम, कारण यह वायरस बीमारी फैलाने के लिए इंसानी शरीर की खोज में रहता है। अतः जब तक पूर्ण रूप से इस भयावह बीमारी का कोई तोड़ खोज नहीं लिया जाता, तब तक अधिक से अधिक शारीरिक दूरी बनाए रखना ही समय की माँग है। न केवल सरकार अनेक गैर सरकारी संस्थाएँ, मीडिया एवं पब्लिक फिगर आदि सब अपने–अपने स्तर पर इस वायरस और बीमारी के बारे में जागरुकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

उपरोक्त चर्चा के अलावा अनेक जन माध्यमों से चाहे वह टेलीविजन के द्वारा या फिर सोशल मीडिया के द्वारा से, आज हमारे कानों में जो शब्द बार–बार गूँज रहे हैं जिसे बच्चा–बच्चा तक जान गये हैं– लॉकडाउन, सोशल डिस्टेंसिंग, क्वारेंटाइन, सेनेटाइजेशन, वर्क फ्रॉम होम आदि। कोरोना वायरस के कारण ये सारे शब्द आज हमारे लिए अति परिचित शब्द बनकर उभरे हैं। परंतु मुख्य सवाल यह है कि इन शब्दों में निहित अवधारणाएँ, क्या मानव–इतिहास में इससे पहले कभी मौजूद नहीं थीं ? क्या ये सारी अवधारणाएँ मात्र आधुनिक वैज्ञानिक खोज की देन है ? इसका उत्तर होगा– नहीं। ये अवधारणाएँ सदियों से लोक समाज में विद्यमान रही हैं, इनकी जड़ें बहुत गहरे तक लोक समाज में पैठी हुई हैं। चाहे किसी भी क्षेत्र का लोक समाज हो–उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम आदि सबने बराबर महामारियों का सामना किया है। और इन महामारियों से निपटने के लिए सबने अपनी–अपनी पारंपरिक पद्धतियाँ भी विकसित कीं। इस पत्र के माध्यम से पूर्वोत्तर विशेषकर अरुणाचली लोक समाज की इन्हीं पद्धतियों की विवेचना मेरा अभीष्ट है।

अरुणाचल प्रदेश भारत का एक सीमांत राज्य है जिसकी सीमाएँ चीन, तिब्बत, म्यांमार आदि देशों से लगती हैं। सामरिक दृष्टि से यह भारत एक महत्वपूर्ण राज्य है। यह एक आदिवासी बहुल राज्य है जहाँ लगभग छब्बीस प्रमुख आदिवासी समुदाय निवास करते हैं। न्यीशी, आदी, गालो, आपातानी, तागिन, वांचो, नोक्टे, ताङसा, मोन्पा, शेर्दुक्फेन, अका, मिजी, मेम्बा, खाम्बा, सिन्फो, खाम्ती, ईदु–मिश्मी, दिगारु–मिश्मी, मिजु–मिश्मी आदि यहाँ के प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं। इन आदिवासी समुदायों की अपनी अनूठी परंपरा, रंग–बिरंगे पर्व–त्यौहार और सरसपूर्ण जीवनशैली है। भाषा–बोली की दृष्टि से इन आदिवासी समुदायों की अधिकांशतः भाषाएँ तिब्बती–बर्मी भाषा परिवार के अंतर्गत आती है। इनकी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लोकसाहित्य प्राप्त होता है। इनके लोकसाहित्य में यहाँ का सहज–सरल लोकजीवन बखूबी प्रतिबिंबित हुआ है। इनके लोकसाहित्य में विशेषकर लोककथाओं और लोकगीतों में महामारियों का अनेक दफा उल्लेख मिलता है। अतीत में यहाँ का लोक समाज भी महामारियों से जूझता आया है। इधर का समाज भी महामारियों से अछूता नहीं रहाँ अगर हम यहाँ के इतिहास खंगालते हैं, तो पाते हैं कि यहाँ भी महामारियों का आतँक फैला हुआ था जिसका बार–बार वर्णन इनके लोकसाहित्य में दृष्टिगोचर होता है।

एक 'न्यीशी लोककथा' है– 'उईमोक', जिसमें महामारी की विभीषिका का जीवंत वर्णन हुआ है। यह एक पिता और पुत्री की अत्यंत मार्मिक कथा है। इस कथा की नायिका एक छोटी बच्ची है जिसका नाम है–यानाम। यानाम जिस गाँव में रहती है, वहाँ हर दो–तीन साल के अंतराल में महामारी धावा बोलती है। इन्हीं महामारियों में यानाम की माँ और दादा–दादी के साथ चाचा–चाची सब गुजर जाते हैं। अबकी महामारी में उसके चहेते पिता भी काल–कवलित हो गयें। अनाथ यानाम बिल्कुल अकेली पड़ जाती है और

***असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश– 791112।**

वह अपने पिता के शव के पास ही बैठी रहती है। उसे लगता है अगर वह पल भर के लिए भी पिता के पास से हटी तो महामारी उसको भी दबोच लेगी। बाद में गाँव वाले आकर पिता के शव को न्युब्लु यानि कब्र खोदकर दफना देते हैं। मगर रात के अंधकार का लाभ उठाते हुए यानाम कब्र से मिट्टी हटाकर भीतर कूद जाती है। और जब पिता के मृत शरीर से आत्मा निकलकर दूसरे लोक यानी मृत्युलोक के लिए निकल पड़ती है, तो यानाम भी चुपके से उसके साथ हो लेती है। वस्तुतरू यानाम के मन में यह डर व्याप्त था कि वह इधर धरतीलोक पर अकेली रह गई तो महामारी उसे भी अपनी शिकार बना लेगी। अतःवह अपने पिता की आत्मा के साथ एक अनजान तिलिस्मी लोक की ओर कूच करती है।

यहाँ इस लोक कथा में महामारी के भयंकर प्रकोप का सजीव अंकन हुआ है। कुछेक सालों के अंतराल के पश्चात महामारी का फैलना, महामारियों के कारण तबाह होते गाँवों, महामारियों के द्वारा बच्चों का अनाथ पड़ जाना आदि। इसके अलावा महामारियों का मनुष्य के मनोविज्ञान विशेष रूप से बच्चों के मन पर पड़ने वाला प्रभाव मसलन निरंतर डर, असुरक्षा, अकेलापन, विक्षोभ आदि से आदि को भी दर्शाया गया। नितांत अकेली, असहाय और बेचारगी का डर यानाम को इस कदर जकड़े रहती है कि वह पिता की आत्मा के साथ एक रहस्यों भरा अलौलिक यात्रा पर निकलने को विवश होती है। महामारियों के प्रति भय की अनुगूंज लोकगीतों में भी पर्याप्त सुनाई पड़ता है। दैनिक जीवन के क्रियाकलापों के बीच गाये जाने वाले गीत हो या पर्व–उत्सव के दौरान अपने ईष्टदेव और देवी की मनौती में गाये जाने वाले गीत, सबमें महामारी का खौफ स्पष्ट सुने जा सकते हैं। आदिवासी समाज एक उत्सवधर्मी समाज है। अतःइनके यहाँ पूरा साल किसी–न–किसी उत्सव का आयोजन होता रहता है। अरुणाचल प्रदेश की कमलअ घाटी के निवासियों द्वारा आयोजित किया जाने वाला एक त्यौहार है– 'बूरी–बूत'। इस कृषि संबंधित त्यौहार में लोकनृत्यों के अलावा कर्णप्रिय लोकगीतों भी की प्रस्तुति होती है। त्यौहार के पुण्य अवसर पर गाया जाने वाला एक लोकगीत यहाँ द्रष्टव्य है– "अजि पिन पिदो रे/हय बिन बिदो रे/बूरी–बूतम मोला जू/लबु–सिकोम जो जू/दअरअ–यारअ रमा दो ब/इचि–दुइल पिमा दो ब/लबु–सिकोम जोला जू/लबु जोला जू"

अधिकांशतः आदिवासी समुदाय चूँकि प्रकृति–पूजक होते हैं, इसलिए उपर्युक्त गीत में भी सूर्य माता की वंदना के पश्चात उनसे विनती करते हैं कि अमन और भाईचारा बनाये रखें, धन–धान्य की कमी न रहें तथा महामारी आदि से बचाव करें। प्रत्येक मानव समाज महामारी जनित विपत्तियाँ झेलता आया है, इस गीत में उस डर का स्पष्ट छाप है। आधुनिक या वैज्ञानिक कहे जाने वाले तमाम चिकित्सा सुविधाओं से वंचित आदिवासी समाजों ने अपनी आँखों से महामारियों को गाँव के गाँव उजाड़ते देखे हैं, महामारी से उपजा विकट अस्तित्व के संकट को भोगे हैं। इसलिए वे अपनी प्रार्थनाओं और गीतों में भी महामारी से रक्षा की गुहार लगाते दीखते हैं। ये तो बातें हो गईं अरुणाचली लोकसाहित्य में महामारियों का चित्रण किस प्रकार से हुआ, अब आते हैं इनके लोक समाज में किस प्रकार की महामारियाँ अधिक फैलीं। अधिकांशतः यहाँ दो किस्म की महामारियों का अत्यधिक प्रकोप रहा, ये महामारियाँ थीं– 'इचि–दुइल' यानि हैजा और 'तुबुम–बुग्नाम' अर्थात् स्मॉल फॉक्स। आज तो हैजा का इलाज और रोकथाम उतना दुष्कर नहीं है, किंतु अतीत में हैजा पर नियंत्रण पाना अत्यंत दुसाध्य था। हैजा एक बार फैलना शुरू हुआ तो इसकी चपेट में गाँव की पूरी जनसंख्या के समाने का खतरा बना रहता था। बड़े–बुजुर्ग बताते हैं कि यह बीमारी जंगल की आग की भाँति तीव्रता फैल जाती थी और देखते–देखते ही लोग उल्टी और दस्त से दम तोड़ दिया करते थें। शरीर में पानी की घोर कमी हो जाती और आँखें किसी अंधेरी गुफा की तरह भीतर धँस जाती थीं।

दूसरी खौफनाक महामारी थी– स्मॉल फॉक्स। इस बीमारी का शिकार बच्चे ही हुआ करते थें। शरीर पर चकत्ते निकल आते थें और चकत्तों में पानी भरे होते थें। चकत्तों के कारण ज्वर और पीड़ा से बच्चे बेहाल रहते थें। इस बीमारी ने अनेक बच्चों को ग्रस ली हैं। जिन घरों में बच्चों की भोली किलकारियाँ गूँजा करती थीं, एकाएक वहाँ वीरान और सन्नाटा पसर जाती थी। ऊपर हमने महामारियों के निपटारे के लिए जिन प्रैक्टिस या अवधारणाओं की चर्चा की थी, उस पर बिंदुवार रूप से विचार करते हैं–

लॉकडाउन– यहाँ के लोक समाज में लॉकडाउन के लिए पारिभाषिक शब्द मौजूद है। जैसे न्यीशी समुदाय में लॉकडाउन के लिए 'अर्ररअनम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जब भी किसी गाँव में महामारी फैलती थी, तो सबसे पहले गाँव के मुख्यद्वार को सील कर दिया जाता था। यानी गाँव के भीतर कोई बाहरी व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता और गाँव के अंदर रहने वाला भी बाहर नहीं जा सकता। पर यह गौरतलब है की लॉकडाउन अचानक बिना किसी पूर्व सूचना अथवा पर्याप्त तैयारी के लागू नहीं किया जाता। अफरा–तफरा में नहीं, बल्कि बहुत ही सुनियोजित और सुविचारित रूप से लॉकडाउन बिठाया जाता था। मुख्य द्वार को सील करने से पहले यह सुनिश्चित किया जाता था कि गाँव में खाद्य सामग्री का अभाव न हो, इसलिए प्रचुर मात्रा में खाद्य वस्तुओं का संग्रह कर लिया जाता था। और तो और यह सूचना भी एकत्र कर ली जाती थी कि गाँव का कोई व्यक्ति किसी कारणवश कहीं बाहर फँसा तो नहीं। कई दफा ऐसा होता था कि जो लोग गाँव के बाहर जंगल में शिकार पर गये हों और लौटें नहीं तथा अपने सगे–संबंधियों से मेल–मिलाप के लिए कुछ लोग पड़ोस के गाँव गये हों और वापस आये नहीं। सो लॉकडाउन से पहले सबको सूचना पहुँचाई जाती थी।

अत्यंत सुव्यवस्थित रूप से लॉकडाउन की तिथि भी 'न्यीब' अर्थात् पुजारी द्वारा तय करवाया जाता था। किस दिन और कौन सा मुहुर्त सबसे अधिक मंगलकारी होगा, इसका निर्धारण पुजारी ही करते हैं। तिथि के निश्चित होने के बाद आस–पास के सारे गाँवों में मुनादी करवायी जाती थी कि फलाँ–फलाँ तिथि को अमुक गाँव में लॉकडाउन होने जा रहा है। तब जाकर गाँव में आवाजाही के लिए जो मुख्य द्वार होता है, उसे पूरी तरह सील कर दिया जाता था और इसके बाद कुछ लोक अनुष्ठान होते थें। इन लोक अनुष्ठानों का व्यापक स्तर पर आयोजन होता था। यहाँ एक लोक अनुष्ठान का उल्लेख आवश्यक है– 'हेम उई'– इस अनुष्ठान में पशु–बलि दी जाती है। कुत्ता, सूअर और बकरी आदि में से किस पशु की बलि दी जायेगी, इसका निर्णय पुजारी करते हैं। यहाँ पुजारी या ओझा की शक्तियों पर किंचित प्रकाश डालना उचित रहेगा। ऐसा माना जाता है कि 'न्यीब' यानी ओझा के पास एक चमत्कारिक शक्ति होती हैं, वे दिव्य शक्तिधारी होते हैं। वस्तुतरू वे एक प्रकार से मध्यस्थ या निगोशिएटर होते हैं।

यहाँ के लोक समाज में ऐसी मान्यता है कि संसार में मुख्यतरू दो प्रकार की आत्माएँ होती हैं– भली आत्मा और दुष्ट आत्मा ! जहाँ भली आत्माएँ जगत में सुख–समृद्धि और खुशहाली लाती हैं, तो वहीं बुरी या दुष्ट आत्माएँ नाना प्रकार की विपत्तियों के लिए उत्तरदायी होती हैं। प्राकृतिक आपदाएँ जैसे बाढ़, भूकंप, भूस्खलन आदि दुष्ट आत्माओं की ही देन हैं। इतना ही नहीं महामारी भी दुष्ट आत्माओं की ही करतूत हैं। इसलिए गाँव में जब महामारी के रोकथाम के लिए अनुष्ठान का आयोजन होता है, उस दौरान पुजारी अपने मंत्रोच्चारण से इन दुष्ट आत्माओं का आमंत्रित कर उनसे संवाद स्थापित करने का प्रयास करते हैं। वे बुरी आत्माओं से विनती करते हैं कि वे मनुष्य को अपनी चारा बनाने के बजाय किसी पशु को बनायें। अगर उन्हें किसी का जीवन हरना हैं तो कृपया पशु का जीवन हरें ! बुरी आत्माएँ भी अत्यंत शक्तिशाली होती हैं, वे आसानी से नहीं मानतीं। सो उन्हें मनाने या प्रलोभन देने का प्रयास दिन–रात चलता रहता है। इस कारण अनुष्ठान कई बार बहुत लम्बा खींच जाता है यानी अनेक दिनों तक विधियाँ चलती रहती हैं। दुष्ट आत्माओं से समझौता के पश्चात अण्डे को उबाला जाता है। फिर पुजारी उबले हुए अण्डे की जर्दी का परीक्षण करते हैं। परीक्षण के बाद जो परिणाम आता है, उसे देखकर पुजारी बताते हैं कि किस पशु की बलि माँगी गई। आमतौर पर देखा गया कि कुत्ते की बलि ही अधिक चढ़ाई जाती है। बलि कैसी चढ़ाई जाती है, इसकी भी सुव्यवस्थित पद्धति होती है जिसका विधिवत् पालन अति आवश्यक है।

सबसे पहले गाँव के मुख्य फाटक के समक्ष 'उई–रअगअ' अर्थात् बलि–वेदी निर्मित की जाती है। उस बलि–वेदिका के पास कुत्ता को लाकर मंत्र बुदबुदाते हुए पुजारी उसकी बलि चढ़ाते हैं। तत्पश्चात बाँस से बनी बलि–वेदिका पर कुत्ता का सिर लटकाया जाता है। बाँस यहाँ के लोकजीवन का अभिन्न अंग है। यहाँ लोग बाँस खाते हैं, बाँस पहनते हैं, बाँस के घरों में रहते हैं। यानी जन्म से मरण तक बाँस से इन लोगों का साबका पड़ता है। अतःधार्मिक अनुष्ठान जैसे पावन अवसरों पर भी बाँस की उपयोगिता देखी जा सकती है। लॉकडाउन के समय गाँव के भीतर और बाहर प्रवेश तथा निकासी तो वर्जित है ही, इसके

अलावा खान–पान आदि के दौरान भी वर्जनाओं का पालन करना होता है। यानी केवल गाँव वालों की आवाजाही संबंधित गतिविधियाँ ही नियंत्रित नहीं रहतीं, वरन् खान–पान संबंधी आदतों का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। हैजा आदि बीमारी में बहुत गरिष्ठ भोजन या माँस आदि जिसे पेट में गर्मी पैदा हो, ऐसे भोजन के सेवन से परहेज पर जोर दिया जाता है। और पानी को भली प्रकार से उबालकर समय–समय पर पीने की सलाह दी जाती है।

तमाम सावधानी बरतने के बाद भी अगर कोई व्यक्ति बीमारी से संक्रमित हो गया, तो उसके देखभाल आदि की भी यथोचित व्यवस्था की जाती है। उदाहरण के लिए गाँव के भीतर कोई खाली स्थान या खुली जगह पर उसके लिए बाँस और पत्तें से अस्थायी झोंपड़ी का निर्माण किया जाता है। परिवार के किसी भी सदस्य में संक्रमण के लक्षण दीखते ही, तुरंत उसे परिवार से अलग कर इस प्रकार की अस्थायी झोंपड़ी पर रहने का इंतजामात किया जाता है। बीमार व्यक्ति का झोंपड़ी पर प्रवास के दौरान, उसके परिजन भोजन आदि पकाकर उसे पहुँचाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि संक्रमित व्यक्ति द्वारा उपयोग किया गया थाली–बर्तन एवं पहना गया कपड़ा आदि को औरों से बिल्कुल अलग–थलग करके रखा जाया। समय–समय पर पुजारी या ओझा आकर उसके शीघ्र स्वास्थ्य–लाभ के लिए झाड़–फूंक वगैरह भी करते हैं।

सेनेटाइजेशन– इसकी अवधारणा भी इधर के लोक समाजों में लम्बे समय से विद्यमान रही है। यहाँ की लोकभाषा में सेनेटाइजेशन को 'पाय–हेनाम' कहा जाता है। 'पाय–हेनाम' का शाब्दिक अर्थ है– शुद्धिकरण। अभी हम जिस प्रकार से देख रहे हैं इस कोरोना वैश्विक महामारी में दफ्तरों, रेस्टॉरेण्ट, बसों और अन्य सावर्जनिक स्थलों पर सफाई कमर्चारी जाकर डिसइन्फेटेंट आदि का छिड़काव कर रहे हैं। ठीक उसी प्रकार गाँवों में पुजारी से झाड़–फूंक करवाकर उसके मंत्रसिक्त जल को रोगी व्यक्ति के ऊपर, उसके रहने के स्थल पर छिड़क दिया जाता है। केवल छिड़काव ही नहीं, बल्कि उसी पवित्र जल से उस स्थल को धोया भी जाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह शुद्धिकरण की क्रिया मात्र महामारी तक ही सीमित नहीं है, गाँव में जब कभी किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, उसके शव को दफनाने के पश्चात उपस्थित भीड़ के ऊपर पुजारी मंत्रपाठ करते हुए जल छिड़कते हैं।

इसके पीछे दो मूल कारण है– पहला मृत व्यक्ति के शरीर से रिसता जीवाणु अथवा विषाणु से सुरक्षा। क्योंकि यहाँ की परंपरा के अंतर्गत मृतक व्यक्ति को तुरंत दफना नहीं दिया जाता, दूरदराज के सगे–संबंधियों के अंतिम दर्शन के लिए शव को तीन दिनों तक रखने का रिवाज है। जाड़े के मौसम में तो ठीक है, मगर गर्मी के मौसम में कई दफा शव की सड़न के साथ जीवाणु तथा विषाणु पनपने का खतरा तो है। दूसरा कारण– यह माना जाता है कि मृतक व्यक्ति की आत्मा की साया सदा जीवितों ऊपर मंडराती रहती है। अगर शुद्धिकरण की क्रिया संपन्न नहीं हुई तो वह जीवित व्यक्ति की आत्मा को 'उईमोक' अर्थात् प्रेतात्माओं के लोक में ले जा सकती है। ऐसी स्थिति में मंत्रसिक्त जल ही बचाव का एकमात्र उपाय रह जाता है। सबसे रोचक बात यह है कि यहाँ के लोक समाजों में स्वच्छता या शुद्धिकरण की भावना इतनी अधिक प्रबल है कि कई बार किसी गाँव में महामारी फैल गयी, तो लोग सीधा उस गाँव का ही परित्याग कर देते हैं। ऐसे अनेक वाक्या हैं, यहाँ इसी प्रकार की एक वाक्या का उल्लेख करना चाहूँगी– सिपु नामक एक गाँव था, जहाँ बरसों–बरस पहले महामारी फैली। हैजा महामारी फैली थी। करीबन गाँव की एक–तिहाई आबादी उस हैजा में खत्म हो गयी। उस विनाशकारी बीमारी से जो लोग बच गयें, उनमें गाँव की मुखिया भी था। मुखिया ने अन्य लोगों के साथ मिलकर विचार–विमर्श किया कि गाँव पूरी तरह से संक्रमित हो चुका है, कोने–कोने में संक्रमण फैल गया, अब पूर्ण रूप से शुद्धिकरण किसी भी दृष्टि से संभव नहीं। अतःसबने मिलकर निर्णय लिया कि गाँव का परित्याग ही सबके हित में होगा। उसके बाद वे अपना माल–असबाब ढोकर बीहड़ जंगलों में कई दिनों तक मीलों की पैदल यात्रा कर बिल्कुल एक नया स्थान पर दोबारा नया गाँव बसायें।

वर्क फ्रॉम हॉम– हमने अभी इस कोरोना महामारी में देखा कि दिल्ली, मुंबई आदि बड़े–बड़े महानगरों से लाखों की संख्या में मजदूर पलायन कर रहे हैं। सैंकड़ों मीलों की यात्रा पैदल–पैदल चलते हुए, अपने साजो–सामान को सड़कों पर खींचते–घसीटते हुए, भूखी–प्यासी मजदूरिन औरतें अपनी गोद पर भूख से बिलबिलाते नन्हें–मुन्नों को थकी हाथों से थामे बदहवास सड़कें नापे जा रही हैं। मगर महानगरों और गाँवों की दूरी इतनी अधिक मानो कोई अंतहीन खाई हो। न जाने ऐसे कितने विचलित करने वाले चित्र आज हम अपने टेलीविजन के स्क्रीन पर देखने को विवश हैं।

पर यह विशेष ध्यातव्य है कि इन मजदूरों में पूर्वोत्तर के बहुत कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि वर्क फ्रॉम हॉम का कॉन्सेप्ट या अवधारणा यहाँ के निवासियों के लिए बिल्कुल नयी नहीं है। सदा से यहाँ का समाज एक कृषि–प्रधान समाज रहाँ और जितनी खेती–बाड़ी होती है, वह गाँव की परिधि के भीतर होती है। खेती–किसानी के लिए लोगों को अपने गाँवों के बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़तीं। इसके साथ ही इधर का समाज प्रकृतिजीवी है। वनोपजों से उनकी अधिकांश आवश्यकताओं की आपूर्ति हो जाती है। अपनी आजीविका के लिए अभी तक तो महानगरों की और रुख करने की नौबत नहीं आई। खेती–बाड़ी के अलावा घर–घर में पशु–पालन होता है, प्रत्येक घर के बगल में साग–सब्जी उगाने के लिए किचन गार्डन खूब होता है। सब्जी, मांस–मछली आदि की खरीददारी के लिए बारम्बार बाजार भागने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

यहाँ की लोकपरंपरा में शिकार या आखेट की भी प्रथा है। किसी त्यौहार विशेष पर सामुदायिक आखेट जाने का भी रिवाज है। इण्डिविजुअल हण्टिंग या वैयक्तिक शिकार भी जाया जाता है, मगर काफी कम। सामुदायिक आखेट का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे शिकार प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है, जिससे गाँव के लोगों के माँस आदि की आवश्यकताएँ दीर्घकाल तक पूरी हो जाती हैं। क्योंकि शिकारी–दल के हर सदस्य को तो उसका हिस्सा मिल ही जाता है, इसके साथ गाँव के प्रत्येक घर के लिए भी समान रूप से बँटवारा होता है।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि इनके आखेटजीवी होने का कदापि यह अर्थ नहीं कि ये लोग जंगल के सारे पशु–पक्षियों को मारकर खा खत्म करने में विश्वास करते हैं। आखेट का भी अपना सिद्धांत होता है। जितनी आवश्यकता हो उतना शिकार करना, उससे अधिक नहीं। वर्ना 'यापोम' यानी वन की देवी कुपित होती है। शिकार के समय सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों का भी ध्यान रखना होता है, जैसे तालाब में प्रजनन करती मछलियों को भी पकड़ना पाप है। आखेट संबंधी सिद्धांत का सजीव अंकन लोककथाओं में बहुत मिलता है। एक लोककथा है– यामर। यामर एक अल्हड़, ढीठ और बिगड़ैल लड़की होती है जो किसी की नहीं सुनती। उसके माता–पिता के लाख मना करने के बावजूद भी वह अकारण नदी जाकर मछलियों और झींगों का शिकार करती रहती है। इससे जलचरों की आबादी पर गहन संकट गहराने लगती है। और कथा के अंत में होता यह है कि एक दिन यामर स्वंय जलचरों का आहार बन जाती है। यह कथा उन लोगों के लिए अच्छी सीख है जो मात्र अपने मौज–मस्ती के लिए शिकार करते हैं।

साधारणतः यह देखा गया कि शिकार के लिए बाकायदा जगहें भी चिन्हित होती हैं। कहाँ और कौन स्थान पर किस गाँव के लोग शिकार कर सकते हैं, यह निर्धारित रहता है। अगर कोई सीमा का उल्लंघन कर पड़ोस के गाँव की सीमा के भीतर घुस जाय, तो विवाद खड़ा हो सकता है। न्याय परिषद की बैठक में दोषी व्यक्ति दण्डित भी हो सकता है। भोजन आदि के संग्रह और आपूर्ति संबंधी बातों के पश्चात जहाँ तक पहने–ओढ़ने का मसला है, उसका भी समाधान घर पर ही स्थित है। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्त्र आदि महिलाएँ घरों पर ही बुन लिया करती हैं। वृक्ष के रेशेदार छालों से धागा निकालती है और रेशम के कीड़ें भी घरों पर पालती हैं। हाँलाकि वृक्ष के छालों से धागा निकालने की प्रक्रिया बहुत लम्बी और जटिल होती है। बुनाई–कला में ये आदिवासी महिलाएँ बहुत सिद्धहस्त होती हैं। अपनी अभ्यहस्त कोमल उँगलियों से रंगीन धागों पर अनेक डिजाइन बुनने में दक्ष होती हैं। बुनाई के उपकरणों को 'रुबुरअक्का' बोला जाता है। पहनने के लिए 'लअगलअक' यानी ब्लाउज से लेकर मेखलानुमा पोशाक 'गालअ' आदि

अत्यंत कुशलता से बुनती है। पुरुषों के लिए 'गालुक' अर्थात् कोट की बुनाई भी बहुत सुंदर होती है। घर के रोजमर्रा के कामों से निजात पाते ही, महिलाएँ बुनाई में जुट जाती हैं। बुनाई महिलाओं का प्रिय शगल के साथ–साथ कपड़े–लत्ते आदि आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन भी है। गाँवों में महिलाओं के बीच यह होड़ाहोड़ी मची रहती है कि कौन कितनी तेजी से, अधिक से अधिक कपड़े बुन सकती हैं। बेटियों को बचपन से माताएँ अपनी पास बिठाकर बुनाई कला की शिक्षा देना आरंभ करती हैं।

इस कोविड महामारी में स्वास्थ्य–विशेषज्ञों द्वारा निरंतर यह सलाह–मश्वरें दिये जा रहे हैं कि हमें अपनी रोग–प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करनी चाहिए। इसके लिए शारीरिक कसरत के साथ खान–पान पर भी विशेष बल दिया जा रहा है। श्रमशील तो स्वतरू यहाँ के लोग हैं ही और अगर हम अन्य लोगों के साथ इधर के आदिवासी समुदायों के फूड–हैबिट्स की भी तुलना करें, तो देखते हैं कि यहाँ के लोगों के आहार में पौष्टिकता अधिक है। कारण यहाँ जंक–फूड का सेवन नगण्य के बराबर है। यहाँ हरी पत्तेदार सब्जी बड़े चाव से खाया जाता है। कुछ सब्जियाँ जंगलों से तोड़कर लाते है, तो कुछ घरों के आँगन में उगाई जाती हैं। जंगली सब्जियों में भी ऐसी अनेक सब्जियाँ हैं, जिसमें औषधीय गुण समाहित हैं। जैसे 'पोटो' नामक एक सब्जी पाई जाती है, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसमें कुछ ऐसे तत्व है जो हाई ब्लड–प्रेशर को कम देता है। इसके अलावा खेतों में 'टेम' नामक अनाज उगाया जाता है, जिससे मदिरा भी बनती है। कहते हैं कि इससे पीने से डायबिटिज की शिकायत दूर जाती है। और मीट–मछलियाँ भी बिल्कुल शुद्ध, बिना किसी वैक्स आदि के मिलावट की मिलती हैं। और कहना न होगा कि ये प्रोटिन का अच्छा स्रोत होता है। जीरो घाटी में निवास करने वाला एक आपातानी समुदाय है, जो धान की खेती में मतस्य–पालन के लिए विख्यात है। जिस पानी से खेतों की सिंचाई करते है, उसी पानी की निकासी–मार्ग को अवरुद्ध कर उसमें मछलियाँ पालते है। वे खेतों के मेड़ की ढलाई इस प्रकार करते हैं कि जिससे भीतर का पानी अनावश्यक तौर पर बाहर बहकर बर्बाद न हो। यह पद्धति पारंपरिक के साथ–साथ अति वैज्ञानिक भी है।

अंत में निष्कर्ष के तौर पर मेरा विचार है कि आज इस वैश्विक महामारी के कारण जो विकट समस्या उत्पन्न हुई, जिन गंभीर चुनौतियों का सामना समस्त मानवजाति कर रही है, उसके उपाय रूप में हम बहुत अधिक वेस्टर्न नॉलेज सिस्टम पर निर्भर नहीं रहनी चाहिए। हमें अपनी पारंपरिक ज्ञान–पद्धतियों की ओर उन्मुख होने की परम आवश्यकता है। यह बहुत संभव है इन ज्ञान–पद्धतियों में संचित कतिपय बातें, आज हमारे गले न उतरें या तर्कसंगत न लगें, पर समयानुसार और आवश्यकता के अनुरूप नई दृष्टि से इसकी व्याख्या की संभावनाओं को भी खारिज नहीं किया जा सकता। पारंपरिक ज्ञान–धाराओं का जो उज्जवल पक्ष है, उसके आत्मसात से परहेज क्यों ! इसके साथ ही इस विनाशकारी महामारी ने हमें तो सिखला ही दिया कि अंधाधुंध विकास, कभी विकास का आदर्श मॉडल नहीं हो सकता। प्राकृतिक संसाधनों का बेलगाम दोहन कर हम कैसा समाज का निर्माण करना चाहते हैं ! जैसा कि हम देख रहे हैं कि इस महामारी के बहाने प्रकृति अपनी क्षतिपूर्ति कर रही है। वायु स्वच्छ हो गई, जल–प्रदुषण भी घट गया। इसलिए जिस सस्टेनेबल डेवलप्मेंट की बात लगातार कही जा रही है, उस पर मनोयोगपूर्वक मंथन करना, सिर्फ मंथन ही नहीं उसका क्रियान्वयन भी समय और युग के अनुरूप होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. बीनी तागोम से साक्षात्कार।
2. बीनी तारे से साक्षात्कार।
3. बीनी तासा से साक्षात्कार।
4. बीनी तेक से साक्षात्कार।
5. बीनी तामो से साक्षात्कार।
6. बीनी तअगलअ से साक्षात्कार।

★

लंका के साहित्य और कला पर भारतीय-संस्कृति का प्रभाव

डॉ. मनोज कुमार*

भारत और लंका के ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों का इतिहास अति प्राचीन है। प्रत्येक भारतवासी लंकाद्वीप के नाम से सुपरिचित हैं तथा प्रत्येक लंकावासी के लिए भारत बुद्ध की जन्मभूमि होने के कारण तीर्थभूमि है। बौद्ध धर्म का शुद्धतम सम्प्रदाय थेरवाद आज भी लंका का राष्ट्रधर्म है। पालि धर्मभाषा है। पालि साहित्य के अपूर्व संवर्धन का श्रेय श्रीलंका को है। लंका का पालि साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। पालि लंका की धर्मभाषा थी और आज भी है। लंका का थेरवाद बौद्ध धर्म अत्यन्त पवित्र है। इसके प्रमुख दो कारण हैं। समय–समय पर संघ की शुद्धि और दूसरा महाथेरों की पूत जीवन एवं धर्म, विनय और दर्शन का गठन अध्ययन। बुद्ध धर्म के साथ ब्राह्मी लिपि का भी लंका में प्रवेश हुआ। गुफाओं पर खुदे एक–पंक्ति शिलालेखों की लिपि सम्राट अशोक के शिलालेखों की ब्राह्मी ही है। आदरणीय गुणरत्न जी के अनुसार सिंहली लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है।[1]

वट्टगामनी ने थेर महातिस्म को अभयगिरि विहार दिया। यहाँ भारत के पल्लवाराम से आये भिक्षुओं के प्रभाव से महायानी धर्मरुचिनिकाय की स्थापना हुई, परन्तु इसके साथ ही पालि साहित्य के इतिहास में अपूर्व घटना घटी। महावंशानुसार भिक्षुओं ने अनुभव किया कि महायान के प्रभाव से लोग धर्म से परे जा रहे हैं। सत्य धर्म को बनाये रखने के लिए त्रिपिटक और अट्ठकथा के ग्रंथों को लिखित रूप देना आवश्यक है। यह निर्णय आलोकविहार के 500 भिक्षुओं ने सिव महाथेर की अध्यक्षता में किया था। भिक्षुओं में कणठस्थ करने की परम्परा के कारण लिपि होते हुये भी ग्रंथ लिखने का प्रचार न था। ऐतिहासिक गंथ पूजावलिय के अनुसार अलुविहार में बना त्रिपिटक संस्करण महाविहार तथा अन्य प्रमुख विहारों में रखा गया।[2] 14वीं शती में लिखे गये निकाय संग्रह में भी इस घटना का उल्लेख है। विद्वान अधिकारम के अनुसार भातिकाभय तिस्स 22 वर्ष ईसा पूर्व के न होकर इससे कुछ वर्ष पूर्व हुआ।[3] इनके समय में टिकाएं लिखी गईं।

बुद्धदास ने स्वयं वैद्यक पर संस्कृत में सारार्थ संग्रह नामक ग्रन्थ लिखा। इसी समय महाधम्मकथिन् ने पहली बार पिटकत्रय के सूत्रों का सिंहली में अनुवाद किया। इस प्रकार चतुर्थ शती तक लंका में पालि, संस्कृत और सिंहली (जिसे महावंश ने दीपभाषा कहा है) में ग्रन्थों को लिखने का साहित्यिक कार्य प्रारंभ हो चुका था। प्राचीन सिंहली भाषा एलु कहलाती है। लंका का दक्षिण भारत से विशेषतः तमिलों से सम्बन्ध 247 ईसा पूर्व से ही प्रारम्भ हो गये थे। लंका में तमिल में भी ग्रन्थ लिखे गये।[4] दूसरी शती ईसा पूर्व के प्राचीनतम एक–पंक्ति गुफाद्वार अभिलेखों के पश्चात् हमें राजाओं द्वारा सुवर्ण, रजत, कांस्य पटों पर लिखे दान–अभिलेख मिलते हैं। वट्टगामनी द्वारा थेर महातिस्म को दिए विहार की भेंट का आलेखन केतक के दो लेखपट्टों पर था। दमिलों (तामिल) ने उसकी राजशक्ति छीन ली थी और उसके पास सुवर्ण अथवा रजतपट्ट नहीं था। आठवीं शती के लंका में निःशंकमल्ल के अभिलेख प्रसिद्ध हैं।

पालि त्रिपिटिक का अध्ययन पुण्य का कार्य था। 5वीं शती में प्रथम ने इन ग्रन्थों की प्रतिकृतियाँ करवाई। 6वीं में मोग्गलान, सेन (9वीं शती), कस्सप पंचम (10वीं शती) ने त्रिपिटक के ग्रन्थों की प्रतिकृतियाँ करवाईं। कश्सप पंचम ने तो कुछ ग्रन्थों को सुवर्णपट्टों को भी लिखवाया। विजयबाहु प्रथम ने पूर्ण त्रिपिटक लिखवाकर संघ को दान दिया। भुवनैकबाहु प्रथम (13वीं शती), पराक्रमबाहु चतुर्थ (15वीं शती), वीरविक्कम (16वी शती) और कित्तिसिरिराज ने धार्मिक ग्रन्थों के संरक्षण के लिए विविध कार्य किये। पालि त्रिपिटक के पश्चात् का अधिकांश पालि बौद्ध साहित्य लंका में ही लिखा गया है।[5] आलोक विहार के निश्चय के समय प्राचीन सिंहली 'एलु' में महाथेर महिन्द और उनके साथियों के त्रिपिटक पर प्रवचनों का संग्रह 'सिंहलाट्ठकथा' में हुआ था। सम्भवतः पालि साहित्य को जनजीवन तक पहुँचाने के लिए ही बुद्धदास (चतुर्थ शती) ने थेर महाधम्मकथिन् से पालि लिखित त्रिपिटक के सुत्तों का सिंहली में अनुवाद कराया।[6]

***सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना–800005।**

महानाम के समय लंका में पालि के महान् टीकाकार बुद्धघोष आये। इनके आगमन से पूर्व खुद्दकसिक्खा और मूलसिक्खा (महासामि द्वारा) लिखी जा चुकी थी। (350 ई॰ के लगभग)। बुद्धघोष अनुराधपुर के ग्रन्थकार विहार में आए और उन्होंने सिंहली अट्ठकथा, का मगधों के व्याकरण नियमों का पालन करते हुए अनुाद किया।[7] उन्होंने विशुद्धिमग्ग नामक ग्रन्थ लिखा जो बौद्धधर्मदर्शन पर अद्वितीय ग्रन्थ है और त्रिपिटक का सार है। इस ग्रन्थ में लेखक ने सिंहली टीकाओं, महाविहार की अट्ठकथा मिलिन्दपंच और पेटकोपदेश से उद्धरण दिए हैं। शैली प्रवाहमयी है और तर्करहित होने के कारण दिव्यप्रभावयुक्ता है। आचार्य बुद्धघोष का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ समन्तपासादिक विनय पर है। इन्होंने बहुत–सी टीकाएं भी लिखीं। दीर्घनिकाय पर सुमंगलविलासिना (तीन भागों में) मंझिमनिकाय पर प्रपंचसूदनि, संयुक्तनिकाय पर सारात्थप्पकासिनी तथा अंगुत्तरनिकाय पर मनोरथपूणी, खुद्दकनिकाय पर परमात्थजोतिका टीका है। अभिधम्मपिटक पर भी इन्होंने ग्रन्थ लिखे। इसमें अट्ठशालिनी नामक टीका ग्रन्थ उल्लखनीय है। बुद्धघोष के ग्रन्थों से उनके पूर्व लिखे गये ग्रन्थों का महत्व लगभग नगण्य हो गया। ये थेरवाद के अद्वितीय व्याख्याता थे सिंहली पर इनका प्रभाव आगे की पीढ़ियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। पालि भाषा का अभूतपर्वू विकास इनकी कृतियों में सम्मुख आया। भाषा के शब्द भण्डार में वृद्धि हुई। लंका में इस समय राजनैतिक शान्ति भी थी।

बुद्धदत्त बुद्धघोष के समकालीन थे। कुछ वर्ष लंका में रहकर ये दक्षिण भारत लौटे। भूतमंगलगाम विहार में अभिधम्मावतार और विनयविनिच्छय ग्रन्थ लिखे। लंका और बर्मा में इन ग्रन्थों का व्यापक प्रयोग हुआ है। लंका में इस पर महाविहार के वाचिस्सर महासामी (13वीं शती) तथा सारिपुत्र के शिष्य सुमंगल ने टीकाएं लिखी हैं। लंका की परम्परानुसार इन्होंने बुद्धवंश पर मधुरात्थविलासिनी टीका तथा जिनालंकार नामक ग्रन्थ लिखा। मधुरात्थ॰ में बुद्ध के चौबीस पूर्वजन्मों (पारमिताओं का अभ्यास करते हुए) की कथाएं हैं। जिनालंकार 250 श्लोकों में बुद्ध के जीवन की कथा है। पूजावलिया (13वीं शती में लिखे गये ग्रन्थ) के अनुसार इन्होंने बुद्धवंशाट्ठकथा भी लिखा थी। समकालीन आचार्य धम्मपाल ने 14 ग्रन्थ लिखे।[8] ये दक्षिण भारत के बदरतित्थ से थे। इन्होने महाविहार में ग्रन्थों का अध्ययन किया। खुद्दक–निकाय पर विशेष ग्रन्थ लिखा। बुद्धघोष के विशुद्धिमग्ग पर परमात्थमंजूषा नामक टीका तथा बुद्धघोष की निकायों पर लिखी टीकाओं पर उपटीकाएं लिखीं। बुद्धघोष और धम्मपाल की कृतियों में बहुत समानता है। धम्मपाल ने तमिल के टीका साहित्य से भी लाभ उठाया है।

ऐतिहासिक ग्रन्थ :– बौद्ध धर्म पर साहित्यिक, दार्शनिक रचनाओं के साथ–साथ लंका में बौद्ध धर्म का इतिहास भी लिखा गया। दो प्रमुख ऐतिहासिक ग्रन्थ दीपवंश और महावश हैं दीपवंश किसी एक लेखक की रचना न होकर पीढ़ियों की रचना है। इसके कुछ भाग सम्भवतः प्रथम शती में लिखे गये।[9] 4थी शती तक यह ग्रन्थ लिखा जा चुका था। महावंश महानाम नामक थेर द्वारा लिखी 5वीं शती की रचना है। दीपवंश तथा महावंश का आधार जैसा कि उनकी भूमिका से स्पष्ट है, सिंहली में लिखी सीहल–महा–वशाट्ठकथा है। महावंश के सहायक ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं– उत्तर–महाविहार–महावंश अथवा उत्तर–विहाराट्ठकथाा, विनयाट्ठकथ, दीपवंशाट्ठकथा, सीमाकथा, महाचैत्यवंशाट्ठकथा, महाबोधिवंशकथा, सुमेधकथा, सहसव्वत्थुट्ठकथा। आज ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं परंतु शीर्षकों से ही उनकी विषयवस्तु का सहज ज्ञान होता है। महावंश लिखे जाने पर भी दीपवंश का पाठ धातुसेन ने (5वीं शती) करया था। दीपवंश का अध्ययन आगे की शतियों में भी होता रहाँ अरणयवासी धम्मकीर्ति तृतीय ने अपने ग्रन्थ सद्धम्मसंग्रह में इसको उद्धृत किया है। महाबोधिवंश 10वीं शती में लिख गया। 1300 ई॰ के लगभग इसका पराक्रमबाहु के समय सिंहली में विस्तृत संस्करण निकला। पाली साहित्य में बुद्धघोष की कृतियां प्राचीन और नये पालि साहित्य की मध्य कड़ी हैं। इनके समय सिंहली के स्थान पर पालि का प्रयोग बढ़ा। पालि–भाषा जिसका संवर्धन बुद्धघोष ने किया था। धम्मपाल, महानाम आदि प्रसिद्ध आचार्ओं द्वारा 300 वर्ष तक प्रयुक्त होती रही।

7 से 11वीं शती में अभिधम्म का अध्ययन विशेष रहाँ अनुरूद्ध ने अभिधम्मसंग्रह लिखा। तमिलों के शासन के प्रभाव से संस्कृत के अध्ययन का प्रचार और प्रसार बढ़ा। 10वीं शती के लगभग रत्नश्रीज्ञान ने संस्कृत का व्याकरण पर दो ग्रन्थ लिखे– चन्द्रगोमि–व्याकरण–पंजिका और शब्दार्थ–चिन्ता। संस्कृत के

प्रभाव के साथ ही साथ धर्मेतर विषयों में रूचि बढ़ी। विजयबाहु ने तमिलों पर विजय प्राप्त कर देश को स्वतंत्र कराया। राजा स्वयं विद्वान् था। उसने धम्मसंगनी का संहली में अनुवाद किया। (परन्तु यह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं)। विजयबाहु विद्वानों का आदर करता था। इसके समय देश में बहुत से धुरन्धर संस्कृतज्ञ थे। महाकस्सप इस युग के प्रथित विद्वान् हैं। इन्होंने समन्तपासादिका पर सिंहली में ग्रन्थ लिखा संस्कृत चान्द्र व्याकरण के आधार पर बालावबोधन और अभिधम्म संग्रह पर पोरणटीका लिखी। इन्हीं के समकालीन थेर मोग्गल्लान ने पालि व्याकरण लिखा यह महत्वपूर्ण है। इस समय तक पालि लेखकों के लिए कच्चायन व्याकरण ही प्रमुख ग्रन्थ था। 1165 ई० में राहुल ने मोग्गल्लान व्याकरण पर पंजिका प्रदीप टीका लिखी। संसकृत अमरकोष की शैली पर ही मोग्गलान थेर ने पालि कोष अभिधानप्पदीपिका ग्रन्थ लिखा। शीर्ष के अनुसार यह संज्ञाओं का प्रदीप है। यह देव, मानुष्य और नागलोक की वस्तुओं के नाम देता है।

पराक्रमबाहु का समय लंका के साहित्य में विशेष है।[10] प्रसिद्ध विद्वान् सारिपुत्त ने संस्कृत का संक्षिप्त व्याकरण पदावतार लिखा। इन्होंने राजा के आग्रह पर विनयपिटक पर विनयसंग्रह[11] नामक ग्रन्थ लिखा। इनकी प्रसिद्धि बुद्धघोषरचित समन्तपासादिका पर सारात्थदीपनी नामक उपटीका के कारण है। इस ग्रन्थ की पालि पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। इन्होंने बुद्धघोष की मनोरथपूरणी (अंगुत्तनिकाय पर टीका) पर सारात्थमंजूषा और पपंचसूदनी (मझिमनिकाय की टीका) पर लीनात्थप्पकासिनी उपटीकाएं लिखीं।

लंका और बर्मा के सम्बन्ध बढ़ रहे थे। कई बर्मा के थेर अपने शिष्य चपट (=स्धम्मजोतिपाल) के साथ महाविहार आये और उन्होंने लंकासंघ में उपसम्पदा ग्रहण की। चपटने लंका में अभिधम्मात्थसंग्रह पर संखेपवण्णना नौ अध्यायों में लिखी। सारिपुत्त के शिष्य संघरक्खित व्याकरण छन्दोलंकार के विशेष विद्वान् थे। पालि में क्रियाओं और उनके प्रयोग पर सम्बन्धचिन्ता[12] ग्रन्थ लिखा। पालि छन्दो पर वुत्तोद्य नामक ग्रन्थ संस्कृत शैली में लिखा गया है। छन्दों को मत्ता (मात्रा) और वण्ण (वर्ण) में बांटा। लेखक ने स्वयं इसका सिंहली में अनुवाद किया। बर्मा के वेपुल्लबुद्धि की टीका और सद्धम्मज्ञानलिखत वुत्तोद्यपंजिका प्रमुख टीकाएं हैं।

सारिपुत्त के शिष्य सुमंगल अभिधम्म के विशेषज्ञ थे। इन्होंने बुद्धदत्त के अभिधम्मावतार पर अभिधम्मात्थविकासिनी टीका तथा अभिधम्मात्थविशावनी ग्रन्थ लिखा। सारिपुित्त के अन्य शिष्य बुद्धनाग ने विनयाथेमंजूषा[13] टीका लिखी। सारिपुत्त के अन्य शिष्य मेघंकर (उदम्बरगिरि के) ने विनयार्थसमुच्चय सिंहली में लिखा। सारिपुत्तशिष्य वाचिस्सर के अनेक टीका ग्रन्थ हैं और मूल ग्रन्थ अभिधम्म पर रूपारूपविभाग है। इन्होंने विहार की सीमा और तत्सम्बन्धी धार्मिक उत्सवों पर सीमालंकार लिखा। लंका के साहित्य में दो वाचिस्सर मिलते हैं। दोनों ही 10वीं शती के उत्तरार्ध में थोड़े से अन्तर से हुए। ज्येष्ठ वाचिस्सर सारिपुत्त के समकालीन थे और ये अभिधम्म और विनय के आचार्य थे। छोटे वाचिस्सर सारिपुत्त के सबसे छोटे शिरू थे ओर व्याकरणाचार्य थे। इन्होंने सारिपुत्त के प्रमुख शिष्य संघरक्षित के ग्रन्थों पर टीकाएं लिखीं– सम्बन्धचिन्ता टीका, सुबोधालंकार टीका और वुत्तोद्यविवरण। इनका एक अन्य ग्रन्थ मोग्गलान व्याकरणटीका है। थूपवंश के खेदक इन्हीं को कहा जाता है। इनके समकालीन विमलबुद्धि नामक थेर ने संक्षिप्त पालि व्याकरण पद्साधन लिखा। वनरत्न आनन्द ने इसका सिंहली अनुवाद किया और श्री राहुल ने (15वी शती में) बुद्धिप्पसादिनी टीका लिखी। विजयबाहु तृतीय के समय धर्म्मकर्ति ने डाथावंश दन्तधातु का इतिहास लिखा। लेखक के अनुसार उनका यह ग्रन्थ दीपभाषा (सिंहली) में लिखे दलाडवंश पर आधृत है डाथावंश पालि साहित्य की अमूल्य निधियों में से है। धर्म्मकीर्ति का दूसरा प्रमुख ग्रंथ लंका का बुद्धधर्म का इतिहास चूलवंश है जो महावंश का भाग है। इस गन्थ में स्पष्ट है कि लेखक कौटिल्य के अर्थशास्त्र और कालिदास की कृतियों से परिचित था। विजयबाहु का ज्येष्ठ पुत्र पराक्रमबाहु द्वितीय (1236 से 1271 ई०) अपनी विद्वता के कारण कलिकाल–साहित्य–सर्वज्ञपण्डित के नाम से प्रथित था।

13वीं शती में ही पंचपरिवेण अधिपति ने वैद्यक पर पालि में भेसज्यमंजूषा लिखी। 14वीं शती में इस ग्रन्थ के आधार पर योगरत्नाकर नामक दूसरा वैद्यक ग्रन्थ लिखा गया। पगन् के 1442 ई० के अभिलेख में मेसज्यमंजूषा का उल्लेख है। 18वीं शती में सरणंकर संघराज ने इसका सिंहली में अनुवाद किया। थूपवंश में लंका के थूपों का वर्णन है। इसमें 16 अध्यय हैं जिसमें से 2 अध्याय धुत्तगामनी द्वारा अनुराधपुर में महाथूप

की स्थापना पर हैं। उपसंहार के अनुसार इसके लेखक वाचिस्सर हैं। लेखक ने पूर्वलिखित इतिहास ग्रन्थों में चैत्यवंशाट्ठकथा, जातकनिदानकथा, समन्तपासादिका, महावंश और महावंशटीका का उल्लेख किया है। थूपवंश की भाषा संस्कृतनिष्ठ पालि हैं। सिंहली में सकलविद्याचक्रवर्ती ने थूपवंश लिखा है जो पालि से अधिक विस्तृत है। ज्योतिष पर दैवज्ञकामधेनु नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय है।

अरण्यवासी सम्प्रदाय के वनरत्न आनन्द के शिष्यों का लंका के साहित्य में विशेष स्थान है। चोलीय दीपंकर बुद्धप्पिय ने कंचायन के समान ही पालि व्याकरण रूपसिद्धि और भगवान् बुद्ध पर 104 पदों में पालि कविता पज्जमधु लिखी। बर्मी व्याकरणाचार्य महायशस् ने अपने ग्रंथ कच्चायनसार में रूपसिद्धि से बहुत से उद्धरण दिये हैं। आनन्दशिष्य वेदेह ने रसवाहिनी नामक कथासंग्रह लिखा। 105 कथाओं में चालीस जम्बुद्वीप की और शेष लंका की है। 14वीं शती में संघराज धम्मकीर्त्ति ने पारमीमहासतक नामक पालि ग्रन्थ बोधिसत्त की पारमिताओं पर लिखा। इनके शिष्य और उत्तराधिकारी धर्म्मकर्ति ने निकायसंग्रह (सिंहली में) और सद्धर्मरत्नाकरय 24 अध्यायों में लिखा। इसमें 4 थे से 24वें अध्यायों में रसवाहिनी की सभी कथाएं आ गईं हैं तथा च इसमें चरियापिटक से मैत्रेयवस्तु और पद्मावती वस्तु (जिसका मूल अज्ञात) भी हैं। मेघंकर की कथाओं वाला भाग सीहलदीपवत्थु कहलाता है। बर्मा में यह पुस्तक मधुररसवाहिनी के नाम से प्रसिद्ध है।

विजयबाहुपरिवेण मे रहने वाले मेघंकर ने जिनचरित 472 श्लोकों में लिखा। प्रथम 100 श्लोकों में यह बुद्ध दीपंकर की सुमेध के रूप में जन्म की कथा है और तत्पश्चात् उन्होंने बुद्धत्व प्राप्ति के लिए दश पारमिताओं को पार किया। पराक्रमबाहु चतुर्थ (1302–1326 ई०) के समय के विद्वानों में श्री पराक्रमबाहु महाथेर ने महाबोधिवंश का 12 अध्यायों में सिंहली में अनुवाद किया। उसने मयूर के सूयशतक का भी सिंहली में अनुवाद किया। 14वीं से 18वीं शती का युग साहित्य की दृष्टि से बहुत सम्पन्न नहीं रहाँ सरणंकर के शिष्य ने पालि व्याकरण पर तीन ग्रन्थ लिखे। समास पर सुधीरमुखमण्डन, कारको परकारकपुप्फमंजरी और विशद पालि व्याकरण सद्धामाला। शृंगाररसत्नमाला नामक ग्रन्थ में आठ प्रकार के नृत्यो का वर्णन है। इससे आठ रसों श्रृंगार, हास्य, करूण, रूद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्‌भुत का वर्णन है। इसका सिंहली अनुवाद भी है।

18वीं शती में राजा कीर्तिश्री के पश्चात् राजाधिराज सिंह ने राज्यारूढ़ होते ही संघ के भिक्षुओं की सभा की। राजा स्वयं पालि, संस्कृत और सिंहली का विद्वान् था राजा ने स्वयं सिंहली में जातक लिखा जो अपनी मिठास में और कवित्व में अद्वितीय है। 1880 ई० में आचार्य विमलसार ने शासनवंशदीप और सीमालक्षणदीपनी प्रकाशित किये। 1893 ई० में सिद्धार्थ धर्मानन्द ने पालि में नीतिग्रन्थ लोकोपकार (सिंहली अनुवाद सहित) प्रकाशित किया। 20वीं शती के प्रारंभ में मेघनन्द थेर ने जिन वंशदीपनी, दो हजार पद्यों में पालि कविता, प्रकाशित की। लोक रघुवंश और कुमारसम्भव के समान महाकाव्य लिखने का इच्छुक था। इस ग्रन्थ से लेखक को बहुत सम्मान मिला। 1924 ई० में पियतिस्स नामक थेर ने 1500 पद्यों में महाकस्सपचरित लिखा।

इस पकार लंका में बड़ी संख्या में पालि और सिंहली साहित्य लिखा गया। सिंहली में जहाँ एक ओर अनेक प्रमुख महत्वपूर्ण पालिग्रन्थों का अनुवाद किया गया, वहीं अनेक मूल ग्रंथ भी रचे गये। पराक्रमबाहु द्वितीय के समय मयूरपाद थेर बुद्धपुत्त ने पूजावलिय नामक धर्मग्रन्थ लिखा। इसके अन्तिम अध्याय में लंका में बौद्धसम्प्रदाय और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। देवरक्षित जयबाहु (धर्मकीर्ति द्वितीय) ने 15वीं शती में निकायसंग्रह लिखा जो थेरवाद का भुवनैकबाहु पंचम के 15वें वर्ष 1405 ई० तक का इतिहास है। धर्मसेन का (13वीं शती) लिखा सद्धर्मरत्नावलिय धम्मपद की शिक्षाओं को चरितार्थ करनेवाली बौद्ध कथाओं का वृहद संग्रह है। धर्मकीर्ति द्वितीय के शिष्य विमलकीर्ति ने बौद्ध धर्म पर सद्धर्मरत्नाकरण्य नामक ग्रन्थ लिखा। सिंहली साहित्य की धार्मिक कविताएं भक्तों का आनन्दवर्धन करती थी। पराक्रमबाहु द्वितीय द्वारा लिखी गई। 10वीं शती में धम्मपदाट्ठकथा पर धम्पियाटुवागटपद लिखा गया। पराक्रमबाहु चतुर्थ के समय पालि जातकाटकथा की 550 जातक्कथाओं का सिंहली में पन्सियपनस्जातकपोत नाम से अनुवाद हुआ। परम्परानुसार राजा ने स्वयं वह ग्रन्थ लिखा। दूसरी परम्परा में इसे राज्याश्रय में मेघंकर द्वारा लिखित माना गया है। शराजातक और मखदेवजातक पर भी सिंहली में ग्रन्थ लिखे गये।

कव्सिलुमिण कुसजातक की कथा है। 1610 ई० में इस जातक पर बृहद् ग्रन्थ अलगियवन्नमोहोत्ताल लिखित कुसजातक काव्य है। श्री राहुल के (15वीं शती) काव्यशेखरय[14] में सत्तुभस्तजातक की कथा है। भुवनैकबाहु चतुर्थ के समय लिखा बुद्धगुणालंकारय (बुद्धगुणांकार) आदि काव्यग्रन्थ जातकों पर आधृत स्तुतिकाव्य हैं। श्री राहुल जी सिंहली के सर्वोच्च रचयिताओ में से हैं। 15वीं शती सिंहली साहित्य का सुवर्णयुग है। राहुलशिष्य ने सिंहली का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य गुत्तिलकाव्य (जातक संख्या 243) लिखा। कालिदास के मेघदूत के अनुसरण पर कई सन्देशकाव्य सिंहली में रचे गये। इनमें संदेशवाहक कोई पक्षी होता है। उदाहरणार्थ कुछ इस प्रकार है– मयूरसन्देशय (1389–90 ई०) तिसरसन्देशय (तिसर=हंस 15वीं शती के आरम्भ में), हंससन्देशय (1420 ई०), गिरासन्देशय (गिरा=तोता), श्री राहुललिखित परविसन्देशय (परवि=dore), कोवुलसन्देशय (कोवुल–कोयल), शाललिहिणिसदेशय आदि।[15] पराक्रमबाहु द्वितीय के मंत्री की प्रेरणा से सिंहली का व्याकरण लिखा गया। सीदतसंगराव (सिंद्धांतसंग्रह)। इस ग्रन्थ की रचना में केवल संस्कृत का ही प्रभाव नहीं तमिल का भी प्रभाव है।[16] 1410 ई० में लिखा गया समानाथक शब्दों का कोष पियुममल (कमलों की माला) संस्कृत कोषों का स्मरण दिलाता है। पराक्रमबाहु षष्ठ के रूवन्मल (रत्नों की माला) संस्कृत अमरकोष के आदर्श पर, और नल्लूरूतुन–मिणि ने नामावलिय कोष लिखे। पालि कोष अभधानप्पदीपिका भी अमरकोष के आदर्श पर लिखा ग्रन्थ है। मयूरपाद परिवेण के अध्यक्ष ने वैद्यक पर योगाणव और योगरत्नाकर ग्रन्थ लिखे।

लंका की धर्मेतिहास लिखने की परम्परा से सिंहली भाषा में अनेक ग्रन्थ रत्नों का प्रणयन हुआ। महावंश पर टीका वंशात्थप्पकासिनी (1000 से 1250 ई० के बीच) लिखी गई। किन्तु निःसन्देह दीपवंश और महावंश में उल्लिखित सीहलाट्ठकथा एलु में लिखे गए प्राचीनतम ग्रन्थों में से है। विनयपिटक पर बुद्धघोष ने अपने समन्तपासादिक टीका में इस ग्रन्थ का प्रयोग किया है। इसी प्रकार दसवीं शती के अन्त में डाथरनाग ने किसी पूर्वलिखित एलु ग्रन्थ के आधर पर महाबोधिवश लिखा। 1300 ई० में इस पालिग्रन्थ का विल्गमूल महाथेर ने सिंहली में अनुवाद किया और 18वीं शती में संघराज सरणंकर ने इस पर टीका लिखी। दाढ़धातुवंश में लेखक धर्मकीर्ति चतुर्थ ने अपने ग्रन्थ में निर्देश किया है कि यह रचना एलु में लिखे दलडावंशय का अनुवाद है। आधुनिक सिंहली में दाढ़धातु पर दलडसिरित और इस धातु के उत्सव पर (14वी शती) में रामपराक्रमबाहु द्वारा सिंहली में डाथधातुचरित उल्लेखनीय है। सम्भवतः केशधातुवंश भी मूलतः एलु में लिखा गया था। अब इसका पालि ग्रन्थ ही उपलब्ध है। इस प्रकार लंका के भिक्षुओं में साहित्यिक परम्परा का उत्कर्ष रहाँ सिंहली और पालि में लिखा गया लंका का धार्मिक साहित्य अत्यन्त सम्पन्न एवं समृद्ध है।

संदर्भ सूची :–

1. गुणरतन, पोतुवित्र, बृहत्तर भारत में ब्राह्मी लिपि, शोधग्रन्थ, चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय, 1959।
2. मलालशेखर, जी. पी., पालि लिट्रेचर ऑफ सिलोन, पृ. 43।
3. अधिकारम, डब्ल्यू., ई., अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म, पृत्र 76।
4. पिल्लै, के. कनपथि के दो लेख 1. सिलोन्स कॉन्ट्रीब्यूशन टू तमिल लेंग्वेज एण्ड लिट्रेचर, यूनिवर्सिटी ऑफ सिलोन् रिव्यू, खण्ड 6, 217, तमिल पब्लिकेशन्स इन सिलोन, भाग–16।
5. मलालशेखर, जी.पी., पालि लिट्रेचर ऑफ सिलोन, बुद्धदत्त, ए. पी., पालि साहित्य 2 भाग, (सिंहली में), अम्बलंगोड, 1956–1957, मेण्डिस, जी. सी., पालि क्रोनिकल्स ऑफ सिलोन, यू. सि. रि., खण्ड 4 और 5 में लेख।
6. महावंश 37, 175।
7. ग्रन्थ समन्तपासादिक में लेखक ने स्पष्ट निर्देश किया है कि उन्होंने लंकाधिप श्रीनिवास के 21वें वर्ष में यह ग्रन्थ पूरा किया।
8. सिंघल, सुदर्शना देवी, भारत और एशिया के अन्य देश, पृ० 51।
9. मेण्डिस्, जी.सी., पालि क्रोनिक्ल्स ऑफ सिलोन, यू.सि.रि., खण्ड 4 पृ. 1।
10. दे, ओ. एच. और विजयशेखर, पालि एण्ड संस्कृत इन् पोलोन्नुरु पीरियेड, सिलोन हिस्टोरिकल जर्नल, खण्ड 4, पृ. 91।
11. इसके दूसरे नाम सहाविनय–संघपकरण, पालिमुत्तकविनय भी है। शासनवंश और गन्धवंश ने इसे विनयसंग्रह कहा है।
12. सिंघल, सुदर्शना देवी, भारत और एशिया के अन्य देश, पृ० 53।
13. बुद्धघोष के ग्रन्थ कुंखावितरणी पर।
14. गाइगर, वि., वही पृ. 71।
15. णोदकुम्बुर, सी. ई., सिंहलीज लिट्रेचर पृ. 183–208 और पुचिंभण्डारसन्नस्गल, सिंहली सन्देश साहित्य (सिंहली में) कोलम्बो, 1755।
16. गाइगर, वि., उपरोक्त, पृ. 75।

ꙮ★ꙮ

वानस्पतिक सम्पदा की महत्ता एवं उसके संरक्षण में अथर्ववेद की भूमिका

डॉ. उष्मा यादव*

अरण्य संस्कृति वाले इस देश में पर्यावरण के प्रति सचेत वैदिक ऋषियों ने वृक्षों को देवतुल्य मानते हुए उसके संरक्षण हेतु वानस्पतिक सम्पदा को धर्म से जोड़ा। वृक्ष प्रकृति की वह महत्त्वपूर्ण कृति है जो समस्त जीवों के सर्वांगीण व्यक्तित्त्व को प्रभावित करती है। वायुमण्डल को शुद्ध करके प्राणवायु (आक्सीजन O_2) प्रदान करने वाले वृक्ष अपने औषधीय गुणों द्वारा अनेकानेक रोगों से मानव–जीवन की रक्षा करते हैं किन्तु वर्तमान युग में मनुष्य अपनी भोग–विलासिता की तुष्टि हेतु वृक्षों का अनियंत्रित दोहन कर रहा है। पर्यावरण विरोधी क्रियाओं के परिणामस्वरूप पृथ्वी से वनों का धीरे–धीरे सफाया होता जा रहा है, जिसके कारण कार्बनडाई–ऑक्साइड पेड़ पौधों के प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में अवशोषित नहीं हो पा रही है। परिणामतः वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा बढ़ने से पृथ्वी के तापमान में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई के दुष्परिणाम सूखा, बाढ़, खाद्यान्न उत्पादन में कमी, भूस्खलन एवं भूकम्प इत्यादि के रूप में दृष्टिगत हो रहे हैं। अतएव वन संरक्षण वर्तमान में विशद् संचेतना का विषय बन चुका है।

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने वनों के संरक्षण एवं संवर्धन का सार्थक उपाय प्रस्तुत किया है। उन्होंने वृक्षों को देवस्वरूप मानते हुए उसके प्रति जनसामान्य के हृदय में अगाध श्रद्धा उत्पन्न की, जिसके कारण मनुष्य प्राकृतिक तत्त्वों की उपासना के साथ ही उसकी सुरक्षा एवं स्वच्छता की भी व्यवस्था करने लगा। अथर्ववेद में पृथ्वी को आच्छादित करके स्थित जल, वायु और वनस्पति (औषधि) इन तीनों को पर्यावरण का संघटक तत्त्व माना गया है।[1] जल तथा वायु की भाँति ही वृक्षों के बिना भी मानव जीवन असमभव है।

वर्तमान में पर्यावरणविदों की सबसे बड़ी चिन्ता वायु प्रदूषण के सन्दर्भ में है। वनों के अत्यधिक दोहन से शुद्ध वायु आज के नगरीय ही नहीं, ग्रामीण जीवन में भी अनुपलब्ध है। बड़े–बड़े कारखानों, डीजल और पेट्रोल से चालित वाहनों का धुआँ सम्पूर्ण वायु–मण्डल को प्रदूषित कर रहा है। खनिज तेल तथा कोयला जलाने से उत्पन्न कार्बन–डाई–ऑक्साइड (CO_2) तथा कार्बन–मोनो–ऑक्साइड, रेफ्रीजेरेशन प्रणाली से निसृत फ्लोरोकार्बन, वायुयानों से निसृत नाइट्रोजन के ऑक्साइड इत्यादि वायुमण्डल को दूषित कर रहे हैं।

वायुमण्डलीय पर्यावरण की शुद्धता के लिए वेदानुशीलन आवश्यक है। वैदिक ऋषि वायु के जीवनदायी तत्त्व से परिचित थे। अथर्ववेद में वायु के दो भेद बताये गये हैं, जिसमें एक वायु बल प्रदान करता है और दूसरा रोगों से रक्षा करता है।[2] इसमें प्रथम वायु 'प्राणवायु' (ऑक्सीजन) है जो श्वास द्वारा जीवनशक्ति प्रदान करता है, द्वितीय वायु का तात्पर्य 'अपान वायु' से है जो सभी दोषों को शरीर से बाहर करके रोगों से मनुष्य को सुरक्षित रखता है। इस वायु को 'भेषज्' और 'विश्व भेषज' की संज्ञा दी गयी है जो देवदूत के रूप में विश्व में विचरण करते हैं।[3] ऋग्वैदिक ऋषि ऑक्सीजन को 'अमृत' की संज्ञा प्रदान करते हुए करते हैं, ''हे वायु तुम्हारे गृह में अमृत की जो निधि स्थित है, उसके द्वारा हमारे शरीर को जीवन दो।''[4]

अथर्ववैदिक ऋषियों ने अनेक मन्त्रों में वृक्ष–संरक्षण के प्रति मानवीय संवदेना को उत्प्रेरित किया है। वृक्ष प्राण वायु के स्रोत हैं। अतएव ऋषियों ने वनस्पतियों (वृक्षों) को जीवनदायिनी माता और 'पुरुषजीवनी'[5]

***असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत) डॉ0 राम मनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, मुफ्तीगंज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश।**

की संज्ञा दी है। वनस्पतियाँ ऋषियों की चिर–सङ्गिनी थीं। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ऋषियों के द्वारा अरण्यों में किये गये आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन के प्रतिफल हैं।

वृक्ष प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया द्वारा ऑक्सीजन (O_2) का उत्सर्जन एवं कार्बन–डाई–ऑक्साइड (CO_2) का अवशोषण करके वायुमण्डल को संतुलित करते हैं। ऋषिगण वृक्षों के द्वारा सम्पादित होने वाले इस वैज्ञानिक प्रक्रिया से अवश्य ही परिचित रहे होंगे, अथर्ववेद में वनस्पतियों को 'विषदूषणीः'[6] (कार्बनडाई ऑक्साइड रूपी विष को दूर करने वाली) कहा गया है। वृक्ष महात्म्य से परिचित ऋषियों ने वृक्षों के प्रत्येक भाग को उपयोगी मानते हुए इसके संरक्षण पर बल दिया है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में मूल (जड़), अग्रभाग, मध्यभाग, पर्ण (पत्ता), पुष्प (फूल) का उल्लेख करते हुए इनकी मधुरता का वर्णन है।[7]

वायुमण्डल को शुद्ध करने वाले इन वृक्षों के चिकित्सीय गुणों से ऋषिगण भली–भाँति परिचित थे। अथर्ववेद के (8.7 एवं 11.6.14–15) औषधि सूक्तों से औषधियों के विषय में महत्त्वपर्णू तथ्य प्राप्त होते हैं। वैदिक ग्रन्थों में औषधियों के दो भेद मिलते हैं– वनस्पति तथा औषधि। वृक्षों के लिए वनस्पति तथा छोटे पौधों के लिए औषधि शब्द का प्रयोग किया गया है। वनस्पति के दो भेद– वनस्पति तथा वानस्पत्य एवं औषधि के दो भेद औषधि तथा वीरुध् है। अथर्ववेद में इन चार भेदों का उल्लेख है।[8] एक मंत्र में औषधि तथा वीरुध् के साथ तृण का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है।[9] इन वनस्पतियों का उनके गुण–धर्म के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया है। अथर्ववेद में जीवला (आयुवर्धक), नघारिषा (हानि न पहुँचाने वाली), अरुन्धती (घावों को भरने वाली), उन्नयन्ती (शक्ति प्रदान करने वाली), मधुमती (मीठी), प्रचेतस् (चेतना देने वाली), मेदिनी (पुष्टिकारक), उग्रा (तीव्र प्रभाव वाली), विषदूषणी (विषनाशक), बलासनाशनी (कफनाशक), वनस्पतियों का उल्लेख है।[10] अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के ओषधीय गुणों से परिचित मनीषियों ने उसे 'देवों का निवास–स्थान' कहा है जिसमें देवों ने अमृत के गुण वाले कूट को प्राप्त किया।[11] अमृत का तात्पर्य यहाँ भी ऑक्सीजन से समझना चाहिए क्योंकि पीपल अन्य वृक्षों की अपेक्षा अधिक मात्रा में ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है।

अथर्ववेद में अनेक औषधियों यथा– प्रतिवादियों के कण्ठ को शुष्क और वचन को असम्बद्ध करने वाली प्राशा (पाठों)[12], कुष्ठादि रोगों को दूर करने वाली पृश्निपर्णी[13], अधिपर्वत पर उगने वाली मूँज[14], उग्र गन्ध से उपद्रवी गन्धर्वों–अप्सराओं–राक्षसों तथा पिशाचों का नाश करने वाली अजश्रृंगी[15], कष्टकारक रोगों को दूर करने वाली कूट औषधि[16], मधुरभाषी बनाने वाली मधुला औषधि[17], अभिचार दोष को दूर करने वाली सत्यजित अभिचारों को सहन करने वाली सहमाना, अन्य के आक्रोश को दूर करने वाली शपथ–यावनी, बारम्बार अनेक रोगनाशिनी पुनः सरा औषधि[18],, अलसलास, नीलागल–साला[19] इत्यादि की महत्ता वर्णित है। मानव शरीर को शक्ति, पौष्टिकता, बौद्धिकता एवं मृदुता प्रदान करने वाले यव–चावल आदि का औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था, अतः इन्हें 'भेषज' कहा गया है।[20] अन्न को सदैव स्वच्छ तथा कीटाणुओं से रहित रखने का उपदेश देते हुए ऋषियों का कथन है, ''अन्न को अविष अर्थात् दूषित कीटाणुओं से बचाकर रखो।''[21] अथर्ववेद में वर्णित सैकड़ों वनस्पतियों में उदुम्बर (गूलर), लाक्षा (लाख), पलाश (ढाक), सोम, अपामार्ग (चिरचिता), कुष्ठ (कूठ), जंगिड् (अर्जुन), अजश्रृंगी, खरिद आदि औषधीय गुणों से सम्पृक्त हैं।

वर्तमान में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा भौतिक वस्तुओं के प्रति अत्यधिक स्पृहा के कारणों वनों का अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया है। वनों की कमी के कारण पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पृथ्वी 30% वनों से आच्छादित थी किन्तु 21वीं शदी में पृथ्वी की यह हरित पट्टी घट कर मात्र 14.4% रह गयी है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक वर्ष लगभग 13 हजार वर्ग किलोमीटर वन धराशायी हो रहे हैं। घटते हुए वनों के कारण हम अपनी बहुमूल्य जैव विविधता को भी खो रहे हैं। 2012 में जारी 'केरल स्टेट बायोडाइवर्सिटी' की रिपोर्ट के अनुसार यहाँ की 89 वनस्पति प्रजाति विलुप्त होने के गंभीर खतरे में है इनमें 11 वृक्ष, 39 शाक, 24 झाड़ियाँ तथा 15 लताएँ हैं।

पर्यावरण प्रदूषण का मूल कारण वृक्षों का उन्मूलन है। अतएव पर्यावरणीय सन्तुलन के लिए वृक्षों का संरक्षण अतिआवश्यक है। वन संरक्षण के लिए उस वैदिक मान्यता को आत्मसात् करने की आवश्यकता है जिसमें ऋषियों ने वनस्पतियों में अनूस्यूत चैतन्यमयी सत्ता या दैवीय शक्ति का दर्शन किया। अथर्ववेद का कथन है कि ''महत् ब्रह्म (आत्मा) की सत्ता के कारण ही वीरुध् (वनस्पतियाँ–वृक्ष) सांस लेते हैं।''[22] एक मन्त्र में कहा गया है कि परमात्मा ने वन और वनस्पतियों में मानव कल्याण के लिए बहुमूल्य उपयोगी तत्त्व रखे हैं।[23] ऋषियों ने 'वृक्षों को मित्रवत्'[24] मानते हुए उनके संरक्षण हेतु मनुष्यों को प्रोत्साहित किया है। वैदिक ऋषियों ने ऐसे शुद्ध वातावरण की परिकल्पना प्रस्तुत की है जिसमें सभी प्राणी– गौ, अश्वादि पशु एवं मनुष्य सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।[25] यह सुखद संकल्पना तभी सार्थक हो सकती है जब हम अथर्ववेद के इस निर्देश का पालन करें, ''सौ हाथों से लो और हजारों हाथों से दान करो।''[26] वनों का दोहन करते समय उसकी पूर्ति के लिए अधिकाधिक वृक्षारोपण करना चाहिए। वन मनुष्य की अनमोल धरोहर है। आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राकृतिक नियमों के अनुसार आचरण करते हुए इस अमूल्य धरोहर के प्रति जागरूक बनें।

संदर्भ सूची :–

1. अथर्ववेद 17.1.17,त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरुपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।/आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।
2. अ0वे0 4.13.2, द्वाषिमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।/दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः।।
3. अ0वे0 4.13.3, त्वं हि विश्वभेषज देवानां इत ईयसे।
4. ऋ0वे0 10.186.3, यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे।
5. अ0वे0 8.7.4, वीरुधः.......पुरुषजीवनीः।
6. अ0वे0 8.7.10, उग्रा या विषदूषणीः ....ओषधीः।
7. अ0वे0 8.7.12, मधुन्मूलम्, अग्रम्, मध्यम्, पर्णम्, पुष्पम्।
8. अ0वे0 8.8.14, वनस्पतीन् वानस्पत्यान् औषधीरुतः वीरुधः।
9. अ0वे0 11.7.21, ओषधयो वीरुधस्तृणा।
10. अ0वे0 8.7.6 से 10, जीवलां नघारिषां...............अरुन्धतीम् उन्नयन्तीम्...।/उग्रा या विषदूषणीः.........बलासनाशनी।
11. अ0वे0 5.4.3, अश्वत्थो देव सदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। / तननामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वधत।।
12. अ0वे0 2.27, प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे।
13. अ0वे0 2.25.3, गर्भादं कठवं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च।
14. अ0वे0 2.3,
15. अ0वे0 4.37.2, त्वया वयमप्सरसो गंधर्वाश्चातयामहे।/अजशृंग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय।।
16. अ0वे0 5.4 एवं 19.39
17. अ0वे0 5.15
18. अ0वे0 4.17.2, सत्यजितं शपययावनीं सहमानां पुनः सराम्।/सर्वाः समध्वयोषधीरितो नः पारयादिति।।
19. अ0वे0 6.16.4, आलसालासि पूर्वा सिलाजालास्युत्तरा। नीलागलसाला।।
20. अ0वे0 8.7.20, व्रीहिर्यवश्च भेषजौ।
21. अ0वे0 8.2.19 यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि।
22. अ0वे0 1.32.1, महद्ब्रह्म................येन प्राणन्ति वीरुधः।
23. अ0वे0 2.76.1, वने न वा यो न्यधायि चाकम्।
24. अ0वे0 6.125.1 वनस्पते.................अस्मत् सखा।
25. अ0वे0 8.2.25, सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।/यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम्।।
26. अ0वे0 3.24.5, शतहस्त समाहार सहस्रहस्त संकिर।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1. अथर्ववेद– पं0 दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, 2001
2. अथर्ववेद– पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक– संस्कृति संस्थान बरेली, संस्करण–2007 (भाग 1 और भाग 2)
3. वेद व विज्ञान– स्वामी प्रत्यागात्मानन्द सरस्वती, अनुवादिका– डॉ0 उर्मिला शर्मा, प्रकाशक– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004
4. वेदों में विज्ञान– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक– विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही), 2004
5. पर्यावरण अध्ययन– डॉ0 दयाश त्रिपाठी, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पुनर्मुद्रण–2007
6. वेद क्या कहते हैं ?– अभिलाषदास, प्रकाशक– कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद, 2010 ई0।

अमृता प्रीतम और बसंत कुमार की कहानियाँ

(कथ्य एवं शैलीगत संदर्भ)

डॉ. पठान रहीम खान*

प्रस्तावना :– हिंदी के मुस्लिम कथाकारों ने जिस प्रकार मुस्लिम समाज की वास्तविकता को अपनी कहानियों के माध्यम से रेखांकित किया है, उसी तरह हिंदी के गैर–मुस्लिम कथाकार भी अपनी कहानियों में मुस्लिम समाज की हर समस्या को रेखांकित किया है। खासकर स्वतंत्रता के पूर्व और बाद के अनेक लेखकों ने अपने कथा–साहित्य में मुस्लिम–समाज का जन–जीवन का चित्रण किया। जैसेरू प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी आदि। इक्कीसवीं सदी में भी अनेक गैर–मुस्लिम कथाकारों ने मुस्लिम समाज की सामाजिक, पारिवारिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ, सांस्कृतिक एकता और सांप्रदायिक सद्भावना का यथार्थपूर्ण चित्रण अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया।

मूल शब्द :– अंतर्जातीय विवाह, आर्थिक स्थिति, सदुपयोग, मुसीबतें, यथार्थता, सामाजिक भेद–भाव, साम्प्रदायिक दंगें, सांस्कृतिक एकता और सांप्रदायिक सद्भावना आदि।

कथ्यगत संदर्भ :– इक्कीसवीं सदी में आज भी हमारे समाज में अंतर्जातीय विवाह को महत्व नहीं दिया जाता है, बल्कि उसका विरोध ही किया जाता है। समाज में यौवन अवस्था में लड़का–लड़की में प्रेम होना स्वाभाविक ही है। प्रेम जाति–धर्म नहीं देखता है। चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम दोनों में प्रेम होना स्वाभाविक है। लेकिन आज भी मुस्लिम समाज में प्रेम विवाह को मान्यता नहीं है। अंतर्जातीय विवाह के लिए समाज में नियम–कानून भी बने हैं। परन्तु इसको सम्पूर्ण रूप से मान्यता नहीं मिली है। इसका सही चित्रण अमृता प्रीतम की 'न जाने कौन रंग रे' कहानी में इसकी वास्तविकता को स्पष्ट किया गया है। जैसे कि– "उस रात नानी ने मेरे पास बैठकर मुझे बताया कि– मेरी माँ को एक युसूफ नाम का लड़का बहुत अच्छा लगता था और मेरी नानी ने सोच में गोता खाकर मुझे यह भी बताया कि– खुदा ने उसे शक्ल भी युसूफ की ही दी थी और हलीमी भी। "पर न जात मिलती थी न धर्म। मैं किस दरवाजे से उसे अंदर लाती एक बार मैंने उसे पिछले दरवाजे से अंदर आते हुए देखा, तो मैंने बेटी को अकेले में बैठकर समझा दिया कि– औरत का पाप फूल की तरह होता है, जो पानी में डूबता नहीं, बल्कि तैर कर मुँह से बोलता है। मर्दों का क्या हैदृ उनके पाप तो पत्थरों की तरह पानी में डूब जाते हैं, किसी को कानो कान खबर नहीं लगती। मैंने बेटी को बाँधकर उसका विवाह कर दिया।"[1] आज समाज में पुरुष एवं नारी में समानता नहीं देखा जा रहा है। आज भी माता–पिता प्रेम विवाह को इजाजत नहीं देते हैं। औरतों को सिर्फ घर के चार दिवार के अन्दर रखा जाता है। कुछ गलती यदि लड़कों से हो जाती है, तो उसे तुरंत माफ कर दिया जाता है। परन्तु यदि कोई लड़की गलती करती है, तो उसे सारा जीवन कोसते रहते हैं।

इस प्रकार भारतीय समाज में अंतर्जातीय विवाह को महत्व न देते हुए, वे अपने ही धर्म के लड़के से लड़की की शादी करवाते हैं। भले ही उनकी मृत्यु हो जाए। इस संबंध में लेखिका कहती है किदृ "मरी हुई का चेहरा देखने के लिए एक बार वह भी आया बेचारा। पिछला दरवाजा खटखटाने लगा। मैं क्या करती? जात नहीं मिलती थी, धर्म नहीं मिलता था, पर किस दिल से मैं उसे रोक देती। अंदर आकर मरी हुई का चेहरा देख गया और फिर उन्हीं पैरों उसी रास्ते लौट गया। मेरी बेटी की किस्मत! जो आगे के दरवाजे से आया था, वह भी चला गया और जो पीछे के दरवाजे से आया था, वह भी चला गया।"[2] इस प्रकार इस कहानी में अंतर्जातीय प्रेम विवाह के बारे में चित्रण किया गया है। आज कई खबरें हम देखते हैं कि–

***डी.लिट् असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, गच्चीबौली, हैदराबाद–500032।**

घरवाले प्रेम विवाह के लिए राजी नहीं होते है, तो लड़का या लड़की आत्महत्या कर लेते हैं। फिर भी ऐसे अनेक समसयाएँ बार–बार हमारे सामने आकर खडी हो जाती हैं।

मुस्लिम समाज का निम्न वर्ग अपने परिवार की जीविका चलाने हेतु हर तरह की मेहनत करता है। यहाँ तक कि– वे खाली समय का सदुपयोग करते हुए, जो काम मिले, वे करते रहते हैं। बसंत कुमार की 'सौगात' कहानी में बसंत कुमार ने युसूफ के माध्यम से मुस्लिम समाज की निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति को दर्शाया है। इस कहानी में युसूफ स्कूल में पिउन का काम करता है और खाली समय में बीड़ियाँ बनाता है। इस संबंध में युसूफ सईदा से कहता है किदृ "समय निकालकर बीड़ियाँ बना लेता हूँ और नुक्कड़ वाले मनसुख की दूकान पर रख आता हूँ। समझी न, ऊपर की आमदानी, युसूफ फिर मुस्कुरा पड़ा था।"[3] इस प्रकार मुस्लिम समाज का निम्न वर्ग अपनी आमदानी बढ़ाने के लिए, जो काम मिले, वह करता रहता है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार यह कहना चाहता है कि– "समय का सदुपयोग कीजिए। आलसी मत बनिए। जितना परिश्रम करोगी उसका फल निश्चित मिलेगा"।

मुस्लिम समाज में निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति काफी दयनीय है। इस लिए मुस्लिम कहानीकारों के साथ–साथ, गैर–मुस्लिम कहानीकारों ने भी मुस्लिम समाज का यथार्थपूर्ण चित्रण अपनी कहानियों में किया है। मुस्लिम समाज में परिवार की जिम्मेदारी घर की महिलाएँ भी उठाती है। वे मेहनत या मजदूरी करके अपने घर की जिम्मेदारी निभाती हैं। कई महिलाएँ सिलोई–कड़ाई, घर काम, मजदूरी, नौकरी करके आर्थिक जिम्मेदारी उठाती है और परिवार का पालन–पोषण करती है। जैसे– सईदाबी सिलाई का काम करके अपना और अपने बेटे का गुजारा करती है। इसका सही चित्रण बसंत कुमार का "सौगात" कहानी में चित्रण किया गया है। जैसे कि– "उसी दीवार से सटे–सटे सतरंगी कतरनों के बीच बैठी सईदाबी सिलाई कर रही थी, तभी खट की आवाज के साथ मशीन रुक गई। सईदाबी ने इधर–उधर देखा, तो मशीन के ऊपर लगी धागे की अंटी खत्म हो गई थी। उसने अगल–बगल बिखरे कपड़ों तथा कतरनों के बीच से अपना चश्मा निकाल कर पहन लिया और बुदबुदाती हुई उठी, 'पता नहीं लाल धागा है भी या नहीं?"[4] इस प्रकार मुस्लिम समाज की महिलाएं मेहनत से कपडे की सिलाई करके अपना गुजारा करती है। जैसे कि "सुबह सूरज उगा नहीं कि– सईदाबी ने बचे हुए कपड़ों की सिलाई फिर शुरू कर दी।"[5] इस प्रकार मेहनत करने के बाद भी घर में आर्थिक अभाव बना रहता है। महिलाएं भी किसी से कम नहीं है। उन्होंने अपने आर्थिक हालातों को देख कर कार्य करने पर उतर आते हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखक समाज को यह दिखाने की कोशिश करता है कि– 'आजकल की महिलाएं सिर्फ घर का काम नहीं, बाहार का काम करके भी अपनी आर्थिक स्थिति को सृदुढ बना सकती हैं'।

आज भी मुस्लिम समाज का बहुत बड़ा हिस्सा आर्थिक अभाव में जी रहा है। यहाँ तक कि– वर्ष में एक बार आने वाला ईद का त्यौहार भी अभाव में ही गुजर जाता है। उनके यहाँ कपडे से लेकर खाने तक को कुछ नहीं रहता है। बसंत कुमार की "सौगात" कहानी में यह स्पष्ट किया गया है कि– "कल ईद है न बेटा। सबों को कपड़े चाहिए ही," सईदाबी की बातें सुन नजीर का ध्यान रस्सी पर टंगी, अपनी कमीज पर चला गया। यकीनन उसे सईदाबी ने भी महसूस किया, किन्तु वह कुछ बोली नहीं, दोनों के बीच की चुप्पी एक दूसरे से नजर चुराती रही।"[6] इस प्रकार आर्थिक अभाव के कारण अपनी खुशियाँ भी भीतर ही दब कर रह जाती हैं। फिर भी माँ की ममता उभर कर आती है और अपने बेटे के लिए ईद पर सौगात देने के लिए साल भर बचा–बचाकर जमा की गई रकम से सदरी–टोपी दिला देती है। यहाँ पर यह स्पष्ट है कि– माता–पिता के लिए बच्चों की खुशियाँ ही सब कुछ होती है। इसलिए माता–पिता अपने बच्चों को आर्थिक संकट के दौर में भी खुश रखने की कोशिश करते हैं और बच्चे भी अपने माता–पिता की तड़प को समझकर, अपने आप से समझौता कर लेते हैं। यही जीवन जीने की समझदारी है।

आज भी मुस्लिम समाज का निम्न वर्गीय समाज आर्थिक अभाव के कारण कई मुसीबतों का सामना कर रहा है। चाहे घर में अनाज न हो, बीमारी का इलाज कराने के लिए रुपये न हो, चाहे अच्छे कपडे

पहनने को न हो, यह निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की आर्थिक अभाव की समस्या है। वह वर्ग आज भी इन समस्याओं से दूर नहीं हो सका। वे आज भी छोटी–छोटी जरूरतों को पूरा करने के लिए परिवार में एक–दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। अपनी मेहनत की कमाई के लिए बार–बार दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में मुस्लिम समाज की आर्थिक अभाव की जिंदगी को रेखांकित किया गया है। इस कहानी में नसीर के परिवार की आर्थिक अभाव में जीने का चित्रण है। उसका लड़का बीमार है। उसके इलाज के लिए भी पैसे नहीं है। वह लकड़ी के खिलौने बनाकर बेचता है। वही उसका आर्थिक सहारा है। लेकिन खिलौने न बिकने के वजह से, परिवार पर आर्थिक संकट आ पड़ता है। नसीर की पत्नी जोहरा चाहती है कि– नसीर और अजहर के बीच खिलौने खरीदने की बात पक्की हो जाए, तो उस पेशगी की रक्कम मिल जाए, उससे अपने पोते खालिद को पटना ले जाकर इलाज कर सके। जैसे कि "उसे लग रहा था कि– बाहर बात बन जाती तो अच्छा था। कुछ पैसे हाथ में आते, तो खालिद को पटना ले जाती, 'इलाज तो कराना ही है, आगे खुदा मालिक,"[7] इस प्रकार मुस्लिम समाज का निम्न वर्ग आज भी पायी–पायी के लिए मोहताज होता जा रहा है। इस यथार्थ को इस कहानी में नसीर के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। नसीर को मेले का इंतजार था, अब उसके आमदनी का सहारा मेला ही था। जैसे कि– "मेले का दिन करीब आ रहा था और करीब आ रहे थे जोहरा के उम्मीदों के दिन। उसने सोच रखा था, मेले के दूसरे दिन ही वह खालिद को, लेकर पटना जाएगी और खूब नामी डॉक्टर को दिखाएगी।"[8] इस प्रकार आज भी निम्नवर्ग समाज उम्मीदों पर ही जी रहा है। उम्मीदें ही उनकी जीवन जीने का सहारा है।

स्त्री अपने पारिवारिक जीवन में सौतन या अन्य स्त्री को कभी बरदास्त नहीं कर सकती है। इस वास्तविकता को अमृता प्रीतम की 'शाह की कंजरी' कहानी में स्पष्ट किया गया है। जैसे कि– "शाहनी ने एक दिन मोहरोंवाले ट्रक को ताला लगाते हुए शाह से कहा था कि– "उसे चाहे होटल में रखो और चाहे उसे ताजमहल बनवा दो, पर बाहर की बला बाहर ही रखना, उसे मेरे घर न लाना। मैं उसके माथे नहीं लगूंगी !"[9] इस प्रकार एक स्त्री अपने पारिवारिक जीवन एवं अपने घर में किसी दूसरी औरत या सौतन को बरदास्त नहीं कर सकती है। वह कभी नहीं चाहेंगी कि– उसके पति के जीवन में कोई दूसरी औरत हो और उसके प्रेमे को बांटलों। इस प्रकार इस कहानी में स्त्री के पारिवारिक जीवन के यथार्थ को स्पष्ट किया गया है।

वर्तमान समय में मुस्लिम समाज की यथार्थपूर्ण घटनाओं का वास्तविक चित्रण गैर–मुस्लिम कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक भेदभाव, धार्मिक द्वेष, सांप्रदायिक दंगों के साथदृसाथ, सामाजिक एकता का सन्देश, सामाजिक एवं सांप्रदायिक सद्भावना आदि का भी यथार्थपूर्ण चित्रण किया है।

शैलीगत संदर्भ :– अमृता प्रीतम की 'न जाने कौन रंग रे' कहानी में सईदाबी अपने बचपन का हादसा का चित्रण पूर्वदिप्ती शैली में कहती है। जैसे कि "मेरी नानी ने मुझे बताया था कि– विवाह के पहले फेरे में ही मेरी माँ का रुख नखुना गया था। दूसरे फेरे में मुझे कोख में ले लौटी। कोख में मुझे ले आयी और हड्डियों में ताप। बस, वह कहीं नहीं गयी। मुझे जन्म देने के बाद उसका पूरा चालीसा भी नहीं कटा। खाट से एक दिन उसे तब उतारा गया जब मेरा जन्म हुआ था। फिर चालीसे के अन्दर दूसरी बार उस दिन उतारी गयी, जब उसकी साँस उखड गयी।"[10] इस प्रकार पूर्वदिप्ती शैली में प्रयोग किया गया है।

बसंत कुमार की 'सौगात' कहानी में एक दिन सईदाबी को अपने गुजरे हुए दिन याद आ जाते हैं। जैसे कि "यही है हमारा घर' कोठरी में बक्सा रखते हुए युसूफ ने कहा था और छुई–मुई सईदा को देखकर मुस्करा पड़ा था। सईदा को लगा था, ऐसी मुस्कुराहट पर अपनी सौ जाने कुर्बान कर दूँ। किन्तु सकुचाती हुई सईदा सिर्फ इतना ही पूछ पाई थी, और आपका काम?'

अपने में थोडा फैलाते हुए युसूफ ने जवाब दिया था कि– "तुम्हारा शौहर स्कूल का पिउन है। मेरी घंटी की इंतजारी तो सभी मास्टरों को रहती है। बजी नहीं की छुट्टी।' वह खिल खिलाकर हंस पड़ा था।"[11] इस प्रकार इस कहानी में पूर्वदिप्ती शैली में प्रयोग किया गया है।

इस कहानी में युसूफ सईदा से अपने शहर के बारे में पूर्वदिप्ती शैली बताता है कि "अरी, मेरे शहर में क्या नहीं है? शेरशाह का मकबरा है और एक लम्बी सड़क है...जी.टी. रोड, जिसे शेर शाह ने ही बनवाया था, मेरे पैदा होने से पहले, बहुत पहले। अब उस पर सिर्फ गाड़ियां ही चलती हैं, लोग तो उसके बगल–बगल चलते हैं, किसिम–किसिम की गाड़ियां और ट्रकें दिन रात दौड़ती रहती है। इधर से उधर उधर से इधर ... धडाधड ...।"[12] इस प्रकार लेखक ने इतिहास को दोहराते हुए, वर्तमान परिप्रेक्ष्य को पूर्वदिप्ती शैली में प्रयोग किया है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में बस हादसे में जोहरा के बहु–बेटे दोनों का देहाँत हो जाता है। इसका सही चित्रण पूर्वदिप्ती शैली में हुआ है। जैसे किदृ "दो बरस पहले उसका बेटा अपनी नौकरी पर जा रहा था। साथ में उसकी बीवी भी थी। 'पहले वहाँ अपना घर जमा लो, तब खालिद को ले जाना,' जोहरा ने बेटा–बहु को रुकसत करते हुए कहा था, किन्तु खालिद को ले जाने, दोनों में से कोई वापस नहीं आया। वापस आई थीं उनकी लाशें, जो नदी में डूबी बस में अटक कर रह गई थीं। एकाएक जैसे कोई गाछ मुरझाकर सिकुड़ जाए, उस हादसे के बाद नसीर एकाएक बुढा–सा दिखने लगा था। चेहरा सिकुड़ गया था और झुर्रियाँ उस चेहरे पर परसने लगी थी।"[13] इस प्रकार इस कहानी में पूर्वदिप्ती शैली में प्रयोग किया गया है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में पुर्वदिप्ती शैली का प्रयोग किया गया है। जैसे कि "बीतते दिन के साथ जोहरा ने जमीन की तरफ देखा, तो छुप की सडक सिमट चुकी थी। मटमैली रोशनी में वह बाहर आँगन तक निकल आई। सुख रहे कपड़ो को समेट कर चूल्हे की ओर देखा। पीछे की दीवार पर कालिख पूत गई थी। बहु कितना साफ रखती थी, मिट्टी से लीप–पोत कर चिकन्न–चुनमुन, सोचते हुए जोहरा को अपनी बहु की याद आ गई।"[14] इस प्रकार पुर्वदिप्ती शैली में प्रयोग किया गया है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में दंगे का चित्रण पूर्वदिप्ती शैली में प्रयोग हुआ है। जैसे– यहाँ क्या कर रही हो, अम्मी? सुना, उधर बहुत हल्ला हो रहा है," हाफते हुए नजीर ने बाजार की ओर इशारा किया।"[15] इस प्रकार दंगा होने के पूर्व का दृश्य एवं उस समय का वातावरण चित्रित किया गया है।

बसंत कुमार की 'सौगात' कहानी मेंदंगे के बाद का दृश्य का चित्रण दृश्यात्मक शैली में चित्रण किया गया है। जैसे कि– "सईदाबी और नजीर उधर ही लपके। भानु के शरीर पर जगहदृजगह खरोचे थी और खून की लाली छिटक आई थी। होंठ के किनारे ताजे खून की लकीर–सी बन गई थी। दोनों घुटनों पर खून के साथ–साथ धूल की भी परत जमी थी। बाल मिट्टी में सने थे। जैसे वह किसी गढ़े में सिर के बल गिरा हो और फिर उठकर भागा हो। कपडे बेतरतीबी से फटे थे।"[16] इस प्रकार दृश्यात्मक शैली में इसका चित्रण किया गया है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में दृश्यात्मक शैली का चित्रण किया गया है। जैसे किदृ "बीतते दिन के साथ जोहरा ने जमीन की तरफ देखा, तो छुप की सडक सिमट चुकी थी। मटमैली रोशनी में वह बाहर आँगन तक निकल आई। सुख रहे कपडों को समेट कर चूल्हे की ओर देखा। पीछे की दीवार पर कालिख पूत गई थी। बहु कितना साफ रखती थी, मिट्टी से लीप–पोत कर चिकन्न–चुनमुन, सोचते हुए जोहरा को अपनी बहु की याद आ गई।"[17] इस प्रकार दृश्यात्मक शैली में चित्रण किया गया है।

बसंत कुमार की 'गुड्डी गाछी' कहानी में चित्रात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। जैसे कि– "जोहरा को लगा यह सौदा इतना आसान नहीं और वह टाट को झुलती छोड़ थके कदमों से पीछेकमरे में लौट गई। कमरे के अन्दर आँगन की तरफ से आ रही धूप कमरे में एक लम्बी सड़क की तरह लेटी थी।

उस पर जोहरा का पाँव पड़ते ही भक् से रोशनी आ गई, किन्तु सडक वैसी ही पड़ी हुई थी। पास में बधना औंधे मुँह खड़ा था। दूसरी ओर इस दीवार से उस दीवार तक एक मोटी रस्सी तनी थी, जिस पर मैले–कुचले कपडे बदतमीज की तरह फैले हुए थे। पाजामे की एक टांग नीचे झूल रही थी, तो दूसरी टांग रस्सी से उलझी हुई थी। कमीज की गर्दन नीचे लटक रही थी, तो उसकी बाँह किसी चादर से ऊपर ही दबी पड़ी थी।"[18] इस प्रकार इस कहानी में चित्रात्मक शैली में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :– मुस्लिम समाज की अनेक समस्याओं को मुस्लिम लेखकों ने तो प्रकट किया ही है, किन्तु साथ–साथ गैर–मुस्लिम लेखकों ने भी मुस्लिम समाज का यथार्थपूर्ण परिवेश का चित्रण किया है। वर्तमान समय में जिस प्रकार मुस्लिम विमर्श के माध्यम से मुस्लिम समाज की अनेक समस्याओं पर चिंतन हो रहा है, वह अद्वितीय है। भारतीय समाज में आज भी अंतर्जातीय विवाह को स्वीकार नहीं किया जा रहा है। मुस्लिम समाज के कुछ वर्गों में तो बिल्कुल भी नहीं हैं। इस समस्या को लेखिका अमृता प्रीतम ने 'न जाने कौन रंग रे' कहानी में चित्रित किया है। जहाँ धर्म के नाम पर लोग अपनी बेटी का जीवन बर्बाद कर देंगे, परन्तु अंतर्जातीय विवाह को स्वीकृति नहीं करेंगें। मुस्लिम समाज में अंतर्जातीय विवाह को हेय दृष्टि से देखा जा रहा है, जिसका चित्रण लेखिका ने की है। मुस्लिम समाज की समस्याओं को लेखक बसंत कुमार ने भी बहुत सूक्ष्म ढंग से परखा है। उन्होंने "सौगत" कहानी के माध्यम से मुस्लिम समाज की आर्थिक स्थिति को यथावत चित्रित किया है। मुस्लिम वर्ग के ज्यादातर लोग छोटे–मोटे घरेलु उद्योग एवं धंधों में ही लगे हुए रहते हैं, जिनसे जरूरतें भी पूरी नहीं होती है। एक सुविधापूर्ण जीवन उनके लिए स्वप्न की भाँती ही है, जिसका चित्रण गैर–मुस्लिम लेखकों ने अपनी कहानियों में बखूबी से चित्रण किया है।

संदर्भ–सूची :–

1. अमृता प्रीतम – 'न जाने कौन रंग रे' –(सत्रह कहानियाँ), पृ. सं. 81।
2. अमृता प्रीतम – 'न जाने कौन रंग रे' –(सत्रह कहानियाँ) – पृ. सं. 81।
3. बसंत कुमार – 'सौगात' –(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं.107।
4. बसंत कुमार – 'सौगात' –(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ. सं. 106।
5. बसंत कुमार – 'सौगात' –(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ. सं. 110।
6. बसंत कुमार – 'सौगात' – (सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ. सं. 110।
7. बसंत कुमार – 'गुड्डी गाछी'–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ. सं. 126।
8. बसंत कुमार – 'गुड्डी गाछी'–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ. सं. 128।
9. अमृता प्रीतम – 'शाह की कंजरी'(सत्रह कहानियाँ दृकहानी संग्रह) पृ. सं. 57।
10. अमृता प्रीतम – 'न जाने कौन रंग रे'–(सत्रह कहानियाँ), पृ.सं.80।
11. बसंत कुमार – 'सौगात–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 106।
12. बसंत कुमार – 'सौगात–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 107।
13. बसंत कुमार – 'गुड्डी गाछी–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 128।
14. बसंत कुमार 'गुड्डी गाछी'–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 127–128।
15. बसंत कुमार – 'गुड्डी गाछ–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 111।
16. बसंत कुमार – 'सौगात–(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 113।
17. बसंत कुमार – 'गुड्डी गाछी'(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं. 127–128।
18. बसंत कुमार –'गुड्डी गाछी'(सौगात और अन्य कहानियाँ), पृ.सं.125।

भाषा और भाषांतर : एक झाँकी

डॉ. रघु नाथ यादव*

वस्तुतः मनुष्य बुद्धि संपन्न, बोलनेवाला सामाजिक प्राणी है। मनुष्येतर प्राणियों के पास भी आवाजें हैं, उन आवाजों या बोलियों के जरिए वे भी अत्यंत सीमित रूप में सूचनाओं का आदान प्रदान करते हैं, परंतु उनके पास एक समुचित भाषिक व्यवस्था नहीं है। इसके विपरीत मनुष्यों के पास पारस्परिक विचार विनिमय के लिए न सिर्फ भाषिक व्यवस्थाएं हैं, अपितु उच्चरित भाषिक रूप को लिपि के सहारे लिखित/मुद्रित रूप देने की अथवा वाणी बंधन के जरिए भविष्य के लिए संरक्षित करने की भी व्यवस्था है। परिणामस्वरूप एक व्यक्ति के भाव विचार उसी समय के अनेकानेक लोगों के लिए साथ ही आनेवाले समय के लोगों के लिए भी सुलभ बन पड़े हैं। समुदित भाषिक व्यवस्था के कारण ही एक मानव पीढ़ी का ज्ञान भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित हो गया। इसलिए एक मानव पीढ़ी ने ज्ञान विज्ञान का जितना विकास किया, दूसरी पीढ़ी ने उसे और आगे बढ़ाया तीसरी पीढ़ी ने उसे और भी आगे बढ़ाया। ज्ञान विज्ञान के निरंतर विकास के साथ मानव सभ्यता भी निरंतर आगे बढ़ती गयी। अगर मनुष्य के पास समुचित भाषिक व्यवस्थाएं न होतीं, तो मानव ज्ञान विज्ञान एवं सभ्यता का विकास इतना न हो पाता, जितना कि आज तक हो पाया है। इसलिए यदि कहा जाए कि भाषा मनुष्य के लिए विधाता का अनुपम मधुमय दान है, तो शायद अत्युक्ति न होगी।

उच्चारित या कथित रूप में ही भाषा का मूल रूप है 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है– "भाम्+अङ्.+टाप्।"[1] संस्कृत 'भाष' धातु का अर्थ है– बोलना अथवा कहना। 'भाषा' शब्द का व्युत्पत्तिपरख अर्थ है– 'वह, जो बोला या कहा जाए।' किसी की सुव्यवस्थित कथन को 'भाषण' कहा जाता है। इस प्रकार अभिव्यक्त सार्थक वाक् या वाणी की भाषा है। यह भाषा मनुष्यों के लिए विचार विनिमय का सबसे प्रमुख, कारगर और सरल साधन है। इसकी कुछेक महत्वपूर्ण परिभाषाएं इस प्रकार है– Language may be defined As An Arbitrary system of vocal symbols by means of which, human being,As members ofA social group co-operateAnd interact- (En-cyclopedia Britannica) यानी, भाषा को ध्वन्यात्मक प्रतीकों की ऐसी यादृच्छिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके जरिए किसी सामाजिक समुदाय के सदस्य के रूप में मनुष्य परस्पर सहयोग एवं विचारों का आदान प्रदान करते है। "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली–भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"[2] "भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक (arbitrary) ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है, इसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हैं।"[3] "जिन ध्वनिचिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उनकी समष्टि को भाषा कहते हैं।"[4] "जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनिमय या सहयोग करते हैं, उस सादृच्छिक, रूढ़, ध्वनि संकेत की प्रणाली को भाषा करते हैं।"[5]

भाषा संबंधी पूर्वोत्त परिभाषाओं से दो प्रमुख बातें हमारे सामने आती है। पहली, भाषा मनुष्यों के लिए पारस्परिक सहयोग एवं विचार विनिमय का साधन है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य अपनी तथा दूसरों की विविध क्रियाओं से संबंधित भाव विचारों को अपने वाक् यंत्रों से उत्पन्न ध्वनि प्रतीकों की सहायता से व्यक्त करता है। वक्ता द्वारा अभिव्यक्त बातों को श्रवण यंत्र की सहायता से श्रोता ग्रहण करता है, फिर अपने वाक् यंत्रों की मदद से उत्पन्न ध्वनि संकेतों से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इस प्रकार किसी समाज के सदस्य तथा किसी संस्कृति के भागीदार के रूप में मनुष्य भाषा के माध्यम से परस्पर सहयोग एवं भाव विचारों का आदान प्रदान कर लेते हैं। दूसरी बात यह है कि भाषा ध्वनि प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है, जो मूल रुप से यादृच्छिक यानी इच्छानुसार स्वीकृत प्रणाली है। किसी मानव समुदाय द्वारा इच्छानुसार

***सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग तिनसुकिया महाविद्यालय, असम।**

स्वीकृत होने पर भी पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित होने के कारण ध्वन्यात्मक प्रतीक और अभिव्यक्ति के ढंग उस मानव समाज में रूढ़ यानी प्रसिद्ध हो जाते हैं। फलस्वरूप भाषिक व्यवहार में अव्यवस्था नहीं आती, यानी 'वक्ता कुछ कहे और श्रोता कुछ और ही समझे' वाली स्थिति नहीं बनती। एक विशेष प्रकार के फल संबंधी अवधारणा को प्रकट करने के लिए हिंदीभाषी समाज में स्वीकृत ध्वनि प्रतीक है– 'सेब' और अभिव्यक्ति की एक प्रणाली है– 'यह सेब है।' हिंदी भाषा में ऐसे अनेकानेक ध्वनि प्रतीक और अभिव्यक्ति के ढंग है, जिनके जरिए वक्ता श्रोता सुगमतापूर्वक विचारों का आदान प्रदान कर लेते हैं। सभी भाषाओं की स्थिति ऐसी ही है।

यह ध्यातव्य है कि कुत्ता, कौवा, तोता, मैना, सियार, शेर इत्यादि मनुष्येतर जीव लगभग एक–एक ढंग से आवाजें उत्पन्न करते हैं परंतु संपूर्ण मानव समाज में अनेकानेक भाषाओं का प्रचलन है 'ठांवे–ठांवे पानी बदले, ठांवे–ठांवे बानी' हिंदी भाषी समाज में प्रचलित इस लोकोक्ति के आधार पर वृहत्तर मानव समाज में व्याप्त बहुभाषिकता की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। पूर्वोत्त लोकोक्ति एक ही मूल अर्थ के साथ एक अन्य रूप में भी प्रचलित है– 'चारकोस पर पानी बदले, आठकोस पर बानी' इस कहावत का उल्लेख करते हुए संसार भर में प्रचलित भाषाओं के संदर्भ में डॉ भोलानाथ तिवारी ने लिखा है–"सोचने की बात है कि जब हर आठकोस पर भाषा में कुछ न कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है तो इतने लंबे चौड़े संसार में कितनी अधिक भाषाएं और बोलियां होंगी। गणना करने वालों ने बतलाया है कि इनकी संख्या 2796 है।"[6] डॉ० उदयनारायण तिवारी ने पूरे संसार में प्रचलित भाषाओं की संख्या के बारे में लिखा है– "उपभाषाओं अथवा बोलियों को छोड़ कर संसार की भाषाओं की संख्या दो सहस्त्र के लगभग है।"[7] विश्व की भाषाओं की कुल संख्या को लेकर चाहे मत–पार्थक्य हो, पर इतना स्पष्ट है कि विश्व का मानव समाज एक बहुभाषी समाज है।

विश्व ही क्यों, विशाल भारतीय समाज में भारोपीय, द्रविड़, तिब्बत–वर्मी, आस्ट्रिक इत्यादि भाषा परिवारों की करीब 1652 (63 अभारतीय भाषाओं सहित) भाषाएं प्रचलित है। पूरे पूर्वोत्तर में लगभग 250 भाषाओं के प्रचलित होने की बात की जाती है। असम प्रांत में ही असमिया के अलावा बोड़ो, डिमासा, तिवा (लालुंग), डेउरी (सुतीया), राभा, कार्बी (मिकिर), मिसिंग (मिरि), टाइ (अहोम), साओंताली, मुन्डा, खरिया, भूमिज, बांग्ला, नेपाली, मणिपुरी, हिंदी इत्यादि कितनी ही भाषाओं का प्रचलन है। नागालैंड जैसे छोटे से प्रांत में प्राय दो दर्जन भाषाएं बोली जाती है। इन दृष्टांतों से स्पष्ट है कि चाहे असम का हो या भारत का अथवा पूरे विश्व का मानव समाज में बहुभाषिकता या भाषिक विभिन्नता की स्थिति बनी हुई है।

भाषा अगर विचार विनिमय की शक्ति से लोगों को जोड़ती है, तो बहुभाषिकता या भाषिक विभिन्नता लोगों में अपरिचय एवं अजनबीपन की स्थिति पैदा कर देती है। मनुष्यों की भाषा जब एक थी, तब वे आपसी समझ बूझ से स्वर्ग तक पहुंचने हेतु बाबेल की मीनार बना रहे थे। कहते हैं कि ईश्वर ने उनकी भाषाएं अलग अलग बना दी, तो आपसी समझ के अभाव में लोग परस्पर सहयोग करने में अक्षम रहे और बाबेल की मीनार अधूरी रह गयी। भाषिक भिन्नता के कारण बननेवाली अपरिचय की दीवार को गिराने के लिए एक भाषा में प्रस्तुत सामग्री को दूसरी भाषा में ले जाने की कला का आविष्कार हुआ। इस कला को 'भाषांतर' या 'भाषांतरण' की आख्या प्राप्त हुई, हालांकि आज इसे 'अनुवाद' की आख्या से व्यापक रूप से जाना जाता है।

एक समाज में बसे लोगों में पारस्परिक विचार विनिमय के लिए यदि भाषा की आवश्यकता होती है, तो अलग–अलग समाजों में रहनेवाले लोगों के बीच विचारों के आदान–प्रदान के लिए 'भाषांतर' की जरूरत पड़ती है। ईश्वर ने मनुष्य को बोलने की शक्ति दी और मनुष्यों ने ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था स्वीकृत करके न सिर्फ भाषाओं के रूप खड़े किए, बल्कि एक भाषा में व्यक्त संदेश को दूसरी भाषा में ले जानेवाले तरीके का अविष्कार करके 'भाषांतर' को भी जन्म दिया। विश्व के विशाल मानव समाज को एक भाव में ग्रहण करने, वसुधैवकुटुंबकम् की भावना को चरितार्थ करने की दिशा में भाषांतर या अनुवाद यानी Translation सबसे महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभर रहा है। बिखरे हुए मानव समुदायों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का कदाचित यही साधन कदाचित यही सबसे कारगर साधन है।

यहाँ 'भाषांतर' शब्द के आशय और प्रयोग पर संक्षेप में चर्चा करना उचित होगा। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ही स्पष्ट है कि 'भाषा अन्तर' यानी, एक भाषा में प्रस्तुत सामग्री को अन्य भाषा में प्रस्तुत करना स्रोत भाषा की सामग्री को लक्ष्य भाषा में स्वरूप प्रदान करना। भाषांतर की तरह ही अन्य शब्द भी मिलते हैं, जैसे शब्दान्तर, माध्यमान्तर, प्रतीकान्तर, रूपान्तर, कालान्तर इत्यादि। कालान्तर यानी अन्य काल, रूपान्तर यानी अन्य रूप, प्रतीकान्तर यानी अन्य प्रतीक– एक प्रतीक/प्रतीक समूहों के स्थान पर दूसरे प्रतीक /प्रतीक समूहों का उपयोग। माध्यमान्तर यानी एक माध्यम के स्थान पर अन्य माध्यम का प्रयोग, जैसे सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'भिक्षुक' कविता को पढ़ने के उपरांत कोई दो अत्यंत दुबले पतले बच्चों समेत और हाथ से लकुटिया थामते हुए कंकालप्राय उदास भिखारी का चित्र बना दे, शब्दों के माध्यम से कही गयी बात को चित्र के माध्यम से अभिव्यक्त कर दे। महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के दृश्यों को सुप्रसिद्ध चित्रकार रवि वर्मा ने चित्रों के माध्यम से जो अभिव्यक्ति दी है– वह माध्यमान्तर है, शाब्दिक माध्यम के स्थान पर चित्र का माध्यम। अगर कोई किसी को कहीं से भगाने के लिए गुस्से से 'तुरंत दफा हो जाओ' कहे और अन्य कोई इसी प्रयोजन से किसी के सामने क्रोधित मुद्रा में हाथ उठाकर संकेत करें– तो यह भी माध्यमान्तर है– शाब्दिक माध्यम के स्थान पर संकेत/अंग भंगिमा का माध्यम।

शब्दान्तर है– एक शब्द या एकाधिक शब्दों के माध्यम से किसी भाषा में कही गई बात को उसी भाषा में अन्य शब्द या शब्दों के जरिए अभिव्यक्ति देना। उदाहरणस्वरूप हिंदी में 'आप आइए' कहने के पश्चात यदि कहा जाए– 'जनाब तशरीफ लाइए' अथवा 'महात्मा गांधी संपूर्ण विश्व के मुकुटविहीन सम्राट थे' कहने के बाद अगर कहा जाए– 'महात्मा गांधी तमाम दुनिया के बेताज बादशाह थे'– तो ये शब्दान्तर हुए। भाषान्तर में एक भाषा में अभिव्यक्त बातों को दूसरी भाषा में निकटतम सहज समानार्थीयों के जरिए अभिव्यक्ति दी जाती है। डॉ भोलानाथ तिवारी ने स्पष्ट रूप से कहा है– "एक भाषाओं में व्यक्त विचार को दूसरी भाषा में व्यक्त करना भाषान्तर है।"[8] परंतु कुछ लोग एक भाषा की लिखित सामग्री को दूसरी भाषा में लिखित रूप देने के कौशल को अनुवाद और एक भाषा की मौखिक सामग्री को दूसरी भाषा में मौखिक रूप देने की कला को भाषान्तर अथवा भाषान्तरण कहना चाहते हैं– "किसी भाषा के लिखित रूप को दूसरी भाषा के लिखित रूप में ही रूपांतरित करने की विधा अनुवाद है, जबकि मूल भाषा में कथित या व्यंजित भाव को लक्ष्य भाषा में मौखिक अभिव्यक्ति देने की तकनीकी को भाषान्तर कहते हैं।"[9] वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। अनुवाद और भाषान्तर शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं– यानी, जो अनुवाद है वही भाषान्तर है तथा जो भाषान्तर है वही अनुवाद है। हाँ काल के बंधन को ध्यान में रखते हुए वार्तालाप, भाषण, प्रवचन जैसी मौखिक सामग्रियों के अन्य भाषा में रूपांतरण को तत्काल अनुवाद/तत्काल भाषान्तर तथा लिखित सामग्री के रूपांतरण को कालान्तर अनुवाद/कालांतर भाषान्तर कह सकते हैं।

अनुवाद या भाषान्तर चाहे लिखित सामग्री का हो या कथित सामग्री का– यह कार्य इतना सरल नहीं है, क्योंकि प्रत्येक भाषा की निजी सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अभिव्यक्ति की अपनी भंगीमाएं होती हैकिसी भाषा की अपनी अभिव्यक्ति भंगीमाओं से ही उसका अलग अस्तित्व कायम होता है और वह भाषाओं की भीड़ में अलग पहचानी जाती है। यह जरूरी नहीं है कि किन्ही दो भाषाओं की अभिव्यक्ति व्यवस्थाएं एक जैसी हो, दोनों में अक्सर कम या ज्यादा भिन्नताएं होती है जैसा कि सैम्यूअल जॉनसन ने कहा है– "To translate is to change into Another language retaining the sense", अनुवाद या भाषान्तर में अर्थ/भाव की रक्षा करते हुए एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में रूपांतरित कर दिया जाता है। भाषाओं की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं अभिव्यक्ति की व्यवस्थाओं में भिन्नता के कारण यह रूपान्तर कार्य काफी चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इस संबंध में डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर ने लिखा है– यों हम देखते हैं कि दो भाषाएं कभी अभिन्न नहीं होती। भाषा के दो पक्ष हैं अर्थ और संरचना। संरचना के अंतर्गत व्याकरण, वाक्य–रचना आदि आते हैं। पदों का अर्थ भाषा की संस्कृतिक पृष्ठभूमि से भी संचालित होता है। शब्द व अर्थ का सहसंबंध प्रत्येक भाषा में परंपरागत या विशेष कारण पर अधिष्टित है। इसलिए एक भाषा की सामग्री का अर्थ दूसरी भाषा के समतुल्य शब्दों में प्रस्तुत करना सरल नहीं है।[10]

अनुवाद संबंधी चिंतन मनन के सुप्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों में अन्यतम यूजीन आर० नीडा ने अनुवाद के स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है– "Translating consists in producing in the receptor language the closest natural equivalent to the message of the source language, first in meaning And secondly in style." यानी, स्रोत भाषा के संदेश को, प्रथमतः अर्थ और द्वितीतः शैली की दृष्टि से निकटतम सहज समानार्थी के जरिए लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना अनुवाद/भाषान्तर है। इस प्रकार भाषान्तर मैं स्रोत भाषा की सामग्री के अर्थ/भाव और शैली (द्वितीयतः ही सही) दोनों पर ध्यान देकर लक्ष्य भाषा की समतुल्य अभीव्यक्तियों की तलाश की जाती है। स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं की सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता एवं अभिव्यक्ति की व्यवस्थाओं में अंतर के कारण ऐसी तलाश में अतिरिक्त सावधानी की जरूरत पड़ती है 'वे लोग बात कर रहे हैं'– इस वाक्य को अंग्रेजी में 'They Are doing talking' के बदले 'They Are talking' के रूप में भाषान्तरित करने पर ही अपेक्षित स्वाभाविकता आएगी। पूर्वोत्त हिंदी वाक्य को शैली की स्वाभाविकता की खातिर असमिया में 'तेओंलोक कथा करिछे' के बजाय 'तेओंलोक कथा पातिछे' के रूप में भाषान्तरित करना होगा। 'इस गिलास का पानी जूठा है'– इस वाक्य के 'जूठा' शब्द की समतुल्य अभिव्यक्ति अंग्रेजी में क्या हो? क्या हम The water of this glass is dirty /impure / polluted / defiled' कहेंगे या 'The water of this glass has been left off After being taken' कहेंगे अथवा किसी अन्य रूप में वाक्य को अभिव्यक्ति देंगे।

अनुवाद या भाषान्तरण के कार्य के संदर्भ में मूलनिष्ठता और अभीव्यक्तिगत सुंदरता के बीच संतुलन बिठाने में आनेवाली कठिनाइयों को रेखांकित करने के लिए अक्सर एक सुप्रसिद्ध पाश्चात्य कथन का हवाला दिया जाता है कि– Translation is like A woman, if beautiful not faithful, if faithful not beautiful. सुंदरता और वफादारी किसी औरत या मर्द में एकत्र होने अथवा न होने के संदर्भ में पर्याप्त बहस हो सकती है, परंतु यह सहज स्वीकार्य है कि भाषान्तरण में कथ्य एवं कथन भंगिमा की दृष्टि से मूलनिष्ठिता तथा लक्ष्य भाषा की अभिव्यक्तिक सुंदरता में ताल मेल बिठा पाना एक कष्टसाध्य कार्य है 'दिया तले अंधेरा'/'चिराग तले अंधेरा' को 'darkness beneath the earthen lamp' के रूप में अंग्रेजी में परिवर्तित नहीं कर सकते, अपितु हमें प्रयोग करना होगा– 'Near the church further from heaven', असमिया में अगर कहते हैं– बान्दरे कि जाने नारिकलर मोल', तो हिंदी में हम नहीं कह सकते– 'बन्दर क्या जाने नारियल की कीमत', बल्कि कहना होगा– 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।' अंग्रेजी के Good morning, Good evening, Good night के लिये हिंदी में क्या कहा जाय–सुप्रभात, शुभ संध्या, शुभ रात्रि या प्रातः कालीन नमस्ते, सायंकालीन नमस्ते, रात्रिकालीन नमस्ते अथवा केवल नमस्ते/नमस्कार/प्रणाम कहें।

किसी भाषा की अभिव्यक्तिक व्यवस्था के संदर्भ में ध्वनि, शब्द, पदबंध, रूप, उपवाक्य, वाक्य, प्रोक्ति, प्रतीक, बिम्ब, अलंकरण, छंद लय इत्यादि तमाम बातें आती है। स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं की अपनी–अपनी अभिव्यक्तिक व्यवस्थाएं होती है। इसलिए 'मेरा मित्र तो बिल्कुल गाय हैं'– इस वाक्य को अंग्रेजी में My friend is completely A cow' कहने के बदले कहना होगा– 'My friend is A lamp/ likeA lamb. अगर अंग्रेजी में लिखें– There is A tree in front of our school', तो हिंदी में वहाँ हमारे स्कूल के सामने एक पेड़ है' के स्थान पर 'हमारे स्कूल के सामने एक पेड़ है' लिखा जाएगा। अंग्रेजी में 'handsome boy', 'beautiful girl' कहते हैं, तो हिंदी में कहेंगे– 'सुंदर लड़का', 'सुंदर लड़की'। अंग्रेजी में कहेंगे– The train had left before we reached the station, तो हिंदी में कहा जाएगा– 'हमारे स्टेशन पहुंचने से पहले गाड़ी/रेलगाड़ी निकल चुकी थी।' इस प्रकार स्रोत भाषा की सामग्री को लक्ष्य भाषा में ले जाते समय काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है–

"एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में रूपान्तर ही अनुवाद है। इस तरह अनुवाद का कार्य है, एक (स्रोत) भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी (लक्ष्य) भाषा में व्यक्त करना, किंतु यह 'व्यक्त करना' बहुत सरल कार्य नहीं है। होता यह है कि हर भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अतः उसकी अपनी अनेक– ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, वाक्यात्मक, आर्थिक, मुहावरे–विषयक तथा लोकोक्ति–विषयक आदि–निजी विशेषताएं

होती है, जो अनेक अन्य भाषाओं से कुछ या काफी भिन्न होती है, और इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत भाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णतः समान अभिव्यक्ति–शब्दतः और अर्थात् लक्ष्य भाषा में हो ही।"[11]

किन्हीं दो भाषाओं में शाब्दिक और आर्थिक दृष्टियों से पूर्ण रूप से समान अभिव्यक्तियाँ नहीं भी मिल सकती, इसलिए अनुवाद या भाषान्तर में अधिक से अधिक निकटतावली अभिव्यक्तियों के प्रयोग का प्रयास रहता है। इसी रास्ते से भिन्न भाषा–भाषी मानव–समुदायों को परस्पर जोड़ने हेतु भाषान्तर के भाषिक सेतु का निर्माण किया जाता है।

संदर्भ–सूची :–

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत– हिंदी कोश, मोतीलाल बनारसीदास,चौक, वाराणसी–1, प्रथम/द्वितीय संस्करण–1966/1969, पृष्ठ 739।
2. पंडित कामता प्रसाद गुरु, हिंदी व्याकरण, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, सं० 2045, पृष्ठ 1।
3. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, 22–ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम सं० 1997, पृष्ठ 5।
4. डॉ० बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य संमेलन, प्रयाग, सं० 1983, पृष्ठ 6।
5. आचार्य देवेंद्र नाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं० 1989, पृष्ठ 20।
6. डॉ भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, 22–ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम सं० 1997, पृष्ठ 71।
7. डॉ० उदयनारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, भारती भंडार, प्रयाग, सं० 1987, पृष्ठ 1।
8. डॉ० भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, शब्दकार, 2203, गली इकौतन तुर्कमान गेट, दिल्ली–6, प्र०सं० 1972, पृष्ठ 14।
9. डॉ० गार्गी गुप्त एवं डॉ पूरन चंद टंडन (संपादक) अनुवाद बोध, 1990 (सुमनबाला ठाकुर का 'तत्काल' भाषान्तर' शीर्षक लेख, पृष्ठ 102।
10. डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर, अनुवाद काला, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली–2, सं० 1990, पृष्ठ 19।
11. डॉ० भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, शब्दकार, 2203, गली इकौतन तुर्कमान गेट, दिल्ली–6, प्र०सं० 1972 पृष्ठ 15।

यथार्थवादी उपन्यासकार प्रेमचंद

डॉ. रमेश यादव*

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो प्रेमचंद पूर्व का हिंदी उपन्यास एक प्रयोग का काल रहा है। इसी कारण यह काल उपदेश एवं शिक्षा के रास्ते पर चलते हुए हास–विलास से पूर्ण विनोदप्रियता से अलग न जा सका। डॉ. त्रिभुवन सिंह ने लिखा है–''उपन्यास साहित्य की दृष्टि ही मूलतः यथार्थ चित्रण के लिए हुई है। हिंदी उपन्यास के आरंभ काल में कल्पना, जासूसी, तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यास की जो भारमार रही, उसमें यथार्थ चित्रण का नितांत अभाव रहा, इसमें संदेह नहीं पर उनमें वास्तविक उपन्यासों का स्वप्न देखना तर्क संगत न होगा।''[1] उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का पदार्पण एक युगान्तकारी परिवर्तन रहा है। इनका आगमन एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी और यहीं से हिंदी उपन्यास को एक नयी दिशा मिली, वास्तव में पूर्व प्रेमचंद युग का हिंदी उपन्यास एक तैयारी मात्र था। परिपक्वता का पहला लक्षण प्रेमचंद के रूप में ही प्रकट हुआ। हिंदी कथा साहित्य में यथार्थ की मजबूत नींव दरअसल प्रेमचंद ने डाली है। विजयेन्द्र स्नातक का कथन है–''उनके साहित्य की खूबी यह है कि वे आदर्श चित्रण के साथ यथार्थ से दूर नहीं रहते।''[2] प्रारंभिक दौर में प्रेमचंद का दृष्टिकोण आदर्शवादी था। क्योंकि विविध क्षेत्रों में यथार्थ समस्याएं उठाकर उनका सही प्रामाणिक ढंग से चित्रण करते हैं किंतु उनका समाधान आदर्शवादी ही प्रस्तुत करते थे। जिसे सैद्धांतिक ढ़ंग से 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा गया। लेकिन ज्यों ज्यों उन्हें जीवन का अनुभव होता गया वे समझ गये कि यथार्थ के साथ आदर्श का मेल संभव नहीं है। अमृतलाल नागर ने लिखा है–''जीवन के जिस यथार्थ को प्रेमचंद ने पहचाना और साहित्य में प्रतिष्ठित किया, वह एक रूप में स्वयं उनका भोगा हुआ और दूसरे रूप में उनसे अभिन्न समाज का नानाविध भोगा हुआ यथार्थ था।''[3]

आधुनिकता के नजरिये से हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद अग्रदूत माने जाते हैं। उन्होंने नवीनता का बीज बोया और भारतीय जन समाज के अव्यवस्थित ढांचे के प्रतिरोध में स्वस्थ मनोदशा द्वारा समाज को एक जीवनी–शक्ति दी। अतीत की अतिशयतापूर्ण कल्पना और आगामी आशामयी सम्भावना का डोर छोड़कर जब रचनाकार यथार्थ के प्रति झुकता है तब उसका साहित्य अपने समय का साफ आईना बनकर सामने आता है। इस संदर्भ में प्रेमचंद की रचनाएं उनके युग की सच्चाई प्रकट करती हैं। एक यथार्थवादी दृष्टि का विकासशील स्वरूप प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। उनके पत्र यथार्थवादी मालूम पड़ते हैं, उनके उपन्यासों का समाज यथार्थवादी होता है, घटनाएं समाज की सचाई लिए होती हैं। चूंकि प्रेमचंद का आगमन एक ऐसी सान्ध्य बेला में हुआ जब सामंतवाद का अस्त और पूंजीवाद का उदय हो रहा था। प्राचीन और नवीन नैतिकतावादी और भौतिकवादी–संस्कृतियों में संघर्ष चल रहा था। इस समय साम्राज्यवाद से राष्ट्र की और सामंती महाजनी–सभ्यता के संयुक्त शोषण से किसान–मजदूरों की शक्तियों से सीधी टक्कर आरंभ थी। प्रेमचंद के उपन्यासों में सेवासदन, रंगभूमि, निर्मला, कर्मभूमि, गबन एवं गोदान आदि प्रमुख हैं। हमारे समाज में कुलीनता का मिथ्याभिमान गहरी रूढ़ि के रूप में मौजूद है। वर मूल्य जैसी बुराइयां रीति नीति में कोढ़ की तरह व्याप्त हैं। वेश्यावृत्ति हमारे समाज में अभिशाप की तरह आज भी उपस्थित है। इन समस्याओं को प्रेमचंद ने 'सेवासदन' (1918ई.) में यथार्थवादी तरीके से व्यक्त किया है। प्रेमचंद का कथन है–''शराब की दुकानों को हम बस्ती से दूर रखने का यत्न करते हैं, जुए खाने से भी हम घृणा करते हैं, चौक बाजारों में हाट से सजाते हैं। यह पापोत्तेजना नहीं।तो और क्या है?''[4] प्रेमचंद ने इस उपन्यास में कोरा व धर्म का दाद देने वाले लोगों के चरित्र को उजाड़कर रख दिया है। पवित्रता का दम्भ करने वाला समाज अंदर से कितना खोखला है प्रेमचंद इसको बखूबी जानते थे। आर्थिक विपन्नता से त्रस्त आज स्त्रियां वेश्यावृत्ति को अपनाने के लिए मजबूर हैं। इसी सामाजिक यथार्थ की सच्चाई को व्यक्त करते हुए डॉ. ए. एन. गणेशन ने

***अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता।**

लिखा है–''प्रेमचंद भारत की अभिशप्त नारी के अभिभावक बनकर सामने आये। उन्होंने वेश्या प्रथा की भयंकर समस्या का विश्लेषण किया और हमारे दम्भी समाज की कलई खोल दिखायी।''[5]

प्रेमचंद का निर्मला (1923), एक यथार्थवादी उपन्यास है। इसके सभी पात्र सामाजिक जीवन के यथार्थ को व्यक्त करते हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य अनमेल विवाह एवं।दहेज–प्रथा और उसके परिणामों को व्यक्त करना है। प्रेमचंद ने लिखा है–''...उन्हें (मुंशी तोताराम) अपने ऊपर इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि दीवार से सिर पटककर प्राणों का अंत कर दें।... क्या इसी बहाने ईश्वर को उनका सर्वनाश करना मंजूर था। उन्होंने सिर उठाकर एक बार निर्मला की सहास पर निश्चल मूर्ति देखी और अस्पताल चले गये। निर्मला की सहास छवि ने उनका चित्त शान्त कर दिया था।''[6] प्रेमचंद निर्मला के माध्यम से खोखले सामाजिक रूढ़ियों का यथार्थ चित्रण करते हैं और आत्मपीड़ा से पीड़ित निर्मला अपने जीवन में किस तरह ऐसे जीवन जीने के लिए अभिशप्त है उसकी भी खबर लेते हैं। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश सिन्हा ने लिखा है–''निर्मला को ही लें। अनमेल विवाह एवं सामाजिक अभिशाप से संत्रस्त निर्मला आत्मपीड़न में ही अपना प्राण देती है, पर वह रूढ़ परंपराओं एवं जड़ सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह नहीं करती, उसके प्रति उसकी अवस्था अंत तक बनी रहती है। वह उस समाज को तोड़ना–फोड़ना नहीं चाहती थी, जिसमें वह अपना जीवन जी रही थी। यद्यपि उसका चारित्रिक विकास पूर्ण तथा यथार्थवादी ढ़ंग से हुआ है।''[7] इसी यथार्थवाद की अगली कड़ी 'रंगभूमि' (1924) है। जिसमें।प्रेमचंद ने अपने काल के सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। प्रेमचंद प्रस्तुत उपन्यास में सामंती और पूंजीवादी व्यववस्था को यथार्थ रूप में चित्रण करते हैं और पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध में उन्होंने 'सूरदास' के माध्यम से लिखा है–''भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?/वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,/क्यों निज मरजादा छोड़ै?/भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?/ क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिंता,/क्यों दुःख से नाता जोड़ै?/ भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?/तू रंगभूमि में आया/ दिखलाने अपनी माया/ क्यों धर्म–नीति को तोड़ै?/ भई, क्यों जन से मुँह मोड़ै।''[8] दरअसल रंगभूमि उपन्यास राजनीतिक हथकण्डे, पूंजीपतियों की शोषण नीति, निम्नवर्ग के जीवन, सत्याग्रह आदि का प्रेमचंद ने यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में हिंदू, मुस्लिम और क्रिश्चियन धर्मों की रूढ़ियों, बाह्याडंबरों एवं खोखले रस्मोरिवाजों का सजीव चित्रण प्रेमचंद ने किया है। ओमप्रकाश शर्मा का इस संदर्भ में मत है– ''रंगभूमि समाज की यथार्थ घटनाओं का चित्रण करता है। इस उपन्यास में हिंदू, मुसलमान और ईसाई धर्म की रूढ़ियों का चित्रण जान सेवक ईसाई होकर पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। पूंजीपति अपने उद्देश्य के लिए धर्म, राजनीति और व्यक्तिगत संबंधों को जिस तरह भुनाते हैं उस यथार्थ को प्रेमचंद ने जान सेवक के माध्यम से व्यक्त किया है प्रेमचंद इस उपन्यास के माध्यम से अपने इस मन्तव्य को भी व्यक्त कर देते हैं कि कृषि आधारित इस देश में उद्योग हमारे लिए ज्यादा लाभकारी नहीं है।''[9]

प्रेमचंद का जीवन–दर्शन पूर्णतया मानवतावाद के व्यावहारिक रूप जनवाद से संबंधित है। क्योंकि विषय–वस्तु की दृष्टि से प्रेमचंद एवं प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक एवं ग्रामीण समस्याएं विविध आयामों निरूपित हैं। स्वयं प्रेमचंद के उपन्यास वेश्यवृत्ति, विधवा–विवाह, अनमेल–विवाह, किसान–जमींदार संघर्ष, खेती एवं उद्योग–धंधों की होड़, शहरी एवं ग्रामीण जीवन के असामंजस्य और मध्यवर्गीय एवं निम्न–मध्यवर्गीय चरित्रों की जागृति के ताने–बाने से निर्मित हुए हैं। प्रेमचंद ने साधारण जनों को अपना नायक बनाया और सामान्य दैनिक जीवन की समस्याओं को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। प्रेमचंद ने अपने 'गबन' (1930), उपन्यास के जरिए मध्यमवर्गीय परिवार के चरित्र को व्यक्त किया है। जालपा का एवं अन्य पात्रों का आभूषण प्रेम स्त्री का सहज मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। यही आभूषण प्रेम दयानाथ के परिवार की विपत्तियों का कारण बनता है। प्रेमचंद ने 'जालपा' एवं रमानाथ–संवाद के द्वारा मध्यवर्गीय खोखली मानसिकता को यथार्थ रूप में व्यक्त किया है–''आदमी सारी दुनिया से परदा रखता है, लेकिन अपनी स्त्री से परदा नहीं रखता। तुम मुझसे भी परदा रखते हो। अगर मैं जानती, तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है, तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की, स्त्रियों को तांगे पर बैठा–बैठाकर सैर

कराने ले जाती।''[10] इस संदर्भ में, उपन्यास में यथार्थवाद और मनोविज्ञान का सुंदर सामंजस्य हुआ है। जालपा और रमानाथ का चरित्र मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर ही विकसित हुआ है। डॉ. सुरेश सिन्हा ने लिखा है– ''इस उपन्यास में जहाँ तक मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण का प्रश्न है, वह पूर्ण तथा यथार्थवादी है, मध्यवर्गीय जीवन की कुण्ठा आर्थिक विषमता एवं पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्र इस उपन्यास में प्राप्त होता है।''[11]

मानवीय जीवन की जटिलताओं और सामाजिक जीवन के जितने पक्षों को 'गोदान'(1936), व्यक्त करता है शायद ही हिंदी का कोई दूसरा उपन्यास करता होगा। यह प्रेमचंद का मात्र एक ऐसा उपन्यास है जो यथार्थवादी है और जिसका अंत भी यथार्थवादी है। स्वभाव के अनुसार प्रेमचंद अंत में मेहता और मालती को आदर्श के रूप में लाते हैं लेकिन वह आदर्श निरा खोखला मालूम होता है और ग्राम्य–जीवन के यथार्थ के नीचे–दबकर रह जाता है। 'होरी' इस उपन्यास का नायक है और यथार्थवादी पात्र है। जैसे–जैसे इसके चरित्र का विकास होता है वैसे–वैसे सामाजिक जीवन के पक्ष उद्घाटित होते जाते हैं। गोदान एक यथार्थवादी रचना है, जिसकी विविध समस्याएं, चित्रण पद्धति पात्र एवं शैली सभी कुछ यथार्थवादी हैं। प्रस्तुत यथार्थवाद के नीचे छिपी हुई है लेखक की समाजवादी भावना, जिसे उसे समाजवादी यथार्थवाद के स्तर पर चित्रित किया है। प्रेमचंद ने लिखा है–''होरी नम्र स्वभाव का आदमी था। सदा सिर झुकाकर चलता और चार बातें गम खा लेता था। हीरा को छोड़कर गांव में कोई उसका अहित न चाहता था, पर समाज इतना बड़ा अनर्थ कैसे सह ले!...स्त्री–पुरूष दोनों जैसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि देखें, कोई उनका क्या कर लेता है। तो समाज भी दिखा देगा कि उसकी मर्यादा तोड़ने वाले सुख की नींद नहीं सो सकते।''[12] यथार्थ की जिस भूमि पर चल कर प्रेमचंद ने गोदान की रचना की थी, वह आज के संदर्भ में लगता है कि वह किसी भी किसान का भोगा हुआ यथार्थ है। यानी जैसे स्वयं उस सच्चाई को प्रेमचंद होरी बनकर भोग रहे हों। बीना श्रीवास्तव ने लिखा है– ''प्रेमचंद ने अपने अंतिम उपन्यास में अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण की व्यर्थता को अनुभव किया। उन्होंने 'गोदान' में पहुंचकर आदर्श के लोक से उतरकर यथार्थ की धरती पर पैर रखा। इसमें सन्देह नहीं कि अपने अन्य उपन्यासों (सेवासदन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प आदि) में भी उन्होंने अपने चारों ओर के वास्तविक जगत् की उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने कथाक्रम के सामाजिक वातावरण का वहाँ भी अत्यंत यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है,... 'गोदान' तक पहुंचकर जीवन एवं जगत् की यथार्थता अपने वास्तविक रूप में अनेक सम्मुख स्पष्ट होने लगी थी।''[13] 'गोदान' में प्रेमचंद भारतीय ग्राम के यथार्थ को अत्यधिक प्रतीतिमय बताते हुए घटनाओं, समस्याओं, चरित्रों के आन्तरिक और बाहरी जगत् के संघर्षों को सहजतापूर्वक चित्रण करते हैं। इस तरह 'गोदान' की पटभूमि पर अधिक विस्तृत तौर पर यथार्थ का स्वरूप चित्रित हुआ है और यथार्थवाद की दृष्टि से प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों से मिलों दूर आगे बढ़ आया है। इस संदर्भ में शिवकुमार मिश्र ने लिखा है– ''प्रेमचंद का कृतित्व विशेषतः परवर्ती कृतित्व सामाजिक यथार्थ की प्रशस्त जमीन पर उपन्यास को अपने युग की अनिवार्य और बृहत् राष्ट्रीय तथा मानवीय चिंता से जोड़ सका था, एक बड़े परिप्रेक्ष्य में, जिन्दगी के सीधे साक्षात्कार से प्राप्त अनुभवों के आलोक में अर्जित किये गये विश्वबोध के तहत उसने अपने समय के उझले समीकरणों का हल निकालने की कोशिश की थी, युग की प्रतिनिधि सच्चाई को ईमानदारी के साथ उजागर करते हुए, अपने ढ़ंग से सही व्यक्ति और समाज, अन्तर्जगत और बहिर्जगत, सामाजिक सत्य और व्यक्ति–सत्य के बीच के द्वैत को समाप्त करते हुए इस सत्य का उद्घोष किया था कि मुक्ति एक की, और अकेले में नहीं होती, वह जब भी होगी, सबकी और सबके सामने होगी।''[14] इस प्रकार प्रेमचंद ने एक यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में जिन परिस्थितियों में रहकर सामाजिक सच्चाई को स्पष्ट रूप में अपने उपन्यासों के द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किया है वह संग्रहणीय है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में यथार्थवादी चित्रण किया है उसको भावी पीढ़ी ने सहर्ष स्वीकारा है, हिंदी कथा–साहित्य को युगीन संदर्भों से जोड़ने, युगानरूप स्पन्दनों का वाहक बनाने एवं सामाजिक यथार्थ को विभिन्न आयामों में प्रस्तुत करने में प्रेमचंद और उनके काल के उपन्यासकारों का महत्व अक्षुण्ण है। मानव समाज के सामूहिक तथा व्यक्तिगत, बाह्य और अन्तर्मुखी

परिस्थितिगत और मानसिक अंधकारमय एवं प्रकाशमान एवं संश्लिष्ट सच्चाई का उन्होंने यथार्थ चित्रण किया है। इस तरह कहा जा सकता है कि हिंदी उपन्यास को यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित करने में प्रेमचंद का प्रमुख श्रेय रहा है। उनकी कृतियों में निरूपित यथार्थ का संश्लिष्ट स्वरूप इस बात को सिद्ध करता है कि जहाँ उन्होंने जीवन के शाश्वत सत्यों–युगीन समस्याओं, विषमताओं एवं अत्याचारों को चित्रित किया, वहीं समस्त संगतियों एवं विसंगतियों के साथ परिस्थिति के अनुकूल अन्तर्मन के सत्यों को भी कुरेदा। प्रेमचंद में यथार्थ के जो दो आयाम सामाजिक, मनोवैज्ञानिक उद्घाटित हुए थे, बाद में अलग–अलग धाराओं में विभाजित होकर विशिष्ट रूप में विकसित होते गये। अंततः इस मायने में प्रेमचंद एक यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में सफल हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, 'हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग' प्रथम सं. फरवरी 1973, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृ. 141।
2. स्नातक, विजयेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', संस्करण : 1999, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, पृ. 290।
3. नागर, अमृतलाल, 'साहित्य और संस्कृति' संस्करण : 1986, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृ. 19।
4. प्रेमचंद, 'सेवासदन', संस्करणा : 1998, सरस्वती प्रेस (प्रकाशन), इलाहाबाद, पृ. 57।
5. गणेशन, एस.एन. (डॉ.), हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', संस्करण, सितम्बर–1962, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृ. 62।
6. प्रेमचंद, 'निर्मला' संस्करण : 1985, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 89।
7. सिन्हा, सुरेश (डॉ.) 'हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास', संस्करण : 1965, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 141।
8. प्रेमचंद, 'रंगभूमि' संस्करण : 2004, शिवानी बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 236।
9. शर्मा, ओमप्रकाश, 'हिंदी उपन्यास और समाज' संस्करण : 2000, अरावली बुक्स इन्टरनेशनल (प्रा.) लि., नई दिल्ली, पृ. 328।
10. प्रेमचंद, 'गबन' संस्करण : 2003, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 83।
11. सिन्हा, सुरेश (डॉ.) 'हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास', संस्करण : 1965, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 186।
12. प्रेमचंद, 'गोदान', संस्करण : 2001, हिंदी पॉकेट बुक्स (प्रा.लि.), दिल्ली, पृ. 128।
13. श्रीवास्तव, बीना, 'हिंदी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना', संस्करकण : 1981, मैकमिलन इंडिया लि., नई दिल्ली, पृ. 89।
14. मिश्र, शिवकुमार 'प्रेमचंद और परवर्ती कथा–परिदृश्य', नामवर सिंह (सं.) 'आलोचना' (त्रैमासिक), अक्टूबर–दिसम्बर 1979, नवांक : 51–52, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, कुल पृ. 126–136, पृ. 127

जैन ग्रंथों में वर्णित महिलाओं की स्थिति का अवलोकन

डॉ. रमेश कुमार विश्वकर्मा*

भारतीय समाज में नारी को प्राचीन काल से ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा परिवार के सम्मान का प्रतीक समझा जाता था। नारी के प्रति समाज की सहज निष्ठा और श्रद्धा हर युग में देखी गयी है। कालान्तर में सामाजिक चेतना के विकास के साथ–साथ उसका महत्त्व द्विगुणित होता चला गया और यहाँ तक कहा गया कि नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण है। सृष्टि की कल्पना ही अपने आप में उस प्रजनन शक्ति के प्रतीक अथवा आदर्श का संकेत देती है, जो स्त्री रूप में, मातृत्व रूप में अथवा वात्सल्य की प्रतिमूर्ति के रूप में पूर्णता का पर्याय बनी है।

"एतावानेव पुरूषो यज्जाय सा प्रजेतिह।
विप्राः प्रहुस्तथा धैन्द्यो मतीसा स्मृतामना।।"

जैन आगमों की परिधि में आबद्ध नारी विविध रूपों में हमारे सामने उपस्थित होती है, जननी के रूप में, यह न केवल पुत्र द्वारा वन्दनीय है, वरन विश्ववन्दनीय है। जैन साहित्य से ज्ञान होता है कि कन्या, माता–पिता, भाई आदि सभी परिवार के सदस्यों के लिए स्नेह की पात्र होती है। कन्या का नामकरण, स्नान, महोत्सव, चातुर्मासिक उत्सव आदि माता–पिता द्वारा अत्यन्त हर्षोल्लास से सम्पन्न किये जाते थे। ऐसी कन्यायें जो विवाह के इच्छुक नहीं होती थी अथवा जिनका विवाह किसी कारण विशेष से सम्पन्न नहीं हो पाता था वह बिना किसी बन्धन के अपने पिता अथवा भाई के आश्रय में जीवन–यापन करती थी।

जैन साहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते है कि स्त्रियाँ स्वतन्त्र रूप से जनसाधारण के बीच उपस्थित होती थी। वे अपने मित्रों एवं सम्बंधियों से मिलने के लिए कहीं भी आ जा सकती थी। जगदीश चन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज में वर्णन किया है कि नगर के बाहर यज्ञ, इन्द्र, स्कन्ध आदि देवी–देवताओं की पूजा उपासना करती तथा उत्सव आदि के अवसर पर बिना रोक–टोक के स्त्रियाँ कही भी आया जाया करती थी। प्रारम्भिक जैन समुदायों में स्त्रियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। एक सुयोग्य पत्नी को ही परिवार की कुंजी समझा जाता था। स्त्री को परिवार में पूर्ण अधिकार प्राप्त था और उसे परिवार की देवी माना जाता था। इस सम्बन्ध में अनेक उदाहरण मिलते है। रानी के दरबार में प्रवेश करने पर राजदरबारी लोग खड़े होकर उनका स्वागत करते थे और उन्हें राजा के बगल में सिंहासन पर बैठने के लिए आहत करते थें। स्त्रियों को मारने–पिटने का भी रिवाज था और स्त्रियाँ इसको चुपचाप सहन कर लेती थी। किसी गृहस्थ ने अपनी चारों स्त्रियों को घर से बाहर निकाल दिया था। उसकी पहली पत्नी घर से निकलकर दूसरे के घर चली गयी, दूसरे अपने कुलगृह में जाकर रहने लगी, तीसरी अपने पति के किसी मित्र के घर पहुँच गयी, लेकिन चौथी पीटे जाने पर वही रही। पति अपनी चौथी पत्नी से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे गृहस्वामिनी बना दिया। जैन प्रकीर्णक साहित्य में उल्लिखित वर्णन से स्त्रियों की उन्नत अवस्था का अनुमान नहीं किया जा सकता है। बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था और अन्तःपुर में सैकड़ों स्त्रियाँ रखने का रिवाज था।

ऋषभदेव की दो पत्नियाँ थी तो चक्रवर्ती भरत के अंतपुर में 64000 स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। त्रिपृष्ठ वासुदेव के 3200 पत्नियाँ थी तथा अचल वासुदेव की 8000 पत्नियाँ थी। यदि उपर्युक्त उल्लेखों को लाक्षणिक और अतिशयोक्तिपूर्ण भी मान लिया जाये तो भी इतना निश्चित हो जाता है कि अपनी प्रभुता और ऋद्धि का प्रदर्शन करने में बहुपत्नियाँ भी एक साधक थी और इसे बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से देखा जाता था।

*** सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।**

स्त्रियों के चरित्र का वर्णन हमें प्रकीर्णक में जो दिखाई देता है वहाँ पर कहा गया है कि, स्त्रियाँ स्वभाव से कुटिल, अविश्वास की घर, व्याकुल चितवाली, हजारों अपराध की करणभूत, पुरुषों का वध करने वाली लज्जा का नाश करने वाली, कपट का आश्रय स्थान, शोक की जनक, दुराचार की घर, ज्ञान को नष्ट करने वाली, कुपित होने पर जहरीले सांप की तरह, दुष्ट हृदया होने से व्याघ्री की तरह और चंचलता में बंदर की तरह होती है। ये स्त्रियाँ नरक की तरह डरावनी, बालक की तरह क्षणभर में प्रसन्न या रूष्ट होने वाली, किपांक फल की तरह बाहर से अच्छी लगने वाली, किन्तु कटु फल प्राप्त करने वाली होती है। स्त्रियों के चरित्र को बुद्धिमान पुरुष भी नहीं जान सकता है फिर साधारण मनुष्यों की क्या बात है? इसी कारण व्यक्ति को चाहिए कि स्त्रियों का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

जैन साहित्य से ज्ञात हाता है कि कोई भी सम्बंधी पुत्र के विवाह के लिए कन्या का चयन कर लेता था। उसके पश्चात पुत्र का विवाह गुणवती कन्या के साथ सम्पन्न किया जाता था। महावीर स्वामी, जम्बूस्वामी, मेघकुमार, गौतम आदि अनेक कुमारों का विवाह माता–पिता की सहमति से ही किया गया था। ऐसे पुत्र जिनके पिता नहीं होते थे। उस पुत्र का विवाह माता करती थी माता के न रहने पर बड़े भाई द्वारा भी विवाह कराये जाने का उल्लेख मिलता है।

जैन सूत्रों से ज्ञात होता है कि माता–पिता द्वारा एक ही लग्न और एक ही तिथि में अनेक कन्याओं का विवाह सम्पन्न किया जाता था। पिता अपने पुत्र के लिए रूपवती कन्याएँ खोजते थे। शुभ मुहूर्त निकालकर श्रृंगार से परिपूर्ण कन्या को शिबिका में बैठाकर मित्र, परिजन, जातिजन और सम्बन्धियों को साथ लेकर तथा विवाह की समस्त सामग्री लेकर नगर के मध्य विचरण करते हुए कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष के द्वार पर पहुँचते थे। वर के निवास पर पहुँचकर सुलक्षणा कन्या वर पक्ष को सौंपी जाती थी। कन्या और वर अपने अग्नि होम सम्पन्न करने के पश्चात् पाणिग्रहण करता था। पाणिग्रहण ही दायित्व का प्रतीक होता था जो मित्रता, आत्मीयता और अतरंगता का परिचायक है। वाग्दान सम्पन्न होने के पश्चात् भोज का आयोजन किया जाता था। इस अवसर पर वस्त्र अलंकार से वर पक्ष कन्या पक्ष के अभयागतों का स्वागत करते थे। तित्थोगाली प्रकीर्णक से स्पष्ट होता है कि एक पुरुष कई विवाह करते थे जैसे– ऋषभदेव ने दो विवाह किया था और चक्रवती भरत के अंतःपुर 64,000 स्त्रियाँ थी, का उल्लेख मिलता है प्रतिदान वर का पिता विवाह के बाद वर कन्या को देता था। जैन आगम कालीन समाज में अभिजात और सम्पन्न कुलों में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था। जैन प्रकीर्णक साहित्य में भी बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन दिखाई देता है और अंतःपुर में सैकड़ों स्त्रियाँ रखने का प्रचलन था। त्रिपृष्ठ वासुदेव के 32,000 पत्नियाँ थी तथा अचल वासुदेव की 8,000 पत्नियाँ थी जो बहुविवाह प्रथा के प्रचलन का साक्षात् उदाहरण प्रस्तुत करती है। तित्थोगाली प्रकीर्णक में अन्य जगह भी चक्रवती भरत के अन्तःपुर में 64,000 स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। ऋषभदेव का भी उल्लेख मिलता है जिनकी दो पत्नियाँ थी। इसे बड़े प्रभावशाली ढंग से देखा जाता था किन्तु सामान्यतः एक पत्नी की ही प्रथा थी। जैन सूत्रों से प्राप्त विवरण में पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा स्त्री या तो दीक्षा ग्रहण कर लेती थी अथवा पिता के घर शेष जीवन व्यतीत करती थी। पति द्वारा परित्याग किये जाने पर कन्या का दूसरा विवाह पिता द्वारा पुनः करने के उद्धरण प्राप्त होते है। सुकुमारिका को जब जिनदत्त ने त्याग दिया था तो उसके पिता द्वारा उसका दूसरा विवाह कर दिया गया था। इसके साथ ही यह विचारणीय तथ्य है कि क्षत्रिय कुलों में पुनर्विवाह की प्रथा न थी। पुनः विवाह का प्रश्न सामाजिक स्तर पर अथवा वर्ग व्यवस्था के विभाजन के आधार पर लागू किया गया होगा। सामान्य तौर पर पुनः विवाह को प्रश्रय नहीं दिया जाता था। समाज में विधवा पुनर्विवाह के उल्लेख नहीं प्राप्त होते है। राजमती और सोमा के प्रसंग द्वारा यह स्पष्ट होता है कि जैन साहित्य में विधवा पुनर्विवाह निषिद्ध थे। सोमा के पिता राजसुखमाल के दीक्षा लेने पर कुद्ध हो जाते थे। इसी प्रकार अरिष्टनेमी की माता भी अपने पुत्र के समझाते हुए कहती है कि राजमती को बिना विवाह के त्यागने से उसकी दुर्दशा होगी यह अनुचित है। यह जीवित रहते हुए भी मृतदेह हो जायेगी। कुछ स्त्रियों के पति के न रहने पर सूत काटने का उल्लेख मिलता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति के कमाये धन और आश्रित स्त्रियों का दूसरे व्यक्ति भी उपभोग करते है। अतः इस वक्तव्य से

स्पष्ट है कि समाज में विधवा विवाह की प्रथा रही होगी। जैन आगम साहित्य का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उच्च कुलों में विधवा विवाह मान्य नहीं था। किन्तु समाज के अन्य वर्गों में विधवा विवाह की प्रथा अवश्य रही होगी। जैन आगमों में विवाह के योग्य निश्चित अवस्था की जानकारी नहीं मिलती है, इतना अवश्य मिलता है कि वर एवं वधू को समान वयस्क होना चाहिए। फत्तेलाल जी ने उल्लेख किया है कि जो वर कन्या से दो वर्ष अधिक है वह उत्तम वर है, जो 5 वर्ष अधिक है वह सामान्य और है जो 10 वर्ष अधिक है वह अधम वर होता है। इसी प्रकार की धारणा कन्या के प्रति भी दिखायी देती है। जैन ग्रंथ त्रिवर्णीकाचार में कन्या के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि ऐसी कन्या जो वय और शरीर में वर से श्रेष्ठ हो उसके साथ माता जैसा आचरण करना चाहिए। कुछ अन्य जैन ग्रंथों में विवाह वय के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। नीतिवाक्यामृतम् में यह उल्लेख मिलता है कि 12 वर्षीय कन्या तथा 16 वर्षीय पुरुष रीति क्रिया के योग्य होते ळें

विवाह सम्पन्न होने के 7 दिन बाद संतान उत्पत्ति की दृष्टि से काम सेवन करना चाहिए। विवाह वय के सम्बन्ध में एक लोकश्रुति उद्धृत की गई है कि यदि कन्या रजास्वला हो जाये तो जितने उसके रूधिर के बिन्दु गिरते हैं, उतनी ही बार उनकी माता को नर्क का दुःख भोगना पड़ेगा। जैन समुदाय में बाल–विवाह का प्रचलन था। जैन प्रकीर्णक साहित्य में विवाह वय के बारे में विशेष स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु कुद अन्य जैन आगम साहित्य में बाल विवाह का उल्लेख नहीं मिलता। जब पुत्र सभी कलाओं में दक्षता प्राप्त कर लेता था तथा तरुणावस्था के आरम्भ और शैशवावस्था के अन्तिम चरण में पहुँचता था तो उसका विवाह सम्पन्न किया जाता था। जम्बूस्वामी का विवाह 16 वर्ष की अवस्था में किया गया था साथ ही स्वयंवर विवाह द्वारा राजीमति आदि उद्धरणों से सिद्ध होता है कि कन्या जब युवावस्था को प्राप्त हो जाती थी तभी उसका विवाह किया जाता था। जैन समाज में उच्चकुलीन नारियाँ पर्दे की आड़ में बैठती थी। अनेक प्रसंग इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। रानियाँ स्वप्न विचार सुनने के लिए पर्दे के पीछे बैठा करती थी। इसका आशय यह नहीं कि अभिजात कुलों में पर्दा प्रथा थी। इसके विपरित हम देखते है कि स्वयं रानियाँ भी प्रभु की वन्दना के लिए सभा में जाती थी सामान्य वर्गों में पर्दा का प्रचलन नगण्य था। सभाओं में रानियाँ पर्दे की ओट में बैठना केवल उनके सम्मान का परिचायक था। अतः केवल नाममात्र के उद्धरणों से यह मान लेना की समाज में पर्दा प्रथा प्रचलित थी उचित नहीं है। जैन प्रकीर्णक साहित्य में पर्दा प्रथा का स्पष्ट विवरण कहीं भी दिखलायी नहीं पड़ता है। केवल तित्थोगाली प्रकीर्णक में इतना मिलता है कि छठे आरे में लज्जाविहीन और क्लेशों में आबद्ध होगी। इन सबसे स्पष्ट होता है कि उस काल में भी पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं रहा होगा।

जैन आगम साहित्य में दहेज प्रथा का विवरण मिलता है। कन्या की ओर से भी दहेज दिया जाता था। कभी–कभी दहेज में खोया हुआ राज्य भी प्रदान कर दिया जाता था। दहेज का पूर्ण विवरण भगवती सूत्र से भी ज्ञात होता है कि किन्तु वहाँ भी स्पष्ट रूप से नहीं दर्शाया गया है कि जमाली को मिलने वाला प्रतिदान वर पक्ष ने दिया था अथवा कन्या पक्ष द्वारा किया जाता था। राजा उदयन के राज्य में एक स्वर्णकार का प्रसंग महत्त्वपूर्ण है जो कन्या के पिता को 500 स्वर्ण मुद्राएँ देकर कन्या से विवाह कर लिया था। इस प्रकार हम देखते है कि विवाह के अवसर पर वर और कन्या दोनों के ही पिता समान रूप से वर एवं कन्या को भेंट दे होंगे। यहाँ पर एक ही मण्डप में अनेक कन्याओं के विवाह का वर्णन है।

जैन आगम साहित्य तथा प्रकीर्णक साहित्य में भी सती प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं प्राप्त होता हे, पति की मृत्यु के बाद स्त्रियाँ दीक्षा लेना अधिक श्रेष्ठ समझती थी। चालुक्य नरेश की नारियाँ पति की मृत्यु के बाद सती होती थी। किन्तु अन्य कुलों में इसे मान्यता न थी। प्रकीर्णक साहित्य में कहीं भी सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता है पति के दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन भारत में नियोग प्रथा के उदाहरण मिलते है। इस प्रथा के अनुसार, पुत्रहीन विधवा, अपने पति की मृत्यु हो जाने पर अपने देवर या अन्य किसी सगे–सम्बन्धी से पुत्र उत्पन्न करा लेती थी। प्रकीर्णक साहित्य में इस तरह का उद्धरण हमें नहीं दिखलाई पड़ता कि उस समय नियोग प्रथा थी या नहीं थी। जैन आगम ग्रंथों में ऐसे उद्धरण उपलब्ध

नहीं होते है जिसके आधार पर यह मालूम होता है कि कन्या के पिता की सम्पत्ति में किन्हीं अंशों में अधिकार होता था। इकलौती कन्या पिता की सम्पत्ति की अधिकारी होती थी। कन्या के पति को पिता अपने पास ही रख लेता था। कन्या विवाह के अवसर पर माता–पिता दहेज के रूप में प्रचुर धन दिया करते थे।

पति के जीवित रहने पर पत्नी उसकी अचल सम्पत्ति की संरक्षिका मानी जाती थी। साधु–संत आदि भी पति की उपस्थिति में पत्नी से आवास प्राप्त कर लेते थे। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि पति की मृत्यु के बाद पति के धन की अधिकारिणी पत्नी होती थी। सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता था, यही कारण था कि सौतेली माँ उसे पूरा स्नेह देती थी। दहेज में प्राप्त मायके का धन पत्नी का होता था। प्रकीर्णक साहित्य में स्त्री का सम्पत्ति में अधिकार था कि नहीं इसका विवरण नहीं प्राप्त होता है। गणिकाओं की उत्पत्ति के बारे में एक कथा है कि एक बार भरत चक्रवर्ती के पास सामन्त राजाओं ने उपहार स्वरूप अपनी–अपनी कन्याएँ भेजी, राजा और रानी दोनों ने उनका निरीक्षण किया। रानी ने कहा 'यह किसका स्कंधावार है' भरत ने उत्तर दिया 'सामन्त राजाओं ने इन्हें मेरे लिए भेजा है' रानी ने सोचा कौन जाने राजा पर ये जादू न कर दे यह सोचकर रानी ने प्रसाद से गिरकर मरने की धमकी दी। भरत ने कहा कि यदि यही तुम्हारा निश्चय है तो ये मेरे घर प्रवेश न कर सकेंगी इसके पश्चात् उन कन्याओं को भरत ने गण राजाओं को सौंप दिया। यही आगे चलकर गणिका कहलाई।

बौद्ध और जैन काल में वेश्यायें नगर की शोभा मानी जाती थी। भरत में वेश्यावृत्ति प्रारम्भ से ही एक संस्था के रूप में मान्य थी। ऋग्वेद में 'नृतु' शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ नर्तकी होता है। वैदिक साहित्य में इन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। वात्सायन के कामसूत्र में भी वैश्याओं पर 6 अध्याय लिखे गये। वैश्याओं को वहाँ कुंभदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिती, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाश–विनष्टा, रूपाजीवा, गणिका इन नौ नामों से जाना जाता है। इनके सबसे सम्मान योग्य वे वेश्याएँ होती थी जो राजा द्वारा पुरस्कृत की जाती थी। वात्सायन के अनुसार वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत होती तथा विविध कलाओं में पारंगत होती थी। गणिका को गणिकाओं के आचार–व्यवहार की भी शिक्षा दी जाती थी। तित्थोगाली प्रकीर्णक में कोशा वेश्या का प्रसंगवत उल्लेख आया है। कोशा पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या थी। जैन आगमों से ज्ञात होता है कि जैन तीर्थकरों के द्वारा चतुर्विध संघ की स्थापना की गई थी। भगवान महावीर ने संघ परम्परा को सुदृढ़ किया था तथा अधिकारों की बागडोर भिक्षु–भिक्षुणियों, श्राविक–श्राविकाओं के हाथों में सौंप दिया था, महावीर के समय संघ के प्रधान इन्द्रभूति थे तथा श्रमणी संघ की प्रधान चन्दना थी। महावीर के काल में श्रमणों की संख्या 14000, श्रमणियों की संख्या 36000, श्रावकों की संख्या 159000 और श्राविकाओं की संख्या 318000 थी।

संघ में प्रवेश को लेकर अत्यन्त उदार दृष्टिकोण नारी के संदर्भ में था। संघ में कोई भी नारी प्रवेश कर सकती थी। वर्ण, जाति, कुल की मर्यादाओं से परे नारी को भी पुरुषों की ही भाँति संघ में प्रवेश का अधिकार था। इतना ही नहीं सुखी–दुःखी, दीन–हीन सभी वर्गों की नारियों को जैन आचार्य का पालन करते हुए संघ में प्रवेश का अधिकार प्राप्त था। नारी को सामाजिक सुरक्षा भी संघ के माध्यम से प्राप्त हो सकती थी। कोई भी नारी प्रताड़ना अपमान तथायातनाओं से मुक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर सकती थी। ऐसी अनेक नारियों के दृष्टांत है, जिन्होंने अपने दुःखों का निदान संघ में प्रवेश के द्वारा खोजा। यही कारण है तत्कालीन साहित्य में शोषित एवं उत्पीड़ित नारी द्वारा आत्महत्या जैसी विकृतियों के उदाहरण नहीं मिलते है। दूसरी ओर ऐसे भी संदर्भ मिलते है जहाँ सुख–सुविधा सम्पन्न नारियाँ भी पारलौकिक कल्याण की दृष्टि से संघ में प्रवेश कर एक आदर्श प्रस्तुत करती थी। संघ के माध्यम से भिक्षुणियाँ विभिन्न नारियों के पीड़ित हृदय को सांत्वना देते हुए संघ में प्रवेश करती थी। श्राविका धर्म का उपदेश देती थी। श्रमणों की अपेक्षा श्रमणियों की संख्या श्रावकों की अपेक्षा श्राविकाओं की संख्या अधिक होती थी। साध्वियाँ संघ के माध्यम से धर्म का प्रचार करती थी।

नारी संघ की प्रधान अधिकारिणी पर्याप्त अधिकारों की स्वामिनी थी, आचार्या स्वयं जब किसी नारी को दिक्षा प्रदान करती थी तो तीर्थंकर अथवा साधु द्वारा उसे पुनः दीक्षित करने की आवश्यकता नहीं होती थी। कुमारी मल्लि ने अन्य तीर्थंकरों के समान एवं दीक्षित होकर अन्य नारियों को दीक्षित किया। तीर्थंकर मल्लि ने पुरुष और स्त्री दोनों को प्रवाज्जित किया था। उनकी अभ्यतंर परिषद में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों थी।

समस्त आगम ग्रंथों का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि तीर्थंकरों को छोड़कर अन्य साधुओं द्वारा नारी को दीक्षित करने का एक उदाहरण भी नहीं प्राप्त होता है उसी प्रकार साध्वियों के द्वारा भी किसी पुरुष को दीक्षित करने का उद्धरण नहीं प्राप्त होता है।

जैन संस्कृति में सामान्यतः नारी की स्थिति पुरुष के समकक्ष ही दिखाई देती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नारी की स्थिति समाज में अच्छी थी। यद्यपि साधकों ने नारी की घनघोर निन्दा भी की है पर वह इस दृष्टि से हुई है कि कामवासना के कारण पुरुषवर्ग की ओर आकर्षित हो जाती है और फलतः पुरुष आध्यात्मिक क्षेत्र से दूर भाग जाता है। यह तो वस्तुतः पुरुषवर्ग की कमजोरी का ही निदर्शक है। इसे नारी वर्ग की हीन स्थिति का सूचक नहीं कहा जा सकता। उसे तो वस्तुतः पुरुष के समकक्ष माना गया है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. जैन संस्कृत कोश (तृतीय भाग), जैन सांस्कृतिक चेतना– प्रो0 भागचन्द्र जैन 'भाष्कर'।
2. जैन प्रकीर्णक साहित्य में समाज एवं संस्कृति– डॉ0 शैलेश कुमार।
3. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास– डॉ0 ओम प्रकाश।
4. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास– डॉ0 शिवस्वरूप सहाय।
5. जैन नीति और समाज दर्शन– डॉ0 प्रवीण कुमार गुप्त।
6. जैन समाज और संस्कृति– डॉ0 महेन्द्र नाथ सिंह, डॉ0 आशुतोष कुमार सिंह।

෴★෴

निर्मला देवी के काव्य की प्रणय चेतना
(वियोग पक्ष के संदर्भ में)

चिन्मयी मिश्र*

सारांश :– (ओड़िशा की लब्धप्रतिष्ठ कवयित्री निर्मला देवी के काव्य की प्रणय चेतना के वियोग पक्ष को देख कर दंग रह जाना पडता है। वे मिलन से विरह को अधिक श्रेष्ठता देती हैं तथा विरह को अमृत मानती हैं। उनके अनुसार हुदय के मोह तथा मन की कलुषता को विरह मिटा देता है। विरह के समय प्रियतम को पाने की एकमात्र अभिलाषा उनकी बनी रहती है। जीवितावस्था में स्थूल रूप से अपने प्रियतम को पाना चाहती हैं तथा मरने के बाद भी सूक्ष्म रूप से हवा का दोस्त बनकर उनका संस्पर्श पाना चाहती है। विरह के समय कवयित्री अपने प्रियतम की खोज निरंतर जारी रखती हैं। विरहावस्था में प्रियतम का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिये कभी प्रेयसी अभिमान का सहारा लेती हैं तो कभी उपालम्भ का सहारा लेती हैं। प्रियतम के प्रेमाप्लुत हृदय को इस कदर वे भाँप चूकी हैं कि मानती हैं उसके अभिमान और उपालम्भ का प्रभाव प्रियतम पर जबरदस्त रहेगा। इन्हे सुनने के बाद प्रियतम सचेत हो जायेंगे और अपने प्यार को बरकरार रखने के लिये प्रेयसी के पास फौरन आ पहूँच जायेंगे। प्रियतम से दूर रहते समय वे दुःखी बनती हैं और उनकी आँखों से गंगा–यमुना की धाराएँ आँसू के रूप में बह निकलती हैं। लेकिन यह अदभुत बात है कि वियोग की स्थिति में निर्मला देवी के सपने उन्हे आनन्द देते हैं। उनका उदवेग तब बढ जाता है जब वे अनुभव करती हैं कि प्रियतम उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। लम्बे समय से विरह को झेलती हुई नायिका का तन तथा मन जब कमजोर बन जवाब देने पर तुल जाते हैं यानी विरहिणी नायिका मृत्यु के कगार पर आ खडी हो जाती है तब भी प्रियतम को एक बार झाँक लेने की तमन्ना रखती हैं। कवयित्री के काव्य की प्रण्य चेतना के वियोग पक्ष की कोई जवाब नहीं है जो कि शुरु से लेकर अंत तक इतना मुखर बना रहता है कि किसी भी सहृदय पाठक के हृदय को झकझोर देने में समर्थ है। प्रेयसी की आँखों में केवल प्रिय ही प्रिय बसता है। इसके अलाव और कुछ नहीं है। निर्मला देवी के काव्य में प्रणय चेतना का वियोग पक्ष अत्यंत सशक्त तथा मर्मस्पर्शी है जिसकी तुलना हिंदी सहित्य की मशहूर कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य की प्रणय चेतना के वियोग पक्ष के साथ की जा सकती है।)

मूल शब्द :– निर्मला देवी, काव्य, ओड़िआ, प्रणय चेतना, वियोग पक्ष, ओड़िशा।

प्रस्तावना :– निर्मला देवी ओड़िआ साहित्य के सबुज युग की कवयित्री हैं। इनका जन्म 6 सितम्बर सन 1907 को ओडिशा के कटक जिले के नरिलो नामक एक गांव में एक जमींदार परिवार में हुआ था। सन 1985 को निर्मला देवी जी को अपने 'बर्णराग' काव्य पर ओड़िआ सहित्य एकाडेमी पुरस्कार मिला जो कि साहित्य के क्षेत्र में ओड़िशा का श्रेष्ठ पुरस्कार माना जाता है। निर्मला देवी के तीन काव्य संग्रह हैं– दिनांते (1953), सीमांते (1962), बर्णराग (1983)। उनके कुछ गद्य–लेखन कहानियों के रूप में मिलते हैं। परंतु खेद की बात यह है कि इनका प्रकाशन अब तक नही हो सका है। उनके काव्य प्रणय चेतना से भरे पडे हैं। उनका प्रणय कभी मानव के लिये है तो कभी प्रकृति के लिये है। फिर कभी ईश्वर के लिये भी मुड जाता है। निर्मला देवी की औपचारिक शिक्षा गाँव की पाठशाला तक सीमित थी। लेकिन उनकी कवि प्रतिभा किसी चमत्कार से कम नहीं है। कुछ आलोचक इन्हें ओडिशा की इकलौती छायावादी कवयित्री मानते हैं और इनकी तुलना हिंदी साहित्य की प्रख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा के साथ करते हैं।

मिलन का विपरीत श्ब्द विरह है। प्रणय में ये दोनों एक के बाद दूसरा घूम फिरकर आते रहते हैं। वियोग का बहुत बडा योगदान प्रणय में रहता है। प्रणय की मिठास को विरह बढा देता है। जिस प्रकार मिलन के बिना विरह अंत सारशून्य लगता है,उसी प्रकार विरह के बिना मिलन भी फीका लगने लगता है।

*** शोधार्थी – रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक, ओड़िशा, भारत।**

इसलिये प्रायतः सभी प्रणयमूलक कव्य में विरह की चर्चा होती है। कवयित्री निर्मला देवी के काव्य में विरह अपने अनोखे रूप–सम्भार के साथ उभरकर सामने आया है। विरह की विभिन्न पहलुओं के आधार पर हम इसकी विशेषताओं को परखेंगे।

1. विरह की श्रेष्ठता :– सुख की चाहत सबको होती है। क्या दुःख की चाहत किसको होती है? इसी प्रकार मिलन हर प्रेयसी की कामनाओं की केंद्रविंदु होता है। क्या कोई विरह को चाहता है? संसार में इने – गिने कुछ प्रेमी होंगे जो विरह को मिलन से अधिक बढावा देते हैं। जैसे हिंदी साहित्य की मशहूर कवयित्री महादेवी वर्मा। वह बोलती है, ''मिलन का नाम मत ले मैं विरह में चिर हूँ।" संधिनी– पृ०– 92.। निर्मला देवी भी विरह की श्रेष्ठता को स्वीकार करती हुई बोलती है जो चीज विरह से मिलती है वह मिलन से कहाँ मिल सकती है–

'जोछ्ना जुआरे भासि पुलकित जामिनी
पासोरि दैइछि सेकि बरषार दामिनी?
श्रावणर घनघोरे असरा बरषा धारे
अभिसारिका र से कि पाद बला बाजेणी
विरहे शुणाइ जाये मिलन र रागिणी।
हजिलाणि काहिं सेहि सकरुण ममता
बरषा रजनी कोले रहिछि जा साइता,
निबिड ममता भारे
आखिर कजल गारे
रचे जे परम स्नेहे अतीतर कविता
विरहे मिलइ जाहा मिलने कि थाए ता।"[1]

(चाँदनी के प्रभाव के कारण तूफानी विजली की चमक को क्या रात ने भूला दिया है? श्रावण की घनघोर बारिश की धारा में अभिसारका की पायल विरह में मिलन की रागिणी गाती है। वह ममता कहीं खो गई है। शायद यह बरसात की रात में सम्भव हो सकती है क्योंकि वह परम स्नेह से ह्रदय की घनी ममता से और आँख के काजल से अतीत को रूप देती है, जो चीज विरह से मिलती है वह मिलन से कहाँ मिल सकती है?)

विरह के समय उसके मन में प्रियतम हर पल रहते हैं। उसके साथ सबकी हमदर्दी भी आ रही है। उसके मन को बहलाने के लिए प्रकृति अपूर्व शोभा–राशी को बिखेरने के साथ–साथ उसके मिलन के चित्र उसके सामने रखती है। कवयित्री को लगता है कि यह विरह नहीं है। यह अमृत है। इससे उसके जीवन के सारे मोह तथा हर प्रकार की कलुषता नष्ट हो जाती है–

'एहि दग्ध बुके तब विरह दान
ढालि पीयुष धारा सिक्त करु ए प्राण
से जे अतुल चिर नाहिँ उपमा तार
देउ तुटाइ मोर मोह कलुष गार।"[2]

(तुमने जो विरह का दान मुझे दिया है, उसकी कोई तुलना नहीं है। वह मेरे प्राण में अमृत की वर्षा करता है। उससे मेरे जीवन के सारे मोह और हर प्रकार की कलुषता नष्ट हो जाती है।)

अतः निर्मला देवी के अनुसार विरह में प्रियतम उसकी सोच में हर समय रहते हैं। विरह से सबकी हमदर्दी उसके पास आती है। विरह अमृत है जो उसके जीवन की कलुषता को मिटा देता है। इसलिए मिलन से विरह श्रेष्ठ है।

2. अभिलाषा :– प्रियतम का सान्निध्य पाना निर्मला देवी की एकमात्र अभिलाषा है। जब तक वह जिंदा है स्थूल रूप से अपने प्रियतम को हासिल करना चाह्ती है। मरने के बाद भी उसे प्रियतम का सान्निध्य अपेक्षित है। चाहे वह सूक्ष्म रूप में क्यों न हो।

जब प्रियतम प्रेयसी से कहीं दुर चले जाते हैं तब प्रियतम की वापसी की चिंता उसे सताती है तथा उनसे मिलने की अभिलाषा उत्तरोत्तर बढती जाती है। कवयित्री को अपने जीवन में प्रियतम का बहुत बार इंतजार करना पडा है। अब की बार तो हद हो गई। न जाने कितनी रातें बीतीं कितने दिन गुजरें। फिर भी प्रियतम दिखाई नहीं दे रहे हैं। विरह–वेदना को झेलती हुई प्रेयसी अपने प्रियतम के चरणों में प्रीति का नैवेद्य अर्पण करने के लिये पगली की भाँति ढूँढ़ती फिरती हैं। एक दिन जैसे एक युग सा गुजरता है।

'दिनांते' काव्य की 15 वीं कविता में कवयित्री प्रियतम के शारीरिक सान्निध्य के लिये व्याकुल हो उठती है। फिर वह सोचती है कि मन की बातों को प्रियतम से बोल देने पर मन की सारी व्यथाएँ दूर हो जाएंगी। मन को शांती मिलेगी। प्रियतम जब आते हैं वह प्रियतम के सामने अपने मन की बातों को खोलकर रख देगी। ऐसा भी हुआ। प्रियतम उसकी सारी बातों को सुनकर उसे ढाढस देते हुए उसके सारे वेदनासिक्त आँसूओं को अपने हाथों से पौंछ देते है। प्रियतम से अपनी आखिर अभिलाषा बताती हुई प्रेयसी बोलती है कि मृत्यु के बाद वह हवा का दोस्त बनकर सूक्ष्म रूप से उनका सन्निध्य पाने की कामना रखती है–

मो कलेबर जिब त हजि धरार एहि घासे
तथापि हेबि समीर–साथी नियत तुम आसे।"[3]

(मेरा शरीर इस पृथ्वी की घास में खो जएगा। फिर भी तुम्हें पाने की आशा से मैं हवा का दोस्त बन जाऊँगी।)

अतः हर समय कवयित्री किसी न किसी रूप से अपने प्रियतम का सन्निध्य चाहती है। जीवितावस्था में स्थूल रूप से और मरने के बाद सूक्ष्म रूप से वह अपने प्रियतम का सान्निध्य चाहती है।

3. अभिमान :– अभिमान उससे किया जाता है जिसके साथ गभीर स्नेह–सम्बन्ध होता है। यहाँ अभिमान करनेवाली कवयित्री भलीभाँति जानती है कि उसका प्रिय उसे बहुत चाहते हैं। यदि वह प्रिय के सामने झूटमूट का अभिमान करे तो उसके प्रिय की आत्मा को पीडा पहुँचेगी और वे अपनी प्रेयसी के प्रति अधिक कर्त्तव्यनिष्ठ बन जायेंगे। फिर प्रियतम उसे कितना चाहते हैं उसका पता उनके हाव–भाव तथा कर्मों से आसानी से लग सकता है। जहाँ स्नेह की घनिष्ठता अधिक होती है वहाँ इस प्रकार अभिमान अधिक मिलता है। ''आउ न पारे" कविता में प्रियतम से अभिमान का एक सुंदर उदाहरण हम देख सकते हैं–

तुमे दूरे रहि मोते चाहिँ थाअ, मो निकटे केबे गो न आसिब
मुँ गो तुम लागि जेबे कांदुथिबि, मोर लुह धार केबे न पोछिब।"[4]

(तुम दूर से मेरी दुर्दशा देखते रहोगे, मेरे पास कभी नहीं आओगे। मैं यदि तुम्हारे लिये रोती भी रहूँगी तो मेरे पास आकर मेरे आसुओं को कभी नहीं पोंछोगे।)

प्रेयसी जानती है कि उसके अभिमान की शक्ति से प्रिय का दम्भ चूर–चूर होने वाला है। वह अच्छी तरह से भाँप लेती है कि यदि वह रोती रहेगी तो इसे जानते ही प्रिय उसके आसूँ पौंछ्ने के लिए फौरन आ जायेंगे क्योंकि वे उसे बहुत चाहते हैं। प्रेयसी की हैसियत से प्रिय से इस प्रकार की समवेदना पाना उसका अधिकार भी है। यहाँ वह प्रत्यक्ष रूप से अधिकार जाहीर नहीं करती है। परंतु अभिमान करके विपरीत बात बोलती है ताकि प्रियतम से जो वह करवाना चाहती है वह आसानी से हासिल हो सके।

4. आँसू :– सुख के सारे भौतिक साधन कवयित्री के पास उपलब्ध होने पर भी कभी–कभार अपने प्रियतम की निष्ठुरता की वजह से वह आँसू गिरा रही है। उसे लगता है कि यह विधि का विधान है। इस दुनिया में कोई हँसता है तो कोई रोता है। उसको विधाता ने इस दुनिया में इसलिए भेजा है कि वह रोती रहेगी। सुख–दुःख का पर्यायक्रम से आना विधि का विधान होने पर भी कवयित्री के भाग्य में केवल विरह का दुःख ही लिखा है। नियति और प्रियतम दोनों उस पर पक्षपात कर रहे हैं। कवयित्री अनुभव करती है कि वह जिस विरह–वेदना से व्याकुल और भाराक्रांत है, उसका कोई अंत नहीं है। अपने प्रियतम से वह शिकायत करती हुई नजर आती है कि उन्हीं की वजह से उसे ऐसी वेदना मिलती है जिसे वह न किसी से बोल

सकती है, न खूद चैन से रह सकती है। किसी से कहने से भी क्या फायदा ? केवल अंदर ही अंदर पीडा भोगना है–

'तपन उदयरु लिभिला जाएँ चाँद
हरष अवसाद, कि अबा हस कांद
कुसुम– ओठे–हस, शिशिर–अश्रुरस
विश्वर पथे एहि भरिछ जेउँ छंद
नियत बिकासुछ तुमर सेहि धारा
मातर मोते देल केवल लुह ज्वाला
कहिबि सेहि कथा अकुहा व्याकुलता
कहिले लाभ किस ? केवल छाति–जला।"[5]

(सुबह से साँझ तक कहीं आनंद है तो कहीं विषाद है, कहीं हर्ष है तो कहीं क्रदन है। यह विधि का विधान है कि किसी के होंठों में हँसी निखरती है तो किसी की आँखों से शीशिर की भाँति आँसू टपकते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि मेरे भाग्य में केवल विरह और आँसू ही लिखे हैं। यह एक ऐसी बात है जिसे मैं न किसी से बोल सकती हूँ, न चुप्पी साध के इसे झेल सकती हूँ। बस केबल आँसू गिरा ही सकती हूँ। किसी से बोलने से क्या फायदा ? केवल हृदय को कुरेदना ही सार है।)

जब उसका प्रियतम उसे विरह का दुःख देने पर तुले हुए हैं तो शिकायत किसके सामने की जायेगी ? शिकायत करने से भी क्या लाभ है। समस्या का समाधान तो नहीं हो सकेगा अपितु मानसिक सन्ताप बढने लगेगा। अतः इसे विधि का विधान समझकर झेल लेना ही बुद्धिमानी होगी। कवयित्री का आँसू केवल अपने प्रियतम के कारण स्वरूप में आते हैं, इसमें दो राय नहीं है।

5. स्वप्न :– प्रियतम से जुदाई के कारण विरहिणी को रात में नींद नहीं आती है। परंतु जब कभी पलकें लग जाती हैं तब स्वप्न में प्रियतम दिखाई देते हैं। पल भर के लिए क्यों न हो, दूर–दराज से स्वप्न आकर निर्मला देवी को पुलकित कर चला जाता है। इसके सहारे किसी प्रकार लम्बी रात गुजर जाती है–

'हेउ पलक पाइँकि पछे
दूर अतीत सपन छाई
आसि पुलकित करि जाए
राति परे राति जाए पाहि।" [6]

(जब कवयित्री अकेली हो जाती है तब स्वप्न की वजह से बडा सुकून मिलता है। कम से कम प्रियतम से साक्षात्कार तो हो जाता है। तब कवयित्री का मन प्रियतम के सान्निध्य से परमानंद लूटता है। आसानी से रात गुजर जाती है।)

आम तौर पर विरहावस्था में सपनें सारे विरहिणियों को पीडा पँहुचाते हैं। क्योंकि सपनों से अपने प्रियतम को देख लेने के बाद उनसे अपनी जुदाई की बात जब स्मृति में आती है तब मन दुखता है। लेकिन निर्मला देवी सपनों से पुलकित हो उठती है जो कि बिलकुल अनोखी लगती है।

6. उपालम्भ :– उपालम्भ उलाहना मात्र नहीं है अपितु गहरी आत्मीयता और प्रणय से उदभूत ऐसी उक्ति है, जो अपने प्रियतम से बिछुडकर मिलन की उत्कण्ठा को व्यक्त करता है। इससे प्रणयानुभूति और अधिक गहरी हो जाती है। प्रिय की निष्ठुरता को लक्ष्य करके किए गये कुछ मधुर और कुछ तीक्ष्ण उपालम्भ कवयित्री के काव्य में प्राप्त होते हैं जिससे प्रेम करने की अनिवार्य एवं सहज वृत्ति तथा विवशता भी प्रकट होती है। प्रेमी और प्रेमिका को परस्पर दिये हुए ये उपालम्भ विभिन्न मनोवृत्तियों को सूचित करते हैं। कई बार भिन्न–भिन्न समय और स्थान पर प्रियतम से मिलने के उपरांत यदि प्रियतम इन्हें स्वीकार न करें तब कवयित्री का हृदय खिन्न हो उठना स्वाभाविक है। इस क्षेत्र में कवयित्री उपालम्भ दिये बिना नहीं ठहरती है। प्रियतम से मिलन के समय प्रकृति के भिन्न–भिन्न घटक यथा आकाश के सितारें, श्रावण की बारिश आदि

उपस्थित थे, जिन्हें गवहियों के रूप में लेने की बात कवयित्री करती है। इससे प्रियतम की झूठ का खुलासा सब के समक्ष आसानी से हो सकता है—

'केते रुपे केते बारे जे आसिछ रचि केते अभिसार
पिंधाइनि कि बार—बार तब गले मो रचित हार।
जाण नाहिँ बोलि यदि मना कर जाणिना कि केते साक्षि मोहर ?
से दिनर सेहि समयर कथा कहिब आकाश तारा
भिजि भिजि मुँहि जाइछि केमिति कहिब श्रवण धारा।"[7]

(कितने रूपों में, कितनी बार तुम आए हो और मैंने तुम्हारे साथ अभिसार रचा है। अपने हाथ से बनाये गये हार को तुम्हारे गले में क्या मैंने बार—बार नहीं पहनाया है ? यदि तुम नकार दोगे तो मेरे पास कई गवाहियाँ हैं। उस समय की बात को उस रात के आकाश के सितारें बतायेंगे। मैं बारिश से कैसे भीगती हुई अभिसार में गई थी, उसे वर्षा की धारा बतायेगी।)

इस प्रकार के कथन के जरिये कवयित्री बताना चाहती है प्रियतम से उसका सम्पर्क तब मधुर था, अब मधुर है और आगे भी मधुर बना रहेगा। इसे टालने की कोशिश की जाये तो असफलता ही हाथ लगेगी और टालनेवाले का नकाव दूसरे के सामने खुल जायेगा क्योंकि उनके मिलन को प्रकृति की कई घटकों ने देखा है तथा गवाही देने के लिये वे तैयार बैठे हैं। कवयित्री की विरहावस्था में इस प्रकार के सुंदर मनमोहक, तीक्ष्ण तथा रससिक्त उपालम्भ का प्रयोग निर्मला देवी के काव्य में हुए हैं।

7. प्रलाप :— प्रियतम के दूर चले जाने की परिकल्पना से कवयित्री शिहर उठती है और तरह—तरह की अवास्तव भावनाएँ उसके चिंतन को आबोरने लगती है तथा प्रलाप का रूप भी ले लेती है। वह प्रेम के रास्ते को नीरस मानती है परंतु प्रियतम को नहीं। प्रियतम ही केवल उसे सरसता दे सकते हैं। यदि इस बीहड रास्ते में उसके प्रियतम छोडकर चले जायेंगे तब उसके प्राण को उल्लसित करने के लिए रोमाण्टिक गीत गाकर उसे कौन सुनायेगा ? प्रियतम के चले जाने से प्रकृति भी रूक्ष, कर्कश लगने लगेगी। वसंत ऋतु में न तो मलय की खुसबूदार हवा बहेगी या पंचम तान से कोयल प्रणय का संगीत गायेगी। ओस की मार से कमल की पँखडियाँ नष्ट हो जायेगीं। बनस्पती की सारी लताएँ एक साथ मुरझाने लगेंगी। संसार की सारी कोमल भावनओं की परिसमाप्ति होने लगेंगी। प्रियतम के अनुपस्थिति में कवयित्री को यह सारा संसार निरर्थक और नीरस सा प्रतीत होने लगेगा। अहेतुक वियोग जन्य वेदना से कवयित्री प्रलाप कर उठती है—

'तुमे यदि मोते छाडि चालि जाअ एहि कांतार पथे
कालि पाइँ आउ प्राण संगीत किए शुणाइब मोते ?
छइला मलय होइब विदाय धरि ए कोकिल गीति
आसि लेउटिब अजणा कुणिआँ खोजि ए निशून बीथि।
शीकर परशे मुदित कमल सजल नयन पता
सरि जाउथिब दीर्घ जागर झाउँलि पडिब लता।'[8]

(यदि इस सन्नाटे रास्ते में मुझे छोडकर तुम भाग जाओगे तो कल के लिए मुझे जीवन जीने का संगित कौन सुनाएगा ? वासंतिक हवा विदाय ले लेगी और अनजान बंधु कोयल इस सन्नाटे में वसंत की तलाश करके वापस चली जायेगी। जैसे कोहरे से कमल की पँखडियाँ नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार मेरे मन की खुशियाँ नहीं रहेगी और आँखों से गँगा—यमुना की धाराएँ बहती रहेंगी। नींद न आने के कारण लताओं की भाँति ये आँखें मुरझा जायेंगी।)

जब विरह की परिक्ल्पना से प्रेयसी इस प्रकार का प्रलाप कर उठती है तो वास्तविक विरह की स्थिति में उसकी हालत अत्यन्त दयनीय हो जायेगी , इसमें सन्देह नहीं है।

8. नैराश्य :— अपने प्रियतम की अनुपस्थिति में कवयित्री का मन अकुलाने लगता है। 'दिनांते' की छ्ठी कविता में अँन्धेरी रात में कवयित्री अपने प्रियतम के मुलायाम हाथों के स्पर्श तथा अभिसार के लिये व्याकुल

हो उठती है। अपने प्रियतम के स्वागत के लिये चंदन–चुआ का घोल एवं फूलों के हार बडे प्यार से अपने हाथों से बनाकर प्रियतम के आने की प्रतीक्षा दरवाजे के पास सुबह तक करती हैं। उनका पक्का विश्वास प्रियतम पर है कि वे जरुर आयेंगे। लेकिन यह क्या ? रात गुजर जाने पर भी प्रियतम दिखाई नहीं देते हैं। ज्यों ही अभिसारिका की नजर मुरझाये गये फूलों पर गिरती है उसका मन बैठ जाता है। चन्दन–चुआ का घोल का आघ्राण लेते ही खुशबू की जगह बदबू महसूस होने लगा। अब प्रियतम आये तो उनका स्वागत मुरझाये गये फूलों से एवं सडी गई घोल से क्या हो सकता है ? फिर अभिसारिका का अरमान दिन में साकार कैसे हो सकता है ? अतः लम्बी प्रतीक्षा के अंत में विरहिणी नायिका को निराशा के अलावा और कुछ हाथ नहीं लगता है। रात भर उन्नींद रहने के कारण शरीर थक चुका है। प्रियतम के न आने के कारण उन पर विश्वास उठने लगा। इसलिये मन कमजोर बनने लगा। अपनी दीन–दशा की दर्द–भरी अवतारणा कवयित्री निम्नलिखित पंक्ति के माध्यम से करती हैं–

'चंदन चुआ मोर हेलाणि बासि
सराग–फुलमाला मउले आसि,
आवेग–भरा मने,
तुमकु अन्य दिने,
खोजि मुँ एते सरि हेलिणि आसि।'[9]

(तुम्हारे स्वागत के लिए चंदन और चुआ (एक प्रकार का तेल) का घोल तैयार करके रखी थी। तुम्हारे न आने की वजह से वे अब बासी बन चुके हैं। उसके साथ मेरी श्रद्धा रूपी फूलों के हार भी कुम्भलाये गये हैं। आवेग भरे मन से तुम्हें ढूँढती हुई आज मेरी यह दशा बन चुकी है।)

कवयित्री की निराशा प्रियतम से अपेक्षित है। निराशा का प्रभाव केवल मन को नहीं तन को भी झकझोर देता है।

9. मरण :– लम्बे समय से विरह को झेलते रहने के कारण कवयित्री शारीरिक तथा मानसिक रूप से बुरी तरह से कमजोर बन चुकी है। प्रियतम का इंतजार करते–करते उसकी उम्र ढ़लने लगी है और वह मृत्यु के कगार पर आ खडी हो गई है। फिर भी उसका प्रिय उसकी व्यथा को समझ नहीं पा रहे हैं एवं उसके पास नहीं आ रहे हैं। उसके प्रिय का मन उसके लिये कब पिधलेगा ? ईश्वर के दर्शन के लिये भक्त जिस प्रकार व्यग्र रहता है उसी प्रकार की व्यग्रता कवयित्री के मन में अपने प्रियतम को देखने के लिए है। लेकिन उसके प्रिय के मन रूपी दरवाजा जो कि पत्थर से बना हुआ है वह कब पिधलेगा ताकि उनका एक बार दीदार कर लेने के बाद वह शांति से आखिर सांस ले सकेगी–

'आयु पक्षी मोर उडि जिबा पाइँ हेलाणि त छ्टपट
देउल दुआर खोला हेबा पाइँ हेब आउ केते मठ ?'[10]

(मेरी आयु रूपी चिडिया उड जाने के लिए व्याकुल होने लगी है। तुम्हारे मन रूपी मंदिर के दरवाजे को खुलने में और कितनी देरी होगी ?)

तन तथा मन से कमजोर विरहिणी की यह आखिर दशा है जिसमें प्रियतम से मिलने की बेचैनी स्पष्ट झलकती है।

निष्कर्ष :– निर्मला देवी के काव्य की प्रणय–चेतना के वियोग पक्ष की निम्नलिखित विशेषताएँ खुल कर सामने आ जाती हैं–

1. निर्मला देवी विरह को मिलन से अधिक श्रेष्ठता देती हैं। उनका मानना है कि विरह अमृत है जो कि उनके अंदर के सारे मोह तथा मन की कलुषता को मिटा देता है।
2. प्रियतम को पाना कवयित्री की एकमात्र अभिलाषा है। जीवितावथा में स्थूल रूप से अपने प्रियतम को पाना चाहती है तथा मरने के बाद सूक्ष्म रूप से उनका संस्पर्श पाना चाहती है। जब तक

वे मिल नहीं जाते तब तक कवयित्री की खोज निरंतर जारी रहेगी। मरने के बाद वे हवा का दोस्त बनकर प्रियतम का संस्पर्श पाना चाहती है।

3. अपने प्रेम को अधिक सुदृढ बनाने के लिये तथा प्रियतम का ध्यान अपनी तरफ खींचने के लिये कभी प्रेयसी अभिमान का सहारा लेती है तो कभी उपालम्भ का सहारा लेती है।
4. कवयित्री के पास हर प्रकार की भौतिक सुख–सुविधाएँ रही हैं। अतः वे दुखी क्यों बनेंगी ? जब वे प्रियतम से दूर रहती हैं तब दुखी बनती हैं और उनकी आँखों से गँगा–यमुना की धाराएँ बहने लगती हैं।
5. आम तौर पर विरह की स्थिति में सपनों में प्रियतम को देखकर प्रेयसियाँ दुखी बनती हैं। कारण वे जानती हैं सपनें अवास्तव हैं। इससे प्रियतम से मिलन मुमकिन नहीँ हैं। लेकिन वियोग की स्थिति में निर्मला देवी के सपनें उन्हें आनंद देते हैं।
6. प्रियतम के बेरुखेपन से निर्मला देवी का उदवेग बढ जाता है।
7. विरह की परिकल्पना मात्र से प्रेयसी की भावनाओं में ढ़ावाँढ़ोल मचने लगता है और वह प्रलाप करने लगती है। विरह की वास्तविक स्थिति में उसके प्रलाप की मात्रा संगीन होगी, इसमें संदेह नहीं।
8. तन तथा मन से कमजोर विरहिणी नायिका की आखिर अवस्था (मरण) में प्रियतम से मिलने की इच्छा अधिक बलवत्ती हो जाती है।

प्रणय चेतना के वियोग पक्ष में प्रेयसी निर्मला देवी की अजीबोगरीब स्थिति आ जाती है। एक तो विरह को श्रेष्ठता देती हुई वे बोलती हैं कि उनके मन की सारी कलुषता को यह दूर कर देता है एवं विरह उनके लिए अमृत है। लेकिन विरह के घटकों में केवल स्वप्न को छोडकर कहीं दूसरी जगह प्रेयसी पुलकित होती हुई नजर नहीं आती है। हर स्थिति में केवल दुःख ही दुःख उभर कर सामने आता है। अतः कथनी और करनी में विरोधाभास झलकता है। कवयित्री एक जमींदार की कन्या थीं एवं बाद में उच्चपदस्थ राजकीय ऑफसर की पत्नी बनीं। अतः भौतिक सम्पदाओं की कमी उन्हें कहाँ खटकी ? उनके दुःख का कारण प्रियतम की निष्ठुरता ही है जिसके लिए वे हमेशा चिंतित रहती थीं। प्रियतम से उनका लगाव इतना था कि लाख कोशिशों के बावजूद भी अपने को प्रियतम से सम्बंधित भावनाओं से अछूती नहीं रख पाती थीं। उनका प्यार इतना पक्का था कि यद्यपि प्रियतम की वजह से मृत्यु दशा तक आ गयी है फिर भी अपने प्रियतम को आखिर बार झाँक लेना चाहती है। केवल इतना ही नहीं, अपनी मृत्यु के बाद भी वे हवा का दोस्त बन जाने की कामना करती हैं ताकि शरीर के न होने पर भी सूक्ष्म रूप से अपने प्रियतम को वे हवा के माध्यम से देख सकेगी। वास्तविक निर्मला देवी के काव्य की प्रणय चेतना का वियोग पक्ष अत्यंत सशक्त एवं मर्मस्पर्शी है जिसकी तुलना हिंदी सहित्य की मशहूर कवयित्री महादेवी वर्मा के साथ की जा सकती है।

संदर्भ–सूची :–

1. बर्णराग– देवी, निर्मला. निर्मला देवी कविता समग्र. फरेष्ट पार्क, भुवनेश्वर, पंचमी मानु उइक्लि, आर.एन.डि फयामिलि बेनेफिट ट्रस्ट, 2016, पृ०– 347।
2. दिनांते – देवी, निर्मला. निर्मला देवी कविता समग्र, फरेष्ट पार्क, भुवनेश्वर, पंचमी मानु उइक्लि, आर.एन.डि फयामिलि बेनेफिट ट्रस्ट, 2016– पृ०–109।
3. सीमांते – देवी, निर्मला. निर्मला देवी कविता समग्र, फरेष्ट पार्क, भुवनेश्वर, पंचमी मानु उइक्लि, आर.एन.डि फयामिलि बेनेफिट ट्रस्ट, 2016– पृ०–230।
4. दिनांते, पृ०–54।
5. सीमांते, पृ०–160।
6. दिनांते, पृ०–07।
7. बर्णराग, पृ० 358।
8. बर्णराग, पृ०–406।
9. दिनांते, पृ०–57।
10. बर्णराग, पृ०–376।

सुभद्रा कुमारी चौहान का काव्य और राष्ट्रीय-चेतना

साधना गुप्ता*

''बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।''1

सन् अठारह सौ सत्तावन की महान क्रान्ति में अपनी वीरता, शौर्य और अदम्य साहस का परिचय देने वाली 'झांसी की रानी' लक्ष्मीबाई को केन्द्र में रखकर जनजागरण के उद्देश्य से काव्य सृजन करने वाली अमर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का काव्य आज भी लोक हृदय में वैसे ही जीवित है, जैसा तब था। वह समय ऐसा था, जब देश अंग्रेजी सत्ता की बेड़ियों में जकड़ा कराह रहा था। ऐसे में देश के नौजवान अपने माथे पर केसरिया कफन बाँधे आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे। तमाम साहित्यकार अपनी लेखनी से उनका हर्षवर्द्धन कर रहे थे। अतीत के गौरवशाली अध्याय बार–बार दोहराये जा रहे थे, लेकिन ''सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न कविताओं में एक नया अनुभव जोड़ा। उन्होंने बताया कि समृद्धशाली इतिहास के बखान मात्र से पाठकीय विवेक जागृत नहीं हो सकता, ऐसा वर्णन तो पाठक को केवल सतही तौर पर प्रभावित कर सकता है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने अतीत को समकालीन अनुभवों से सम्बद्ध कर दिया। इतिहास के बहाने समकालीन यथार्थ को देखने की यह काव्य–दृष्टि अपने समय की राजनीति को पहचानने का सलीका सिखाती है।''[2]

सुभद्रा कुमारी चौहान का कवि–हृदय स्वाभिमानी के साथ–साथ देशभक्ति की पवित्र भावना से सिंचित है। उन्होंने जब लेखनी उठायी थी, उस वक्त पूरा देश अंग्रेजों के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन की नैया पर सवार होकर स्वतंत्र होने को व्याकुल था। इस महासंग्राम में कवयित्री की लेखनी ओजस्वी हुँकार भरती है–

''छेड़ दिया संग्राम, रहेगी / हलचल आठो याम सखी,
असहयोग सर तान खड़ा है / भारत का श्रीराम सखी।''[3]

'विजयादशमी' के अवसर पर लिखी ओजपूर्ण कविता से एकमात्र आशय कवयित्री का यही था कि जिसप्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने लंका को नेस्तनाबूद किया था, उसी प्रकार अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हम अंग्रेजी शासन व्यवस्था को मटियामेट करने पर आमदा है। कहना न होगा कि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की लेखनी से निकले शब्द काव्यशास्त्रीय निकषों पर भले ही कमजोर साबित हों, लेकिन उन्होंने जिन उद्देश्यों से अपने रचना संसार का ताना–बाना बुना था, वे उद्देश्य शत–प्रतिशत पूर्ण हुए हैं। 'वीरों का कैसा हो वसंत' कविता इस बात का साक्षात् प्रमाण प्रस्तुत करती है। देश जब पराधीनता का दंश झेल रहा हो, उस देश के नौजवान के लिए वसंत का एक ही अर्थ हो सकता है कि जिस प्रकार वसंत आगमन पर वृक्ष भी अपने गहने उतार नए गहने धारण कर लेते हैं तो फिर हमारा देश अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ नवीन शासन प्रणाली को भी स्वीकार करने के लिए आतुर है। वसंत की इस बेला में कवयित्री के शब्द राणा के शौर्य से अभिसंचित हैं–

''हल्दी घाटी के शिला खंड / ऐ दुर्ग! सिंहासन के प्रचंड
राणा ताना का कर घमण्ड / दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त ?''[4]

कवयित्री हल्दीघाटी में राणा के रण–कौशल को जन सामान्य के मानस पटल पर इसलिए उतारना चाहती हैं कि उन्हें आत्मविश्वास की अनुभूति हो सके। वे बार–बार अनेक रुपकों के सहारे नौजवानों को प्रेरित करती हैं। 'शहीदों के मज़ारों पर लगेंगे हर वर्ष मेले' की तर्ज़ पर देखा जाए तो सुभद्रा कुमार चौहान

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007।**

को भी महारानी लक्ष्मीबाई की समाधि अत्यन्त प्रिय लगती है, क्योंकि उसमें उन्हें स्वतंत्र होने की आशा दिखती है, वे उससे प्रेरणा पाती हैं–

''बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की भस्म, यथा सोने से।
रानी से भी अधिक हमें यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतंत्रता की, आशा की चिन्गारी।''[5]

'झाँसी की रानी', 'वीरों का कैसा हो वसन्त', 'झाँसी की रानी की समाधि पर' व 'जलियाँवाला बाग में वसन्त' आदि कविताएँ सुभद्रा कुमारी चौहान की लेखनी से निकलकर लोक–कण्ठाहार बनी हुई हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने काव्य का सृजन सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त शब्दावलियों से ही किया है। बिम्बों का प्रयोग उनके काव्य को और भी सजीव बना जाता है। प्रसिद्ध आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है– ''सरल काव्य–सा सुन्दर जीवन जो सरिता के नीरव प्रवाह–सा बढ़ने वाला हो– कवयित्री का काम्य है। कहना न होगा कि यह सरलता और सहजता सुभद्रा जी के जीवन और काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी कविता गम्भीर से गम्भीर भाव को भी अत्यन्त सहज और सरल ढंग से व्यक्त करने वाली है। यही उनका शिल्प है।''[6]

गौरतलब है कि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने जन–जन के हृदय में देश प्रेम की अलख जगाने के उद्देश्य से ओजपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने आजादी की लड़ाई में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था। वे कई बार जेल भी गईं, लेकिन हिम्मत कभी नहीं हारीं। जिस दौर में वे देश सेवा और साहित्य साधना में लीन थीं, वस्तुतः वह दौर 'गाँधी–युग'' के नाम से भी जाना जाता है। कहना न होगा कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में पूरा देश समवेत् स्वर में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का शंखनाद कर रहा था। 'विज्ञानवाद' को चुनौती देकर एवं बापू के अदम्य साहस को प्रतिष्ठित करती हुईं कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान लिखती हैं–

''है यही आदि गाँधी युग का, जो बापू ने विस्तारा है
है यही अंत लोहे के दिन, जिनका विज्ञान सहारा है
विज्ञानी की है परम सिद्धि, जग को लोहे से भर देना
है हँसी खेल तुमको बापू, लोहे को पानी कर देना।''[7]

स्वाधीनता आन्दोलन के इस चरण में (1915–47) शायद ही कोई साहित्यकार व कलाकार होगा, जिस पर गाँधीवादी मूल्यों व आदर्शों की छाप न पड़ी हो। कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी उन आदर्शों व मूल्यों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है, लेकिन उनके साधनों में मतभेद उभर कर सामने आता है। कवयित्री के स्वर में दिनकर के ताप को महसूस किया जा सकता है। जालियाँवाला हत्याकाण्ड ने पूरे भारत को झकझोर दिया था। यहाँ कवयित्री के संवेदनशील हृदय को भी देखा जा सकता है। 'जालियाँवाले बाग में बसन्त' कविता में बसन्त को सम्बोधित करती हुई कवयित्री कहती हैं कि हे वसंती बयार आप भी थोड़ा सुमन अर्पित कर दो, क्योंकि इस जमीं पर वीर नौजवान सोए हुए हैं, लेकिन आपका आगमन अत्यन्त धीमे होना चाहिए, क्योंकि यह शोक स्थान है, यहाँ शोर नहीं मचाया जाता–

''कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा–खाकर
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर
यह सब करना, किन्तु
बहुत धीरे–से आना।
यह है शोक स्थान
यहाँ मत शोर मचाना।''[8]

कवयित्री के शब्दों में कितना क्षोभ है, यह 'कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा–खाकर' में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कोमल बालकों द्वारा गोली खाया जाना, इस अन्तर्विरोध में कवयित्री की काव्य प्रतिभा तो विकीर्ण होती दिखाई ही दे रही है, उनके मन का संताप भी झलक रहा है। बहरहाल, सुभद्रा कुमारी चौहान

हिन्दी संसार की वह कवयित्री हैं, जिनके काव्य में संदेश और मार्गदर्शन का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। 'मेरे पथिक' एक ऐसी कविता है, जिसमें कवयित्री प्रत्येक उस पथिक का मार्गदर्शन कराती हैं जो बिना सोचे समझे अपनी मंजिल की ओर कदम बढ़ाता है। उसे आगे चलकर पथ पर पछताना न पड़े इसलिए कवयित्री उसे भ्रमित होने से रोकती है। पथिक थोड़ा भोला भी है और हठी भी, इसीलिए वे उसे क्षण भर रूककर विचार कर आगे बढ़ने की बात कहती हैं–

'यहाँ के घात और प्रतिघात, तुम्हारा सरस हृदय सुकुमार।
सहेगा कैसे? बोलो पथिक, सदा जिसने पाया है प्यार।।''[9]

कवयित्री भोले पथिक को इस दुनिया के घात–प्रतिघातों के प्रति सचेत कराती हैं क्योंकि उसके कोमल हृदय ने न कभी छल–कपट किया है और न ही कभी उसे सहा है। बाहरी दुनिया अपने स्वार्थ के लिए उसके हृदय को छलनी कर सकती है। जिसने प्यार ही बाँटा हो, प्यार ही पाया हो, वह इस संसार की धोखाधड़ी को कैसे सहन कर पाएगा, इसीलिए कवयित्री उसे सचेत करती हुई कहती हैं–

''चलेगी अपवादों की लूह, झुलस जाएगा कोमल गात।
विकलता के पलने में झूल, बिताओगे आँखों में रात।''[10]

कहना न होगा कि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के काव्य में विशेष दार्शनिक उत्स व बौद्धिक जटिलताओं के लिए कोई अवकाश नहीं है। उनके सपाट लहजे वाली भाषा में ओज के साथ–साथ भावात्मक भाषा के दर्शन होते हैं। हालांकि उन्होंने देशभक्ति काव्य के अतिरिक्त स्नेह, विदाई, मिलन, प्रतिक्षा, जिज्ञासा, उल्लास, अवसाद आदि व्यक्तिगत मनःस्थितियों को मुक्तकों में भी बाँध कर अपने रचना संसार की परिधि को बढ़ाया है, लेकिन उनकी ख्याति उनके देशभक्ति व स्वाधीनता आधारित काव्यों की वजह से ही अधिक है। उनके काव्यों का संग्रह 'मुकुल' एवं 'त्रिधारा' के नाम से प्रकाशित हुआ है। बहरहाल, आजादी की प्रहरी बनकर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने काव्य में सदैव जागृति का जयघोष किया है। स्वतंत्रता आन्दोलन में नारी शक्ति की उपस्थिति दर्ज़ कराने के उद्देश्य से उन्होंने अपने देश की स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा–

'सबल पुरुष यदि भीरु बनें, तो हमको दे वरदान सखी।
अबलाएँ उठ पड़े देश में, करें युद्ध घमासान सखी।
पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ, दहला दे ब्रह्माण्ड सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को, रच दे लंकाकाण्ड सखी।''[11]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ अबलाओं के आंचल में अमृत–सा दूध व आँखों में अश्रुधारा देखकर उनकी दीन स्थिति को अभिव्यक्त किया था, वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान उन्हीं अबलाओं को वीरांगना घोषित करती हैं। साथ ही साथ उनसे यह अपील भी करती हैं कि जब देश की आन पर संकट आ पड़े और मर्द अपनी मर्दानगी भूल जाए तो ये पंद्रह कोटि की असहयोगिनियाँ हाथों में शमशीर लिए ब्रह्माण्ड को भी दहला सकती हैं। तभी उन्होंने अपने काव्य 'पुरस्कार कैसा' में अपनी उपस्थिति दर्शायी है–

''क्षत्राणी हूँ, सुख पाने दे, अरुणामृत की धारों से
बनने से इतिहास देश का पानी चढ़े दुधारों से।''[12]

स्वाधीनता प्रेमी कवयित्री की लेखनी से निकल कर कविता लोक जुबान पर केन्द्रित हो जाती है, यही सुभद्रा कुमारी चौहान की विशेषता है। द्विवेदी युगीन अभिव्यंजना शैली के सहारे उन्होंने गम्भीर बातों को भी सहज एवं सरल शब्दावलियों में पिरो कर अपने रचना संसार का फलक तैयार किया है। कम शब्दों में कहें तो उनकी कविता में वह आवेग है जो लोकचित्त की तरलता को सहज प्रवाह दे देता है। सम्भवतः तभी देश के नौजवान अपनी अकर्मण्य उदासी को ठोकर मार बलि वेदी पर चढ़ जाने से नहीं सकुचाते।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की देशप्रेम विषयक कविताओं में स्वतंत्रता संघर्ष में भागीदारी करने वाले शहीदों की वीरता और आत्मोत्सर्ग का वर्णन है। कहना न होगा कि उन्होंने पुरातन रूढ़ियों व परम्पराओं के जंजाल को उछिन्न कर समाज के निचले तबकों तक देशभक्ति की आवाज पहुँचाने का जो अविस्मरणीय कार्य अपने कविताओं के माध्यम से किया, वह निश्चय ही

अद्वितीय है। अंत में, महादेवी वर्मा के शब्द उधार लेकर कहें तो– ''बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है, क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखा' बनकर उसे असाधारण कर देती है.... अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस कर चूर–चूर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज सम्भव नहीं है।''[13]

सन्दर्भ–सूची :–

1. चौहान, सुभद्रा कुमारी, झांसी की रानी की समाधि पर, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 27।
2. कुकुरेती, हेमन्त, नवजागरणकालीन कवियों की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 149–150।
3. चौहान, सुभद्रा कुमारी, विजयादशमी, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 32।
4. चौहान, सुभद्रा कुमारी, वीरों का कैसा हो वसंत, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 24।
5. चौहान, सुभद्रा कुमारी, झांसी की रानी की समाधि पर, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 27।
6. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 103।
7. चौहान, सुभद्रा कुमारी, लोहे को पानी कर देना, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 57।
8. चौहान, सुभद्रा कुमारी, जालियाँवाले बाग में बसंत, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 90।
9. चौहान, सुभद्रा, कुमारी, मेरे पथिक, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 90।
10. चौहान, सुभद्रा कुमारी, मेरे पथिक, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 90।
11. राजे, सुमन, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ. 263।
12. चौहान, सुभद्रा कुमारी, पुरस्कार कैसा, संकलन–मुकुल, तथा अन्य कविताएँ, भारतीय साहित्य संग्रह, पृ. 97।
13. वर्मा, महादेवी, पथ के साथी, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1956, पृ. 60–63

भीमाभूयाँ उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन

रघुनंदन महापात्र*

विविधता में एकता हमारे देश की विशेषता है। विविधता में एकता से तात्पर्य है कि एक ही समाज में हम तरह तरह के विश्वासों के लोग रहते हैं, तरह तरह के धर्म को मानने वाले, भिन्न–भिन्न संप्रदायों से संबंधित लोग, अलग–अलग विचारधाराओं के लोग, कई कई नस्लों के लोग एक दूसरे की भावनाओं और भरोसे को बिना आहत किए एक साथ भाईचारे को बरकरार रखते हुए रहते हैं। ये विशेषता हमें अभूतपूर्व ताकत देती है। ऐसे उदाहरण हैं इतिहास में जब हम सब एक हो कर अपनी शक्ति सामर्थ्य का प्रदर्शन किए हैं, अपनी एकता से विश्व को अभिभूत किए हैं। लेकिन साथ में ऐसे भी दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास से गुजरे हैं जब हम अपनी ओछी विचारों के चलते, भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण बंटे हुए नजर आते हैं। फलतः इसका परिणाम हमें बहुत भयंकर भूगतना पड़ा है।

ऐसे कई समुदाय हैं जिनमें से एक आदिवासी समुदाय है जिससे हम इतिहास में कदम से कदम मिलाकर, कंधे से कंधा मिलाकर, साथ साथ एक साथ कभी कभी जरूर चले थे लेकिन हमेशा ऐसा नहीं हुआ है और उन्हें कहीं न कहीं सामान्य सामाजिक समुदाय से कम आंकते थे, उनसे उपेक्षा का भाव रखते थे। इन्हीं कारणों से तो आज आदिवासियों के बारे में हमें अलग से चर्चा करना पड़ रहा है। उनके प्रचलित अभ्यासों में, विचारों में, संस्कृति में, परंपरा में कुछ ऐसे उच्च कोटि के लक्षण हैं जिनको इसी उपेक्षा के भाव के वजह से हमने बदकिस्मती से नजरंदाज कर दिया था। आज ये हमारी सद्‌बुद्धि है और बेशक खुशकिस्मती है कि इतिहास के घटनाओं के जो इन (उपन्यासों, कहानियों) रूपों में लेखा जोखा है, उससे कुछ सिखने जानने के लिए आशायी हैं।

आदिवासी जीवन को लेकर ओड़िआ साहित्य में 'भिमाभूयाँ' सर्वप्रथम उपन्यास है जो सन् 1908 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें रचनाकार श्री गोपालबल्लभ दास ने आदिवासियों के अच्छे बुरे गुणों जैसे बड़ों का सम्मान करना, प्रेम करना, त्याग करना, राज भक्ति, वीरता और विचारहीनता आदि का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी परंपरा संस्कृति पर आलोकपात किया है साथ में एक रूढ़ सामाजिक व्यवस्था पर पुनर्विचार करने की ओर इशारा करते हैं। अनार्यों तथा आर्यों की सभ्यता और संस्कृति ओडिशा में तरह तरह से विभिन्न क्षेत्रों में मिलकर ओड़िआ जीवन को समृद्ध करता आया है। इसी मिश्र धर्म और संस्कृति को लेकर ओड़िशा का धर्म परंपरा और संस्कृति तैयार हुआ है। इसे जगन्नाथ धर्म और संस्कृति के नाम से जाना जाता है।[1] इसका आदिवासियों के संस्कृति पर स्वाभाविक असर है।

कुछ आदिवासी जातियां जैसे कंध, कोल्ह, भूयाँ, सांताल ओड़िशा के उत्तर भाग में देखने मिलते हैं और कुछ आदिवासी जातियां जैसे गदवा, परजा, कोया, गण्ड आदि ओड़िशा के दक्षिण भाग में देखने मिलते हैं। बालेश्वर जिला के मंगलपुर, साहावंदर और कामकुंड़ा के भूयाँ जाति के आदिवासी लोग शिक्षित सभ्य हो कर पैसे कमाकर उच्च जाति के समाज में जा मिले हैं। वे भूयाँ हो कर भी उन्हें कोई आदिवासी जैसा नहीं देखता, लेकिन कहीं कहीं भूयाँ जाति के लोग अपनी अच्छी जमीन और घर से खदेड़े जा कर घने जंगलों में रहने लगे। केन्दुझर जिला के भूयाँ इन्हीं में से हैं।[2] इनका केन्दुझर के राजा से अच्छा संपर्क था। युवराज को जब सिंहासन पर बिठाया जाता है, तब अपने भावी राजा को ये भूयाँ अपने कंधे पर बिठाकर लाते हैं, ऐसी परंपरा जमाने से चली आ रही थी। भूयाँ के युवराज को उठाकर लाकर बिठाने के बाद युवराज का राज्याभिषेक किया जाता है। उसके बाद राजा उन भूयाँओं के सर पर पुरस्कार स्वरूप साड़ी बांधते हैं। राजा

* स्नातकोत्तर (हिंदी), नेट्, पूर्व छात्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

भूयाँओं के सरदार का निर्वाचन कराते हैं। भूयाँ अपने राजा को भगवान जैसा मानते हैं और उनकी पूजा करते हैं। बड़े राजभक्त होते हैं।[3]

युवक युवतियों के 'चांगुनृत्य', 'ड़ालभंगानृत्य' भूयाँओं के अति प्रिय उत्सव हैं। भूयाँओं के 'माघपोड़' त्योहार से इस उपन्यास का आरंभ होता है। तीन दिन के मौज मस्ती के बाद चौथे दिन कई गांवों के आमंत्रित अनामंत्रित युवक युवती बुजुर्ग सब पधारते हैं। भूयाँ सरदार का द्वार शत्रु मित्र परिचित अपरिचित सभी के लिए खुला रहता है। आमंत्रित हो या न हो सभी का समादर से स्वागत और आतिथ्य अवश्य की जाती है। किसी के साथ भी कोई भी गलत बर्ताव नहीं किया जाता, चाहे छोटे हों बड़े हों, जात के हों या बिनजात के हों सब एक जैसे होते हैं। इससे भूयाँओं के भाईचारे का पता चलता है। उपन्यासकार के शब्दों में, 'ऐसे परम पवित्र आनंद के तरंग में कम–खर्ची स्वभाव छूट जाता है। बंदी कारागार से मुक्त होता है और शत्रु भाव नहीं रहता।'[4] एक एक गुट आकर चांगुनृत्य, चांगुगीत, चांगुबाजा नाचते गाते बजाते हैं और फिर दूसरे गुट को मौका देते हैं। इस प्रकार इनका ये उत्सव चलता है। फिर सब भोजन करते हैं, पीने की भी खूब व्यवस्था रहती है। जैसे अग्नि सब ग्रहण कर के किसी का गुण दोष नहीं बताती, वैसे ही भोजन कर के सभी में संतोष आनंद की लहर चलती है। जिसके लिए जो चहेता है वो उसे खुश कराने में लगा हुआ रहता है। कोई सुखी होने में तो कोई सुखी कराने में, कोई मस्ती करने में तो कोई मस्ती देखने में सुख पाता है। युवक युवतियाँ प्यार करने में मजे करने में खुश होते हैं तो बुजुर्ग उसे देखकर खुश होते हैं। कोई किसी के सुख में बाधा नहीं डालता। कोई किसी का विरोध नहीं करता। युवक युवतियाँ अलग अलग गुट में अलग अलग गांव जाकर चांगुनृत्य करते हैं और वहाँ अपने अपने जीवनसाथी चुनते हैं। इसका मतलब यह निरा स्वेच्छाचारिता नहीं है माता पिता ही अंतिम निर्णय करते हैं। इस प्रक्रिया में कहीं किसी पर जबरदस्ती होने की संभावना बहुत कम होती है। सबसे अच्छी बात यह होती है कि लड़की को अपने पति चुनने के लिए छुट होती है तथा विकल्प भी अधिक होते हैं जो की आज भी हमारे समाज में इस चीज की कमी है। आज भी ऐसे बहुत जगह हैं जहाँ लड़की को इतनी स्वच्छंदता नहीं मिलती। इनके इस परंपरा में आधुनिकता स्पष्ट देखी जा सकती है। भूयाँओं के समाजिक व्यवस्था में स्त्री को पुरुष से कम अवसर नहीं मिलता अपने वर चुनने में। बड़े बुजुर्गों के सामने प्रेमक्रीड़ा, शादी के लिए चांगुनृत्य से प्रेमी और प्रेमिका का वन गमन इनके लिए शंका, भय, निंदा, घृणा का विषय नहीं है। अपने अपने मन का जीवनसाथी चुनना चांगुनृत्य का मुख्य उद्देश्य है। भूयाँ किसी पाठशाला में नहीं जाते उनके बुजुर्ग उन्हें शिक्षा देते हैं, उनके बुजुर्ग ही उनके लिए शिक्षक हैं गुरु हैं। भूयाँ युवक युवती बहुत सारी चीजें देखते हैं सिखते हैं पर अपने बड़ों का अवहेलना नहीं करते, न उनके ज्ञान को तुच्छ समझते हैं, उनका यथोचित सम्मान करते हैं, उन्हें मानते हैं। बड़े बुजुर्ग युवक युवती को समझते हैं, उनका सुख का ध्यान रखते हैं, उसी में अपना सुख समझते हैं। आधुनिक सोच का एक और प्रमाण है यह।

उपन्यास का मुख्य पात्र 'भीमा' जो आदिवासियों के भूयाँ जाति का एक युवक होता है। वो और उसका बड़ा भाई एक ही लड़की से प्रेम करते हैं। लड़की के मन में दोनों के प्रति प्रेम भाव होता है। ऐसे में लड़की के पिता और भीमा के पिता ने लड़की की शादी भीमा के बड़े भाई से करा देते हैं। मन में दुःख होते हुए भी भीमा बिना आपत्ति के पिता के निर्णय को स्वीकार करता है और अपने पितृभक्ति का प्रमाण देता है। एक दिन उनके और उनके पड़ोसी राज्य के मध्य युद्ध छिड़ जाता है, तब भीमा अपने पड़ोसी राज्य के राजा के सैन्यदल में होता है। अपने विरता का प्रदर्शन करते हुए वो एक अहम प्यादे को बंदी बना लेता है और इसके कारण युद्ध जीत जाते हैं। युद्धोपरांत भीमा को पुरस्कार प्रदान किया जाता है और भीमा को कुछ युद्ध बंदियों का सर कलम करने का राजा आदेश देते हैं। जब भीमा को पता चलता है कि उन युद्धबंदियों में उसके पिता और भाई भी शामिल हैं जिनका सर कलम करने का उस पर आदेश है तो वो अपने पिता और भाई के साथ बहुत रोता है। एक तरफ राजाज्ञा तो दूसरी तरफ बाप भाई, इस द्वंद्व में वो अपने बाप भाई को नहीं मारता, कहीं छिपा देता है। भीमा को उसके बाप और भाई सुझाव देते हैं कि उन्हें मारने के बजाए किसी और दो लोगों को मारकर उनके सिरों को पेश कर दे तो वो बच जाएंगे। इस पर भीमा जवाब देता

है– भीमा के शब्दों में, 'तो और दो मस्तकों की बात कह रहे हो। मैं जा कर देखता हूं। तुम यहीं छुपे रहो।'[5] इसमें आदिवासी भीमा का परिवार मोह में अंधा हो कर औरों को मार देना निश्चय ही उसके व्यक्तित्व का घृणित पहलू है।

राजा बीमार पड़ जाते हैं कोई वैद्य उन्हें ठीक नहीं कर पाता है और इस खबर से परेशान हो कर भीमा अपने राजा से मिलता है और अपने परिचित एक वैद्य को बुलवा कर राजा की बीमारी का इलाज कराने की आज्ञा ले कर वापस लौटता है। अपने पिता को वैद्य के रूप में वह राजा के पास ले कर आता है। और राजा के आज्ञानुसार उसके पिता इलाज करते हैं और भीमा वहीं बैठा रहता है। तब राजकुमारी अपने पिता को देखने के लिए बार बार वहाँ आती रहती है। भीमा और राजकुमारी की नजरें एक दूसरे से मिलती हैं और दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लग जाते हैं। जैसे जैसे राजा का स्वास्थ्य ठीक होता जा रहा था उनका प्रेम परवान चढ़ रहा था। अगली सुबह राजा स्वस्थ हो जाते हैं और वैद्य (भीमा के पिता) पर प्रसन्न होते हैं। भीमा के कारण ही राजा का इलाज संभव हो पाता है। इस घटना में भीमा की अमूल्य राजभक्ति साफ दिखता है। जल्द ही भीमा का अपने पिता और भाई को बचाकर राजा की अवज्ञा करने की बात खुल जाती है। इसपर भीमा अपना अपराध स्वीकार करता है मरने के लिए प्रस्तुत हो जाता है और अपने पिता और भाई को मृत्यु दण्ड न दिया जाए ऐसा गुहार लगाता है। अपने परिजनों को बचाने के लिए वो अपने प्राणों की बलीदान देने के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ उसके निस्वार्थ और त्याग भाव निश्चय ही प्रशंसा के योग्य है।

राजा की अवज्ञा के अपराध में राजा भीमा को मृत्यु दण्ड देने का आदेश देते हैं। तब राजकुमारी राजा से अनुरोध करती हैं और भीमा की जान बचा लेती हैं। इस घटना के पश्चात भीमा को महल में बुलाया जाता है और भीमा से राजकुमारी उसके युद्ध में वीरता प्रदर्शन से मिला पुरस्कार मांग लेती हैं और अपना मांगटीका भीमा को देकर कहती हैं कि जब वो अपने इंद्रियों को वश में करके निर्विकार निर्मल प्रेममय पुरुष बनकर मांगटीका लेकर उनके पास आएगा तब उसे उसके पहले वाले पुरस्कार को परिवर्धित कर के जितेंद्रिय पद के पुरस्कार से विभूषित किया जाएगा। बहुत दिनों बाद भीमा और राजकुमारी का तय शर्त पर मुलाकात होती है। तब तक दोनों संपूर्ण प्रेममय बन चुके होते हैं। उनका प्रेम शारीरिक न हो कर आत्मिक नजर आता है। उनके प्रेम का अंत त्याग में हुआ है।

उस समय ये उपन्यास देश में रीति काव्य का सुलभ प्रणय गाथा पढ़ने के आदी पाठकों के मन को अवश्य उद्वेलित कर दिया होगा।[6] आदिवासी भीमा और राजकुमारी के प्रेम का वर्णन कर के एक परिवर्तन की और संकेत किया गया है, स्थापित सामाजिक रूढ़ व्यवस्था के उपर प्रहार किया गया है। आदिवासी भूयाँओं के कुछ सामाजिक प्रथाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। जगह जगह एक आदिवासी की उदात्त भावनाओं का परिचय मिलता चला जाता है जो हमेशा अनुकरणीय रहेंगे। इसके साथ उसके व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष का भी चित्रण हुआ है। 'भीमाभूयाँ' उपन्यास से आदिवासी जीवन के कईं पहलू प्रतिबिंबित होते हैं।

संदर्भ–सूची :–ण

1. मुखबंध, भीमाभूयाँ, गोपालबल्लभ दास, संपादिका– श्रीमती सरला देवी, प्रकाशक– विद्यापुरी, नवीन संस्करण 1964, पृ –घ।
2. वही, पृ.–घ।
3. वही, पृ.–ङ।
4. भीमाभूयाँ, पृ 04।
5. वही, पृ 74।
6. Odia Upanyasa Sahityara Parichaya, Published by& Sri Govind Charan Patra, ODISHA BOOK STORE, Second Edition 1999, Page no- 64–65.

৯★৩

भारत का विश्व-बंधुत्ववादी सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद
(रामधारी सिंह दिनकर के गद्य साहित्य के आलोक में)

तरुण पालीवाल*

सारांश :– आधुनिक विश्व अनेक प्रकार के विचारात्मक चक्रवातों के मध्य उलझा हुआ है। इसमें से सबसे भयावह और गंभीर चक्रवात राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रतीत होता है। इसका आरंभ औपनिवेशिक विचारों के साथ हुआ। पहले–पहल यह भौगोलिक, राजनैतिक और आर्थिक पक्षों तक सीमित था। जिसके परिणामस्वरूप विश्व के अनेक देशों ने परतंत्रता का विष पिया। दो विश्वयुद्ध भी इसी के दुष्परिणाम है। किंतु, अब यह कुत्सित विचारधारा संस्कृति की ओर पैर पसारने लगी है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति को विश्व संस्कृति बनाने पर आतुर है। इससे राष्ट्रों के मध्य प्रतिद्वंद्विता का भाव उत्पन्न हो गया है। जो द्वंद्व शस्त्रों से आरंभ हुआ, वह विचारधारा की कसौटी पर आ पहुँचा है। दिनकर विश्व की इन विकट परिस्थितियों से परिचित दिखाई देते हैं। वे भारतीय राष्ट्रवाद के समर्थक इसलिए नहीं हैं, क्योंकि वे भारतीय है, प्रत्युत, इसीलिए हैं क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद का मूलभाव विश्वबंधुत्व है। जिसका जयनाद भारतीय संस्कृति के स्वरों में सदियों से हो रहा है।

भूमिका :– रामधारी सिंह दिनकर का साहित्य विषयों की दृष्टि से जीवन के प्रत्येक भाव–विचार से परिपूर्ण हैं। अर्द्धशतकीय वर्षों से अधिक का रचना–काल तथा गद्य–पद्य में लगभग उतनी ही रचनाएँ। जिनमें जीवनानुभवों के विविध रंग चित्रित हैं। जिसमें से सबसे स्पष्ट, गहरा और प्रबल रंग संस्कृति और राष्ट्रीयता का उभरता है। इन भावों से ओतप्रोत भावधारा 'विजय–संदेश' आरंभ होकर 'हुंकार' भरती हुई 'कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' तक जाती है। डॉ. जयसिंह 'नीरद' दिनकर के राष्ट्रीय काव्य के संदर्भ में लिखते हैं कि, "दिनकर का राष्ट्रीय काव्य परिमाण की दृष्टि से उनकी अन्य रचनाओं की तुलना में बहुत अधिक है। अपनी आवेगधर्मिता, प्रासादिकता तथा विस्तार से उसने जन–मन को निरंतर प्रभावित भी किया। यही कारण है कि उनके काव्य का यह पक्ष अनेक विशेषताओं से मंडित है। कवि ने न केवल हिंदी के राष्ट्रीय काव्य की संपूर्ण परंपरा की प्रमुख उपलब्धियों को अपनी रचनाओं में आत्मसात किया है, बल्कि बदलते हुए युग के संदर्भों के अनुरूप उसने राष्ट्रीयता के अनेक नवीन आयाम भी उद्घाटित किए हैं।"[1] दिनकर के राष्ट्रीय भावों का प्रस्फुटन पद्य के साथ गद्य साहित्य की विविध विधाओं में भी हुआ है। 'संस्कृति के चार अध्याय' राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाव–विचारों का गौरवग्रंथ है। इसके इतर 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता', राष्ट्रभाषा आंदोलन और गाँधीजी', 'भारतीय एकता', 'आधुनिक बोध' आदि चिंतनपरक निबंध संकलनों में दिनकर राष्ट्रीय संस्कृति पर अपने विचार प्रकट करते हैं। सबसे पहले 'राष्ट्र' शब्द को विवेचित करना महत्वपूर्ण हो जाता है। 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे पहले संस्कृत भाषा में किया गया है। इसका पहला प्रयोग ऋग्वेद के दसवें मंडल के एक सौ तिहत्तरवें सूक्त के पहले, दूसरे और पाँचवें श्लोक में किया गया है–

> आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्।।1।।
> इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः। इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।।2।।
> ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः। ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।5।।[2]

व्याकरण की दृष्टि से इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'रासृ' या 'राजृ' धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय के योग से हुई है। यूरोप में 'नेशन' शब्द का प्रयोग सोलहवीं सदी में किया गया था। अतः व्युत्पत्ति और ऐतिहासिक

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, पिन–313001।**

प्रयोग की दृष्टि से 'राष्ट्र' शब्द पूर्णतः भारतीय है। इसका सबसे प्राचीन प्रयोग संस्कृत भाषा में किया गया है।

रूपा गुप्ता भारतीय वांग्मय के अनुसार राष्ट्र की अवधारणा को परिभाषित करती है– "राष्ट्र का आशय उस विशेष भूखंड से है, जहाँ के निवासी एक संस्कृति के सूत्र से आबद्ध है। जहाँ एक संविधान है और जहाँ के निवासियों में अपने राष्ट्र के प्राचीन पुरुषों, साहित्यों और कलाओं के प्रति श्रद्धा, स्नेह और सहानुभूति के भाव विद्यमान है।"[3] प्राचीन भारत की भौगोलिक सीमाओं के वर्णन वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों में मिलते हैं। उस संपूर्ण भूखंड की भाषा संस्कृत थी। उसका संविधान सनातन धर्म था। यहाँ सनातन संस्कृति प्रचलित थी। इसी संदर्भ में राष्ट्र का अर्थ एक संस्कृति के रूप में लिया गया। जबकि, वर्तमान भारत में पिछले तीन–चार हजार वर्षों में अनेक जातियों का आगमन हुआ है। वह लगभग डेढ़ सदी की धार्मिक–राजनैतिक दासता भुगत चूका है। अतः उसमें अब राष्ट्र संबंधी अवधारणा ये सूत्र में देखने में नहीं आते हैं। विश्व में भारतीय राष्ट्रवाद विवधता के साथ एकता का अभूतपूर्व उदाहरण है। इस एकता के लिए जो भाव उत्तरदायी है उसे प्रकट करते हुए डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं कि, "जब हम किसी भू–भाग को राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित करते हैं तो उसके मूल में यह तथ्य विद्यमान होता है कि उस भू–भाग में जो कुछ भी है वहाँ के निवासी, उनकी संस्कृति–सभ्यता, उनका चिंतन, सब कुछ एक आभ्यंतरिक लय से आबद्ध है। यह आंतरिक एकबद्धता ही किसी भू–भाग को राष्ट्र का दर्जा प्रदान करती है।"[4] संपूर्ण भारतीय जनमानस में एक प्रकार की आभ्यंतरिक लय दिखाई देती है।

चूँकि, भारत ने लगभग बारह सौ वर्षों की दीर्घकालीन दासता झेली है। अतः अंग्रेजों ने उनको यह समझाया कि भारत पूर्व में कभी एक राष्ट्र था ही नहीं। वह राष्ट्रवाद का भाव से परिचित नहीं था। कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी जनता में इसी असत्य विचार का भ्रम फैलाया। महात्मा गाँधी उस समूचे वर्ग की शंका का निराकरण करते हैं– "यह आपका भ्रम है। यह बात तो हमें अंग्रेजों ने सिखाई है कि हम पहले एक राष्ट्र न थे और हमें अपने राष्ट्र को राष्ट्र बनाने में सदियां लग जाएंगी। यह बात नितांत निराधार है। अंग्रेज जब हिंदुस्तान में नहीं आये थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे। हमारे विचार एक थे, हमारी रहन–सहन एक थी, तभी तो वे सारे देश पर अपना एक छत्र राज्य स्थापित कर सके। भेद–बिलगाव तो पीछे उन्होंने पैदा किया।"[5] अतः गाँधीजी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद के जनक न अंग्रेज थे और न उनसे पहले आने वाली जातियाँ थी।

दिनकर भारत में राष्ट्रवाद के भाव का जन्म विचारों की एकता को बताते हैं। जिसका पोषण–पल्लवन यहाँ के दर्शन और साहित्य ने किया है– "विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य है, जो अनेक भाषाओँ में लिखे जाने पर भी अंत में जाकर एक ही साबित होते हैं।"[6] वेदों में भारतवर्ष के लिए आर्यावर्त शब्द का प्रयोग किया गया है। किंतु, दिनकर इसको उपयुक्त नहीं मानते हैं– "आर्यावर्त का भौगोलिक अर्थ सारा भारतवर्ष नहीं था। वह दक्षिण में अधिक से अधिक विंध्य पर्वत तक पहुँचता था। किंतु, भारत विंध्याचल पर समाप्त नहीं होता। वह कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। इसीलिए, आर्यस्थान, आर्यावर्त आदि नाम गलत है। इस देश का सही नाम भारतवर्ष, हिंदुस्तान या इंडिया ही हो सकता है।"[7] आर्यावर्त शब्द में संपूर्ण भारत की सीमाओं का परिचय नहीं मिलता है, इस कारण दिनकर इससे अधिक उपयुक्त भारतवर्ष, हिंदुस्तान या इंडिया शब्द को प्रश्रय देते हैं। वे इस भू–भाग के भारतवर्ष नाम के पीछे की एक कथा का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं– "जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए है। अंतिम मनु नाभिराम थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभदेव हुए, उन्होंने अहिंसा और अनेकांतवाद आदि का प्रवर्तन किया।... भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।"[8] इसके इतर पुराणों और महाकाव्यों में एक अन्य कथा भी प्रचलित है। जिसके अनुसार पुरु वंश में राजा दुष्यंत और ऋषि विश्वामित्र की पुत्री शकुंतला के पुत्र का नाम भरत था। जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। भारत के नाम की कहानी चाहे जो हो लेकिन किसी प्रतापी

राजा भरत के नाम पर इसके नामकरण को सभी स्वीकार करते हैं। दिनकर वायु पुराण में उद्धृत श्लोक के आधार पर उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र के मध्य के भू–भाग को भारत नाम से संबोधित करते हैं–

उत्तर यत्समुद्रस्थ हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।[9]

अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम, श्रद्धा, समर्पण और बलिदान के भाव भारतीय साहित्य में वेदों से प्राप्त होते हैं। पुराणों, महाकाव्यों आदि में भी अनेक स्थानों पर मातृभूमि हेतु आत्मोत्सर्ग करने को सबसे बड़ा पुण्य बताया गया है। दिनकर भारतीय राष्ट्रवाद के सबसे बड़े तथा सबल प्रहरी रामायण और महाभारत महाकाव्यों को मानते हैं– "सारा देश का साहित्य आज भी रामायण और महाभारत का क्षीर–पान कर बलिष्ठ हो रहा है, जिससे आप–से–आप यह सत्य ध्वनित हो उठता है कि भारत की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही संस्कृति है, जिसकी सेवा विभिन्न भाषाओँ में की जा रही है।"[10] भारतीय साहित्य ने भारत को सांस्कृतिक एकता प्रदान करके उसको पुष्ट करने का स्तुत्य कार्य किया है।

भारतीय राष्ट्रवाद का भव्य महल संस्कृति की सशक्त और दृढ़ नींव पर खड़ा हुआ। इस कारण इसमें समन्वय और समानता का भाव मूल रूप से विद्यमान रहा है। इसी के प्रभाव में हजारों वर्षों में जो भी जातियाँ यहाँ आई उनका संस्कृति यही की हो गई। दिनकर लिखते हैं– "ईरानी और यूनानी लोग, पार्थियन और बैक्ट्रियन लोग, सीथियन और हूण लोग, मुसलमानों से पहले आनेवाले तुर्क और ईसा की आरंभिक सदियों में आनेवाले ईसाई, यहूदी और पारसी, ये सब–के–सब, एक के बाद एक, भारत में आए और उनके आने से समाज में एक हलके कंपन का भी अनुभव किया, मगर, अंत में आकर, वे सब–के–सब भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में विलीन हो गए। उनका कही कोई अलग अस्तित्व नहीं बचा।"[11] पिछले तीन–चार हजार वर्षों में आने वाली अनेक जातियाँ भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सम्मुख नतमस्तक हुई। वे इसे आत्मसात करती चली गई। वर्तमान भारत में उनका कोई अलग अस्तित्व बचा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है।

इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निर्माण और पोषण में यहाँ के भूगोल ने भी योगदान दिया। पश्चिम में रेगिस्तान, पूर्व में हिमालय का निम्न ढाल, दक्षिण में समुद्र और उत्तर में विशाल हिमालय, इससे यहाँ की अलग प्राकृतिक सीमा निर्मित होती है। इस सीमा के मध्य एक प्रकार की एकता का भाव स्थापित है। हजारों वर्षों से यह सीमा अक्षुण्ण बनी हुई है। दिनकर लिखते हैं कि, "पहाड़ों और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश में जो मौलिक एकता का भाव है, वह हमारे भूगोल की देन है। भीतर से कुछ–कुछ बँटा हुआ और बाहर से बिलकुल एक। भारत की यह विशेषता बहुत पुरानी है।"[12] दिनकर अपनी धारणा को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि, "मौर्यों ने अफगानिस्तान (कंधार) को भारत में मिलाया था, मगर कंधार भारत में रखा नहीं जा सका। यूनानियों ने पंजाब को काटकर कंधार में मिला लिया था, मगर उनकी भी कोशिश बेकार हुई और पंजाब भारत में वापस आ गया। महमूद गजनी ने काबुल में बैठकर भारत पर राज्य करना चाहा, लेकिन इस अस्वाभाविक कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। पठान बादशाहों ने दिल्ली में बैठकर पश्चिमोत्तर सीमा के पार की जमीन पर हुकुमत करनी चाही, मगर, वे भी नाकामयाब रहे। सिंध पर जब पहले–पहल मुसलमानों ने कब्जा किया तब वे भी चाहते थे कि सिंध ईरान का अंग रहे और वे ईरान से ही उस पर शासन चलाएँ, लेकिन, यह भारत के भूगोल के प्रतिकूल बात थी, इसीलिए उनकी भी कोशिश बेकार हुई।"[13] दिनकर द्वारा वर्णित उदाहरणों और प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में यहाँ की भौगोलिक दशाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारतीय राष्ट्रवाद की यात्रा स्वयं के सांस्कृतिक और भौगोलिक एकता के सूत्र तक ही विश्राम नहीं करती है। वह इससे कहीं अधिक कठिन और दूरगामी श्रम के मार्ग पर निकल पड़ती है। जिस मार्ग की वर्तमान विश्व को अत्यंत आवश्कता है। वह दुर्गम मार्ग विश्व–बंधुत्व के भाव का है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों आदि में इस भाव का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में समस्त पृथ्वी को माता कहकर संबोधित किया गया है। 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथ्विया' अर्थात यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इस प्रकार पृथ्वी पर जन्मा प्रत्येक मनुष्य आपस में बंधू है। महा–उपनिषद के छठे अध्याय के बारहवें श्लोक में भारतीय

राष्ट्रवाद का भरतवाक्य उद्धृत है। जिसमें मेरा–पराया, छोटा–बड़ा आदि सभी भावों को भूलकर उदार हृदय से संपूर्ण पृथ्वी को एक परिवार मानने की बात कही गई है–

अयं निजः परोवेत्ति गणना लघु चेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम।।[14]

भारतीय मनीषा में आरंभ से ही विश्व–बंधुत्व के विचार की अनुगूँज सुनाई देती है। दिनकर इसका समर्थन करते हुए कहते हैं– "राष्ट्रीयता भारत के लिए फिर भी, कुछ हाल की चीज है, किंतु, अंतर्राष्ट्रीयता के भाव तो अपने देश में हमेशा से विद्यमान थे। भारत में श्रेष्ठ मनुष्य का लक्षण ही यह माना जाता था कि वह संपूर्ण पृथ्वी को अपना कुटुंब समझे, मनुष्य–मनुष्य में कोई भेद–भाव नहीं रखें और देशों के भौगोलिक भेदों को भूल जाए।"[15] वर्तमान में विश्व–मानवता का नारा दिया जा रहा है। जिसे सबसे पहले भारतीयों ने दिया और उसपर अमल भी किया। यहाँ तक कि कल्याण की यह भावना केवल मनुष्य–जाति तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु भारतीयों ने समस्त जीव–जगत के मंगल की कामना की है। वृहदारण्यक उपनिषद में उल्लिखित श्लोक में ऐसे ही विचार प्रकट होते है–

ॐ सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत।।[16]

दिनकर भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा उसकी संस्कृति और धर्म को मानते हैं। जो विश्व–बंधुत्व और विश्व–कल्याण जैसे महान विचारों की नींव पद खड़ा है। वे लिखते हैं– "भारत का मन हमेशा से राष्ट्रीय कम अंतर्राष्ट्रीय अधिक रहा है। प्राचीनकाल में यहाँ राष्ट्रीयता के जो भाव विकसित हुए, उनका आधार राजनीति और अर्थशास्त्र नहीं, प्रत्युत, संस्कृति और धर्म थे। भारतवासी अपने राष्ट्र पर अभिमान तो करते थे, किंतु, इस कारण नहीं कि वह बली और समृद्ध देश था, प्रत्युत इसलिए कि उसकी संस्कृति महान थी, वह अध्यात्म की कर्मभूमि थी और देवता वहाँ देह धरकर प्रकट होने के लिए लालायित रहते थे।"[17] इसी के प्रभाव से सनातन संस्कृति और धर्म पर आधारित भारतीय राष्ट्रवाद सदियों से अक्षुण्ण अस्तित्व के साथ विद्यमान है।

इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दिशा राजनैतिक राष्ट्रवाद की ओर अंग्रेज ईसाई जाति के प्रभाव के कारण हुई। दिनकर लिखते हैं– "भारतीय और यूरोपीय संस्कृतियों के संघर्ष से पिछली शताब्दी में भारत में जो महान सांस्कृतिक जागरण हुआ, उसी के परिणामस्वरूप नवीन भारत का जन्म हुआ। यूरोप के सांस्कृतिक आक्रमणों से भारतीयता की रक्षा करने के क्रम में भारत में पहले सांस्कृतिक राष्ट्रीयता जन्मीं, पीछे वही राष्ट्रीयता राजनीतिक राष्ट्रीयता में परिणत हो गई।"[18] उन्नीसवीं सदी में हुए भारतीय पुनर्जागरण ने भारत की तंद्रा भंग की। उसमें नवीन ऊर्जा का संचार हुआ। इस जाग्रत भारत की पहली वाणी राजा राममोहन राय बने। उनके सुधारवादी आंदोलन में जातीय गर्व का मिश्रण स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया। इस चेतना की सबसे प्रबल ज्वाला स्वामी विवेकानंद थे। उन्होंने भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति के प्राचीन, विराट और अद्‌भुत स्वरूप के दर्शन करवाए। दिनकर उन्हें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पिता कहते हैं– "स्वामी जी की वाणी ने हिंदुओं में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि उन्हें किसी के सामने मस्तक झुकाने या लज्जित होने की आवश्यता नहीं है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनैतिक राष्ट्रीयता बाद को जनमी है, और इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के पिता स्वामी विवेकानंद है।"[19] आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद ने जिस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रचार–प्रसार किया, वह यूरोप से नहीं जनमा, बल्कि वह पूर्णतः भारतीय था। उन्होंने जिस भारत का परिचय स्वयं भारत और विश्व को करवाया, वह प्राचीन भारत था। जिसने पहले–पहल विश्व में बंधुत्व और कल्याण की बात कही।

किंतु, उस समय भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। इस समय विश्व–बंधुत्व की बात करना उसके लिए बेमानी थी। सांस्कृतिक जागरण के यज्ञ में बाल गंगाधर तिलक ने राजनीति की अग्नि प्रज्जवलित की। दिनकर उनके अवदान को उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि, "स्वामीजी, प्रधानतः धर्म के मनुष्य थे एवं उनका उद्देश्य मनुष्य–मनुष्य को समीप लाकर विश्व–मानव के जन्म को संभव बनाना था।

अतएव, विश्व–मानवता के जो गुण उन्हें भासित हुए, उन्हें हिंदुत्व में प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया से ही उन्होंने हिंदुत्व का सुधार किया। किंतु, तिलकजी, प्रधानतः समाज और राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिंदुओं की पतनशीलता से दुखी थे। वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। वे हिंदू–जाति की निवृत्ति भावना से आकुल और उसकी कर्तव्य विमुखता से अधीर थे।"[20] स्वयं के राष्ट्र में पिछले डेढ़ हजार वर्ष से परतंत्र हिंदू–जाति का मनोबल अत्यंत क्षीण हो गया था। उसकि मनोवृत्ति बलहीन और कर्महीन हो चुकी थी। स्वामी विवेकानंद ने उसकी आध्यात्मिक आत्मा को झकझोर कर जगाया और तिलकजी ने उसकी राजनैतिक चेतना का निर्माण किया।

इस राजनैतिक चेतना को बनाने और विकसित करने के लिए तिलक ने 'भागवत गीता' के ज्ञान का उपयोग किया। इस ग्रंथ पर लिखी उनकी टीका 'गीता रहस्य' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों में ठीक उसी प्रकार स्वाभिमान और स्वराज्य के लिए युद्ध करने की प्रेरणा जाग्रत की, जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन में की थी। इस कार्य में वे सफल रहे। उनकी प्रेरणा से ही भारतीयों में जातीय गर्व के साथ स्वराज्य संबंधी उग्र विचारों का प्रचार–प्रसार हुआ था। 'स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे' इसका उद्घोष करने वाले पहले व्यक्ति तिलक थे। अतः आधुनिक भारत में जन्मा राजनैतिक राष्ट्रवाद भारतीय साहित्य की प्रेरणा से निर्मित हुआ। इन्हीं अर्थों में यह विचारधारा और इससे उत्पन्न परवर्ती आंदोलन पूर्णतः भारतीय है। हालाँकि, पराधीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप यह लहर उठी थी, लेकिन, इसका मूल भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समुद्र का ही था।

भारतीय राजनैतिक राष्ट्रवादी विचारधारा का सूत्रपात तिलकजी ने किया। कालांतर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी राजनैतिक संस्था अस्तित्व में आई। जिसने इसमें विस्तार किया। इसके साथ ही अनेक राजनैतिक संगठन अस्तित्व में आए। मूलतः यह विचारधाराएँ दो अलग मार्गों पर आगे बढ़ने लगी। एक धारा ने उग्र विचारों का आश्रय लिया, दूसरी ने अहिंसक विचारों का। किंतु, दोनों का लक्ष्य एक ही था भारतभूमि को विदेशी शासन से मुक्त करवाकर स्वदेशी शासन स्थापित करना। इसमें दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, विपिनचंद्र पाल, श्रीमती एनी बेसेंट, विनायक दामोदर सावरकर, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस आदि सैकड़ों महान विभूतियों ने सहयोग दिया। भारतीय राष्ट्रवाद द्वारा राजनैतिक मार्ग चयन करने पर भी उसका सांस्कृतिक स्वरूप नहीं बदला।

निष्कर्ष :– भारतवर्ष के लिए राष्ट्रवाद कोई नवीन आधुनिक विचार नहीं है। किंतु, इसका उद्भव यहाँ कब हुआ, किसने किया? यह प्रश्न वर्तमान में भी अक्षुण्ण है। इसका पहले–पहल उल्लेख विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में हुआ है। वेदों के रचयिता तथा रचनाकाल को लेकर अनेक मत उपलब्ध है। ऐसे ही भारतीय संस्कृति के निर्माता और निर्माण–काल को लेकर भी कई सिद्धांत प्रचलित है। जब तक इनका कालक्रम तय नहीं होता तब तक भारत में राष्ट्रवाद के विचार आरंभ के पक्ष में कोई ठोस स्थापना नहीं दी जा सकती। लेकिन, दिनकर वेदों का संकलन–काल ईसा से पच्चीस सौ वर्ष से चौदह सौ वर्ष पहले मानते हैं। उनके दृष्टिकोण से भारत में राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रचलन इस कालखंड में तो स्वीकार किया जा सकता है। यह कालखंड स्वीकार न करने पर भी यह तो तय है कि भारतीय संस्कृति में यह अवधारणा सदियों पहले से प्रचलित है। जिसका पोषण–पल्लवन परशुराम, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, चाणक्य, शंकराचार्य, रामानंद, कबीर, तुलसी, विवेकानंद, गाँधी जैसे अनेक मनीषियों ने किया। जिसके मूल में विश्व–कल्याण का भाव निहित है। जिसकी वाणी में समस्त प्राणी–जगत के सुखी, समृद्ध और निरोगी होने के स्वर अक्षुण्ण है। इसका प्रमाण है कि भारतीय इतिहास में अनेक पराक्रमी सम्राट हुए। लेकिन, किसी ने भी अन्य राष्ट्रों को पराधीन कर विश्व–विजय दुःस्वप्न नहीं देखा। इसके पीछे भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही रहाँ जिसमें पृथ्वी को माता तथा इस पर जन्में सभी जन को बंधू के रूप में देखा जाता रहा है। विश्व–मानवता का जयघोष इसी की देन है।

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आत्मा सनातन धर्म–संस्कृति से निर्मित है। इसी कारण, आधुनिक भारत का नागरिक आज भी राम–राज्य का स्वप्न देखता है। इसकी पृष्ठभूमि राम और कृष्ण जैसे महान चरित्रों ने तैयार की है। महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद जैसे संतों ने इसकी आत्मा को विस्तार दिया है। वेदाचार्यों, उपनिषदकारों, महाकवियों आदि ने इसकी भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किया। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विश्व–कल्याण की भावनात्मक रश्मियों के आलोक में आधुनिक भारतीय मनीषा का पल्लवन हुआ। उसने अपनी पराधीनता से मुक्ति से सभी उपकरण प्राचीन भारत से ही प्राप्त किए। पाश्चात्य जगत ने सुप्त, बलहीन और कर्महीन भारतीयों की पराजित मनोवृत्ति को झकझोरा। इससे अधिक उनका कोई योगदान नहीं माना जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि पराधीनता से मुक्ति के लिए उठा राजनैतिक राष्ट्रवाद सदैव अपने भीतर विश्व–कल्याण की भावना लेकर चलता रहाँ भारतीय राष्ट्रवाद ने अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से कभी समझौता नहीं किया। अपनी भूमि की मुक्ति के लिए आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा के साथ विश्व–बंधुत्व का नारा भी आधुनिक काल में सबसे पहले भारतीयों ने ही लगाया।

संदर्भ सूची :–

1. जयसिंह 'नीरद' : *परंपरा, आधुनिकता और दिनकर,* अतुल्य पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2019 हार्डबाउंड, पृ.140–141
2. http://vedicheritage.gov.in/samhitas/rigveda/shakala-samhita/rigveda-shakala-samhita-mandal-10-sukta-173/ date:12/10/2019 time:6:18pm.
3. रूपा गुप्ता : *उन्नीसवीं सदी का साहित्य : विचारधारा और राष्ट्रवाद (अप्रकाशित शोध–प्रबंध),* जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, सत्र–2000, पृ.21।
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह : *राष्ट्रीय एकता का स्वरूप और रचनाधर्मिता, राष्ट्रीय एकता और रचनाधर्मिता (सं. प्रकाश आतुर),* राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सं.1989, हार्डबाउंड, पृ.09।
5. मोहनदास करमचंद गाँधी : *हिंद स्वराज्य (अनुवादक–कालिका प्रसाद),* सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2019, पेपरबैक, पृ.38–39।
6. दिनकर रचनावली (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड–नौ) (कुल खंड–चौदह), लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2011, पेपरबैक, पृ.27।
7. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.82।
8. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.110।
9. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.67।
10. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.151।
11. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.85।
12. वही : (खंड–नौ) (कुल खंड–चौदह), पृ.278।
13. वही : (खंड–नौ) (कुल खंड–चौदह), पृ.180–181।
14. http://makingindiaonline.in/online-news-in-hindi/2018/07/28/vasudhaiv-kutumbkam-rss.hindutva/ 15-may-2020
15. दिनकर रचनावली (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड–नौ) (कुल खंड–चौदह), पृ.261।
16. https://www.google.com/amp/s/www.bhaktibharat.com/amp/mantra/dm-sarve-bhavantu-sukhinaha 20-april-2019, 6:28pm
17. दिनकर रचनावली (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.67।
18. वही : (खंड–नौ) (कुल खंड–चौदह), पृ.220।
19. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.427।
20. वही : (खंड–दस) (कुल खंड–चौदह), पृ.438।

कामकाजी-विवाहित-स्त्री का आत्मसम्मान : 'शाल्मली'

विवेक गुप्ता*

आठवें दशक की बहुचर्चित महिला लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का नाम अग्रिम पंक्ति में लिया जा सकता है, उनकी रचनाएँ शोषितों की वाणी रही है। 'शाल्मली' नासिरा जी का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें उन्होंने स्त्री–पुरुष के दाम्पत्य संबंध को वर्ण्य विषय बनाते हुए पुरुष सत्तात्मक समाज को भी कटघरे में खड़ा किया है, करारा व्यंग्य किया है। विडम्बना यह है कि पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों को देवी का दर्जा दिया जाता है। उसे माँ, बहन, बेटी और पत्नी तो माना जाता है किन्तु केवल एक इंसान मानना, एक स्वतंत्र स्त्री के रूप में उनकी पहचान को स्वीकारना पितृसत्तात्मक समाज के लिए एक कठिन कार्य जान पड़ता है। कोई महिला अगर शिक्षित न हो, सशक्त न हो तो समाज उसे शिक्षित करने, उसके सशक्तिकरण की बात करता है किन्तु वही महिला जब शिक्षित और सशक्त होकर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करती है, पुरुषों से अधिक दौलत और शोहरत अर्जित करती है और अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहती है तो यही समाज उसे दबाने का प्रयत्न करता है। वास्तविकता यह है कि आजादी से वर्तमान समय तक स्त्रियों की दशा में सुधार तो हुआ है किन्तु उनकी स्थिति दोयम ही है।

सेमल की दरख्त को संस्कृत में शाल्मली कहते हैं। सेमल की दरख्त बहुत ही खूबसूरत एवं अत्यंत उपयोगी होती है। उसकी लकड़ी से माचिस की तीली, ढोलक बनाई जाती है। इसके फूल और डंठल खाए भी जाते है लेकिन यही लकड़ी जब पानी में डूब जाती है तो बहुत मजबूत हो जाती है। अर्थात् विपरीत परिस्थितियों में भी दृढ़ रहती है। यही बात उपन्यास की नायिका शाल्मली में भी देखने को मिलती है। शाल्मली के संसर्ग में जो लोग आतें हैं, उनका भला चाहती है चाहे वह उसका लम्पट और स्वार्थी पति नरेश ही क्यों न हो। जब शाल्मली का घर टूटता है अर्थात् उसके वैवाहिक जीवन में दरार पड़ती है तो भी वह टूटती नहीं बल्कि पहले से और भी अधिक मजबूती और दृढ़ता के साथ आने वाली चुनौतियों का सामना करते हुए जीवन में आगे बढ़ती है। वह आज की आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने कर्तव्य के साथ–साथ अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक है तथा किसी भी कीमत पर अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करती "शाल्मली दया और करुणा में डूबी आँसू बहाने वाली उस नारी का प्रतीक भी नहीं है जिसे पुरुष–सत्ता की गुलामी में सब कुछ खो देना पड़ता है। वह सामान्य होते हुए भी असाधारण है और चुनौती के तेवर रखती है।"[1]

साधारणतः यह देखा जाता है कि यदि पति–पत्नी का वैवाहिक संबंध स्वामी–दासी जैसा हो तो उनका जीवन सुखी बीतता है क्योंकि भारतीय विवाह व्यवस्था में पति–पत्नी का संबंध स्वामी और दासी के समान व्यवस्थित होता है। भारतीय विवाह व्यवस्था ने अधिकाधिक अधिकार पुरुषों को ही दिया है तो वहीं स्त्रियों के झोली में कर्तव्य का बोझ डाल दिया है। अतः अधिकांश स्त्रियाँ अपने अधिकारों से अनभिज्ञ केवल कर्तव्य का निर्वाह करती है। वैवाहिक जीवन में समस्या तब उत्पन्न होती है जब पत्नी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है, आत्मसम्मान की बात करती है और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है न कि पति की दासी बनकर आजीवन रहना चाहती है। पत्नी जब आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो तो पति को यह बात अच्छी नहीं लगती उसके मन में असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है क्योंकि उसे यह भय सताता रहता है कि आर्थिक रूप से स्वावलम्बी पत्नी को वह दबा कर नहीं रख सकता, उसके साथ दासी जैसा व्यवहार नहीं कर सकता, उसके स्वतंत्र अस्तित्व पर अंकुश नहीं लगा सकता। तो वहीं शिक्षित, पढ़ी–लिखी, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी पत्नी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखना चाहती है। नरेश जब शाल्मली को केवल गृहस्थी संभालने की सलाह देता है तो शाल्मली उससे कहती है– "सुनो, नरेश ! मैं सच कहती हूँ, इतना

---

* **शोधार्थी, हिन्दी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल, भारत**

पढ़–लिखकर इन कामों के सहारे मैं भी अपना दिन नहीं गुजार सकती हूँ। मेरे दुख को, मेरी असमर्थता को समझो !"[2]

वास्तव में नरेश को स्त्री, पत्नी, अर्धांगिनी, हमनवाँ के रूप में नहीं बल्कि दासी के रूप में स्वीकार्य है। उसे एक दासी चाहिए थी जो उसके और उसके परिवार की सेवा करे तथा वह जब चाहे उसके साथ संभोग कर सके। अतः यह स्वाभाविक है कि नरेश शाल्मली के नौकरी करने का विरोध करे। नरेश शाल्मली से कहता है– "सच पूछो, जोश में कह गया था वह, तुम नौकरी कर लो ! अच्छा भी लगा था तब मगर अब बहुत कठिन होता जा रहा है यह सब मेरे लिए।... मैंने तो सुख के लिए विवाह किया था। बहुत भटका हूँ। बाहर खा–खाकर बोर हो गया हूँ।"[3] नरेश शाल्मली पर नौकरी छोड़ने का दबाव डालता है, वह चाहता है कि शाल्मली गृहस्थी और कैरिअर में किसी एक को चूने, मानो शाल्मली उसकी पत्नी नहीं बल्कि बंधुआ मजदूर हो जिसे वह पैसे देकर खरीद लाया हो और उसका हर फैसला शाल्मली के लिए शिरोधार्य हो। रेखा कस्तवार लिखती हैं– "स्त्री के पास आज भी विवाह और कैरिअर में से किसी एक को चुनने का संकट है। पुरुष की तरह विवाह और कैरिअर दोनों जब वह पाना चाहती है तो दोहरे–तिहरे श्रम की चुनौती स्वीकार करती है।"[4]

अपने संस्कारों के कारण शाल्मली नरेश से तलाक नहीं लेती। वैवाहिक जीवन में सुखी न होने के बावजूद भी वह अपने पति का तिरस्कार नहीं करती। बल्कि स्वयं को ही संतुलित रखने का प्रयास करती है। वह स्वयं को ढाढ़स बाँधते हुए कहती है –"मैं टूटूँगी नहीं। नरेश के बिना मैं रह लूँगी। कितनी औरतें अकेली रहती है ! क्या वे जीना भूल जाती हैं ?... पुरुष तक पहुँचना मेरा जीवन लक्ष्य नहीं था, मगर उसकी महत्ता से मुझे इनकार भी नहीं... मगर सम्मान के दाँव पर नारीत्व की बाजी हरगिज नहीं लगा सकती। चाहे सारा जीवन निपट अकेले ही क्यों न रहना पड़े।"[5] अर्थात् शाल्मली एक ओर तो आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने आत्मसम्मान को सर्वोपरि रखते हुए पति के सामने झुकना नहीं चाहती तो दूसरी ओर वह अपने माँ–बाप के संस्कारों एवं परंपरागत भारतीय नारी की तरह अपने दाम्पत्य जीवन को भी टूटने नहीं देना चाहती। वह जीवन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखती है। डॉ रामचन्द्र तिवारी के अनुसार– "पति की क्रूरता को सहन करते हुई भी पत्नी (शाल्मली) परिवार को टूटने–बिखरने से बचाये रखना चाहती है। वह अपनी विस्तृत दृष्टि को संकुचित नहीं होने देती।"[6]

भारतीय समाज की सदियों से यह मान्यता चली आ रही है कि विवाह के पश्चात् पुत्री पराया धन हो जाती है अर्थात् विवाह के बाद औरत का अपने माँ–बाप, मायके पर कोई अधिकार नहीं रहता। पति ही उसका भाग्य–विधाता एवं ससुराल ही उसका अपना घर बन जाता है। ऐसे में अगर किसी औरत पर उसका पति और ससुराल वाले अत्याचार भी करते हैं तो उसके पास मायके जाने का विकल्प समाप्त हो जाता है। अतः वह पति के अत्याचारों को सहते हुए ससुराल में एडजस्ट करके रहना सीख जाती है। इस संदर्भ में शाल्मली कि माँ कि उक्ति द्रष्टव्य है –"लड़की पराया धन है, पति के घर सुख से रहे यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है, बाकी तो...।"[7]

कामकाजी विवाहित स्त्री घर और बाहर दोनों मोर्चे पर सक्रिय रहती है। अतः वह सोचती है कि उसका जीवन साथी उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करे और आवश्यकता पड़ने पर घर के कामों में भी उसका हाथ बटा दे। दुर्भाग्य यह है कि पुरुष कि यह मानसिकता होती है कि घर के काम करना सिर्फ औरत का ही कर्तव्य है, मर्दों का काम तो धन अर्जित करना है। प्रस्तुत उपन्यास में भी हम देखते हैं कि शाल्मली जब नरेश को घर के कामों में हाथ बटाने को कहती है, ताकि वह सुबह जल्दी ऑफिस जा सके तो नरेश निर्लज्ज की भाँति कहता है– "घर औरत का होता है, वह जाने। कमाना मर्द का काम है, वह मैं करता हूँ।"[8] नरेश के मानवता की दृष्टि से भी शाल्मली की कारुणिक दशा पर दया नहीं आती है। वह बेचारी घर और ऑफिस का काम संभालते हुए क्लांत हो जाती है, पर नरेश उसकी सहायता करना तो दूर, प्यार से बात तक नहीं करता, उसका सम्मान तक नहीं करता। वैशाली श्रीवास्तव ने लिखा है– "यह कटु सत्य है कि स्त्री ने जब नौकरी के लिये घर से बाहर कदम निकाला तो उसके ऊपर घर–बाहर के कामों का इतना

बोझ लाद दिया गया कि वह थककर चूर हो जाए और हार मान ले पर आश्चर्य स्त्री ने यह चुनौती भी बखूबी झेल ली।"[9] पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा पति को परमेश्वर का दर्जा दिया गया है। हास्यास्पद बात यह है कि पुरुष विवाह के पश्चात् स्वयं को 'परमेश्वर' समझने भी लगता है अर्थात् वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसे ईश्वर तुल्य समझे एवं उसकी हर बात उसके लिए पत्थर की लकीर हो। पुरुष नारी को केवल भोग्य मात्र की वस्तु मानता है। नरेश शाल्मली से कहता है– "तुम जानना चाहोगी पुरुष की दृष्टि में औरत क्या है ? भोगने की वस्तु ... वही उसकी पहचान है। इसीलिए तुम औरत की तरह रहो इसी में तुम्हारा उद्धार है।"[10] नरेश इतनी नीच मानसिकता का पुरुष है कि शाल्मली की इच्छा न होते हुए भी वह जबरन उसके साथ संभोग करना चाहता है। नरेश का मानना है कि वह पति है और विवाह के पश्चात् पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार होता है। शाल्मली जब दैहिक संबंध बनाने से इनकार करती है तो वह कहता है– "मुझे यहाँ भी अपना अधिकार लेना आता है। प्रेम से या बल से, जिस तरह मैं चाहूँगा। तुम्हारा रूठना, तुम्हारा अकड़ना व्यर्थ है।"[11]

पुरुष विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी कि इच्छा–अनिच्छा जाने बिना, उसकी आत्मा में अपने प्रति सम्मान जगाए बिना उसके साथ संभोग करना चाहता है। पत्नी जब बगावत करती है तो वह बल प्रयोग करने में भी नहीं हिचकता। नरेश न केवल शाल्मली के साथ दुर्व्यवहार करता है, मानसिक प्रताड़ना देता है अपितु वह दूसरी औरत के साथ शारीरिक संबंध भी बनाता है। अपने इस कुकर्म के लिए भी वह शाल्मली को ही दोषी ठहराता है। शाल्मली से वह कहता है– "तुमने उस रात जो व्यवहार मेरे साथ किया, मैं सोचता हूँ की दूसरे को हाथ लगाने का अधिकार तुम्हीं ने मुझे दिया था।"[12] अर्थात् नरेश अपने हरकतों पर शर्मिंदा होने के बजाए शाल्मली को ही कटघरे में खड़ा कर देता है। लेखिका ने पुरुषों के पाखंड पर भी व्यंग्य किया है। पत्नी जब अनपढ़ हो तो उसे अपने स्तर की न कहकर, हीन समझकर उसकी अवहेलना कर दूसरी औरत की ओर आकृष्ट होता है, वहीं जब पत्नी शिक्षित और कामकाजी हो तो उसके आत्मविश्वास से घबराकर तथा उसपर कई तरह के आरोप लगाकर वह दूसरी औरत से संबंध बनाता है। इसके विपरीत पत्नी अगर परपुरुष के साथ संबंध बनाती है तो उन्हें चरित्रहीन, बद्चलन कहकर पुकारता है। यह दोहरा मानदंड क्यों ? क्या केवल पत्नी ने ही आजीवन पतिव्रता होने का ठेका ले रखा है ? हमें इन प्रश्नों पर विचार करने की आवश्यकता है।

हिन्दू मान्यतानुसार विवाह केवल एक बार ही संभव है। शाल्मली जब अपने पिता से नरेश की शिकायत करती है और अपने दाम्पत्य संबंध के टूटने की बात करती है तो उसके पिता उससे कहते है –"तुम दोनों सोच के दो विभिन्न धारे, नदी के दो किनारे हो, मगर नदी के बहाव के दोनों किनारे साथ–साथ तो लेकर चलते हैं, चाहे उनका रूप–आकार कितना भी भिन्न क्यों न हो ! तू बहुत समझदार है, बेटी, इस बहाव को संभाल सकती है। गोकुल झील बन जाना तो आम बात है, पर विपरीत दिशा में खड़े होकर किसी के साथ–साथ बहाना मुश्किल।"[13] अर्थात् शाल्मली के पिता यह जानते हुए भी की नरेश उनकी बेटी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर रहा है, उसे मानसिक प्रताड़ना दे रहा है, उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचा रहा है। इतना सब कुछ जानने के बावजूद वे शाल्मली को नरेश से अलग होने की सलाह नहीं देते क्योंकि वह यह सोचते हैं कि जोड़ियाँ भगवान तय करता है और विवाह के बंधन को मृत्यु भी नहीं तोड़ सकती। इस संदर्भ में रेखा कस्तवार का कहना है– "हिन्दू समाज में पत्नी को अर्धांगिनी माना गया है। विवाह के अविच्छेद बंधन जिसे मृत्यु भी नहीं तोड़ सकती। विवाह एक ही बार संभव है।"[14]

पति–पत्नी का संबंध सम्मान, प्रेम और विश्वास की बुनियाद पर टीका रहता है। शाल्मली ने भी बचपन से अपने माता–पिता को देखकर यही सीखा और समझा है। प्रेम के साथ–साथ विश्वास ही पति–पत्नी के संबंध को अटूट बनाती है। शाल्मली की माँ हर बुरे समय में उसके पिता का साथ देती है। शाल्मली सोचती है– "आज से दस वर्ष पहले पिताजी किसी झूठे आरोप में फँसकर नौकरी से मुअत्तिल हुए थे। अपनी सच्चाई साबित करने के लिए पिताजी तलवार की धार पर तो चल ही रहे थे। माँ जान–पहचान वालों के ताने सुनती, जहर का घूँट पीती, पिताजी को हिम्मत बंधाती रही थीं।"[15] कोई भी वैवाहिक जीवन

तभी सफल हो सकता है जब उसमें प्रेम और विश्वास के साथ–साथ एक–दूसरे के प्रति सम्मान भी हो। सम्मान ही पति–पत्नी के रिश्ते की रीढ़ होती है जो इस रिश्ते को मजबूत और अटूट बनाए रखती है। नासिरा जी इस संदर्भ में लिखती हैं– "औरत मर्द के रिश्ते में प्रेम के साथ सम्मान का होना बहुत जरूरी है। केवल प्रेम से जीवन नहीं चल सकता। यदि प्रेम में सम्मान होगा, तो एक दूसरे के विचार, अहसास की कदर करनी पड़ेगी।"[16]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि शाल्मली नासिरा जी की एक लोकप्रिय कृति है जिसमें उनहोंने महानगरीय संघर्षरत जीवन के बीच पति–पत्नी के वैवाहिक जीवन में आने वाली समस्याओं तथा इस पुरुष सत्तातमक समाज में विवाहित कामकाजी महिला के संघर्ष को चित्रित किया है। भारतीय विवाह व्यवस्था में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में दास तथा दासी का संबंध होता है। पति केवल अपनी पत्नी को गृहणी के रूप में देखना चाहता है, स्त्री का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना पुरुषों को अखड़ता है। परिवार ऐसी इकाई है जहाँ पर मनुष्य स्वयं को सहज महसूस करता है, अपनी इच्छाओं को एक रास्ता देता है परंतु शाल्मली जब अपने परिवार के समक्ष अपनी विवाहित जीवन की समस्याओं को रखती है तो परिवार द्वारा उसे यह कहा जाता है कि यही तेरा भाग्य है, तुझे स्वीकार करना होगा।

स्त्री जब अपने अस्तित्व एवं आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती है तो पुरुष उसे सह नहीं पाता और केवल स्त्री को अपमानित करने में ही अपनी श्रेष्ठता समझता है। आज पत्नी के पास सारे संवैधानिक अधिकार होने के बावजूद भी प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने शाल्मली को अपने पति नरेश से वैवाहिक संबंध तोड़कर अलग होते नहीं दिखाया है क्योंकि नासिरा जी का मानना है कि पुरुष से अलग होना ही समस्या का समाधान नहीं है। इस संदर्भ में शाल्मली की निम्नलिखित उक्ति द्रष्टव्य है –"औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं या सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़, सर कटा लेना। मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न तोड़ने पर, न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी। अधिकार पाना यानी 'घर निकाला' नहीं और घर बना रहने का अर्थ सम्मान को कुचल फेंकना नहीं है।"[17] वास्तव में नासिरा शर्मा, शाल्मली के माध्यम से यह दिखाना चाहती है कि आज स्त्री अपने धैर्य और विवेक के साथ अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए परिवार की मर्यादा को भी सुरक्षित रख सकती है तथा पुरुषसत्तात्मक मानसिकता को परास्त करके अपनी एक अलग पहचान बना सकती है।

संदर्भ–सूची :–

1. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पुस्तक के फ्लेप से।
2. वही, पृष्ठ संख्या – ४४।
3. वही, पृष्ठ संख्या – ४३।
4. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २००६, पृष्ठ संख्या – २४।
5. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पृष्ठ संख्या – १४६ – ४७।
6. डॉ० रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य दृ साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – २०१६, पृष्ठ संख्या – ३३६।
7. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पृष्ठ संख्या – ११।
8. वही, पृष्ठ संख्या – ३३।
9. वैशाली श्रीवास्तव, सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक), अंक – १६, भाग – ६४, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या – १६४।
10. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पृष्ठ संख्या – १२८।
11. वही, पृष्ठ संख्या – १२८।
12. वही, पृष्ठ संख्या – १४५।
13. वही, पृष्ठ संख्या – ४६।
14. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २००६, पृष्ठ संख्या – ६१।
15. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पृष्ठ संख्या – ६०।
16. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०११, पृष्ठ संख्या – १६।
17. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – २०१८, पृष्ठ संख्या – १६४

आपातकाल की विभीषिका और हिन्दी उपन्यास

पंकज कुमार सिंह*

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में अस्सी का दशक सर्वाधिक विवादास्पद और संघर्षपूर्ण रहा है। इस दशक के आरंभ में ही देश को अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा, जिसमें सफलता तो मिली लेकिन देश की संपदा का भी नुकसान हुआ। लाखों की संख्या में बांग्लादेश से आए शरणार्थियों ने देश के खाद्यान्न संकट को और भी गहरा कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में आवश्यक वस्तुओं की कीमतें अचानक बढ़ गईं। चोरबाजारी और कालाबाजारी के अचानक बढ़ जाने से आम जन–जीवन परेशान हो उठा। ठीक इसी समय गुजरात और बिहार में सरकार की नीतियों से असंतुष्ट लोगों ने आंदोलन कर दिया जिसमें राज्य सरकारों के त्यागपत्र और विधानसभाओं को भंग करने की मांग उठायी गयी। ऐसे में गुजरात में चीमन भाई पटेल को इस्तीफा देना पड़ा जबकि बिहार में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बढ़ती महँगाई, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि मुद्दों पर प्रचण्ड आंदोलन खड़ा होने लगा। हालांकि पूरे उत्तर भारत में ये समस्याएँ थीं, ऐसे में जेपी ने इस आंदोलन को बिहार से बाहर पूरे देश में फैलाने का फैसला किया। अभी ये आंदोलन चल ही रहे थे कि 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अपने ऐतिहासिक फैसले में इंदिरा गांधी के 1971 के चुनाव में प्रशासनिक तंत्रों के प्रयोग करने के कारण उनके चुनाव को ही निरस्त कर दिया। ऐसी दशा में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी पर त्यागपत्र देने का दबाव बनने लगा। उनके कुछ सहयोगी भी इसी बात का सुझाव दे रहे थे कि वे कुछ समय के लिए नैतिक रूप से त्यागपत्र दे दें जबकि संजय गांधी का विचार इसके ठीक विपरीत था। वे नहीं चाहते थे कि प्रधानमंत्री के पद पर कोई दूसरा बैठे। इसी बीच जेपी ने दिल्ली के रामलीला मैदान से पुलिस और सेना के जवानों से सरकार के आदेश को सविनय न मानने की अपील कर दी। प्रतिक्रिया–स्वरूप इंदिरा गांधी ने 26 जून को आकाशवाणी से देश को संबोधित करते हुए कहा कि 'राष्ट्रपति जी ने आपातकाल की घोषणा की है, इससे आतंकित होने का कोई कारण नहीं है।' डमरूआ गाँव के माध्यम से भारत के सुदूर ग्रामीण अंचल की कथा कहने वाले डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने अपने उपन्यास 'अधबुनी रस्सीः एक परिकथा' में देश की अबोध ग्रामीण जनता पर आपातकाल की पहली प्रतिक्रिया का अत्यन्त सजीव चित्रांकन किया है– ''कोई नहीं जानता था कि इमरजेंसी क्या चीज होती है? डमरूआ के जो लोग कभी कानपुर के हैलट अस्पताल गए थे, एक कमरे के बाहर लिखा देखा था 'इमरजेंसी', जहाँ दुर्घटना वाले रक्तरंजित, मरणासन्न रोगी भर्ती किये जाते थे। उन लोगों ने काशी के मुँह से इमरजेंसी की खबर सुनकर मन में कल्पना कर ली थी कि लगता है किसी कारणवश अपना देश भी मरणासन्न अवस्था है, इसलिए दुर्घटना में घायल रोगी की भांति उसे इमरजेंसी में भर्ती कर दिया गया है। जिन लोगों ने हैलट अस्पताल वाला इमरजेंसी का कमरा नहीं देखा था उनके पास कल्पना के लिए कोई ठोस आधार न था, बस इतना ही कि अपने देश में कोई बहुत ही खतरनाक चीज लागू कर दी गई है, जिसमें केवल सज्जन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जाता है।''[1]

बैंकों के राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स की समाप्ति, गरीबी हटाओ का प्रभावशाली नारा एवं बांग्लादेश के विजय अभियान में पाकिस्तानी सेना पर विजय आदि ने इंदिरा गाँधी की छवि को एक साहसी राजनेता एवं योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। देश की जनता का उन पर अपूर्व विश्वास हो चला था। उनके त्वरित निर्णयों से जनता को यकीन हो चला था कि इंदिरा की जगह कोई नहीं ले सकता। लेकिन 1972 और 73 के बाद देश भयंकर आर्थिक संकट के दौर में जा पहुँचा था। बेरोजगारी और भ्रष्टाचार इतने बढ़ गए कि जनता का धैर्य जवाब देने लगा। बिपन चंद अपनी पुस्तक 'लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

नारायण' में लिखते हैं– ''1973–75 में बढ़ते हुए असंतोष और राजनीतिक अशांति के लिए अनेक कारक उत्तरदायी थे। मध्यकालीन आर्थिक प्रवृत्तियों के कारण आर्थिक स्थिति में स्पष्ट गिरावट आ गई थी। लगातार दो फसलों की असफलता, आर्थिक मंदी, बढ़ते हुए सुरक्षा खर्च, बेरोजगारी, अनियंत्रित मुद्रास्फीति, खाद्यान्य और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी ने गंभीर आर्थिक संकट पैदा कर दिया था।''[2]

इस गंभीर आर्थिक संकट से उबरने के लिए सरकार की सभी कोशिशें औसत दर्जे की ही रही थीं। सरकार उद्योगों को बढ़ावा देकर औद्योगिक उत्पादन की दर तो बढ़ाना चाहती थी, इसीलिए उसने पूँजीवाद के कुछ तत्वों को अपनी अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनाना चाहा, लेकिन दूरगामी सफलता नहीं मिली। दूसरी तरफ सरकार समाजवाद के लक्ष्य भी हासिल करने में विफल रही थी। गरीबी जस की तस बनी हुई थी और जनता के सामने एक ही सवाल बार–बार आ जाता था कि 'खाएँगे क्या?' उपन्यास कटरा बी आर्जू में राही मासूम रजा ने भी इसी सवाल को उठाया है– ''हर सपने के गले में यही फंदा है कि खाएंगे क्या? यह फंदा अंग्रेजों के जमाने में था। नेहरू के जमाने में भी रहाँ शास्त्री के जमाने में भी रहाँ इंदिरा गांधी के जमाने में भी है। लगता है आजादी में कहीं खोट है। कोई मिलावट है। इमिटेशन है। चावल 5 रूपये किलो। शक्कर साढ़े सात रूपये किलो......। सपना, सपना तो खुले बाजार में मिलता ही नहीं।''[3]

आम जन के सपनों की कीमत का बढ़ जाना और ऐसी दशा में उनके सपनों का अधूरा रह जाना तब और भी ज्यादा खटकता है जब सत्ताधीश उन सपनों की बलि देकर अपनी बहुमंजिली इमारत खड़ा करते हैं। जैसे ही इमरजेंसी लागू होती है, एकाएक स्थितियाँ बदलने लगती हैं हालांकि इसका प्रभाव अत्यंत अल्पकाल के लिए ही था। शायद इसीलिए आचार्य बिनोवा भावे ने आपातकाल को अनुशासन पर्व कहा था और बकौल राही मासूम रजा– ''शुरू में तो लोग बहुत खुश हुए कि चोरबाजारिये पकड़ के अन्दर कर दिए गए। जो चीजें खुले बाजार में नजर ही नहीं आती थी वह तमाम चीजें धड़ल्ले से बिकने लगीं। दुकानों पर दुकानदारों ने रेट–कार्ड लटकाना शुरू कर दिया। रेलें ठीक वक्त पर चलने लगीं। सरकारी कर्मचारी ठीक समय पर ऑफिस आने लगे। लोगों को कुत्ता समझना छोड़कर आदमी समझने लगे।.... लोगों ने इतमीनान का सांस लिया कि इमरजेंसी तो बड़ी अच्छी चीज है।''[4]

वास्तव में, आपातकाल के लागू होते ही हमारा संवैधानिक ढाँचा संघात्मक से एकात्मक हो गया। समस्त शक्तियाँ सिमटकर केन्द्र के हाथों आ गईं और अतिशयोक्ति न हो तो इंदिरा गांधी के हाथों आ गईं। ऐसे समय में सत्ता ने अपना तांडव दिखाना शुरू किया और विपक्ष में बोलने वालों का मुँह बंद करके उन्हें जेल की काल कोठरी में छोड़ दिया गया। भारतीय लोकतंत्र 19 महीने तक जेल की सलाखों के पीछे रहाँ जिन लोगों ने आवाज उठाने की कोशिशें की उन्हें जेल में ही घोर अमानुषिक अत्याचार झेलना पड़ा। 'अधबुनी रस्सीः एक परिकथा' उपन्यास में सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने दिखाया है कि एक दस–बारह साल का लड़का किसुन को कैसे पुलिसवाले इमरजेंसी में उसे देश के आंतरिक सुरक्षा को खतरा बता कर गिरफ्तार कर ले जाते हैं और उस पर अत्याचार करते हैं जबकि उसे तो यह भी नहीं मालूम की आंतरिक सुरक्षा क्या होती है? यातना कक्ष में पुलिस ने उससे बार–बार पूछा कि उसने देश की आंतरिक व्यवस्था में कैसी गड़बड़ी की है और बारह साल का किसुन बार–बार एक ही सवाल करता रहा कि सरकार आंतरिक सुरक्षा क्या होती है? पुलिसिया अत्याचार ने उसके एक पैर को घुटने के नीचे से तोड़ दिया था। दर्द से बेहोश होने बाद जब उसकी आंखें खुलती हैं तो उसे एहसास होता है– ''कष्ट से ही कष्ट सहने की क्षमता निकलती है। मेरी एक टांग बेकाम हो गई है, फिर भी मैं जिंदा हूँ। मुझे मालूम ही नहीं था, मेरे अंदर कष्ट सहने की इतनी बड़ी शक्ति विद्यमान थी। मुझे लगता है दर्द की भी एक सीमा होती है, जिसे पार कर लेने पर दर्द दर्द नहीं रह जाता। मृत्यु दर्द की सीमा नहीं, उसका अंत है। दर्द और मृत्यु के बीच एक और भी पड़ाव होता है जहाँ आकर इस समय मैं ठहर गया हूँ।''[5]

19 महीनों तक चलने वाले आपातकाल में लगभग 1 लाख से अधिक लोगों को गिरफ्तार किया गया। जनता को प्राप्त 'अभिव्यक्ति की आजादी' छीन ली गयी। सिर्फ वे ही अख़बार प्रकाशित होते थे, जिसे इन्दिरा गांधी के बेटे संजय गांधी की अनुमति प्राप्त होती थे। संजय गांधी सत्ता में न होते हुए भी सबसे

ज्यादा ताकतवर थे। उल्लेखनीय है कि आकाशवाणी से भी वही खबरें प्रसारित की जाती थी, जिसमें आपातकाल को सही ठहराया जा रहा होता था। कटरा बी आर्जू में राही मासूम रजा लिखते भी हैं– ''पत्र पत्रिकाओं की जुबान काटी जा चुकी है। आकाशवाणी नम्बर एक सफदरजंग वाणी हो गया है। संजय गांधी वाणी हो गया है।''[6]

तानाशाही के इस माहौल में जब भी कहीं वक्त मिलता इंदिरा गांधी अपने बचाव में स्वयं कहने लगती कि यह आपातकाल जेपी द्वारा संचालित असंवैधानिक स्थितियों से देश को बचाये रखने के लिए लागू किया गया है। लोकतंत्र को बचाने के इस कृत्य ने स्वयं को भले ही अलोकतांत्रिक बना लिया हो, लेकिन इंदिरा जी को इससे कोई परहेज नहीं था। दिवंगत पत्रकार कुलदीप नैयर अपनी आत्मकथा 'एक जिन्दगी काफी नहीं' में लिखते हैं– ''इन्दिरा गांधी दावा कर रही थीं कि वे सब कुछ संविधान के दायरे में रहकर और प्रजातंत्र की रक्षा करने के लिए कर रही थीं। वे इस बात पर इसलिए भी जोर दे रही थीं क्योंकि उन्हें अपने नाम से चिपका 'अधिकारवादी– शब्द सख्त नापसंद था। सरकार कितनी भी तानाशाह क्यों न हो, प्रजातंत्र का दिखावा करते रहना जरूरी था।''[7]

ये प्रजातंत्र के दायरे में रहकर काम करने का ही नतीजा था कि आप चार व्यक्ति खड़े होकर बात भी नहीं कर सकते थे। इससे सरकार को डर था कि चार व्यक्ति मिलकर उसके तख्ता पलटने की साजिश कर सकते हैं। सरकार के तख्ता को जिनसे भी खतरा था वे जेल में बंद हो चुके थे और जो बाहर थे उन पर सरकार कड़ी नजर रखे हुए थी। विश्वविद्यालयों से आर.एस.एस. समर्थक लोगों की सूची मंगवाकर उन्हें भी या तो उनके घर की चारदीवारी के भीतर नजरबंद रखा गया था या फिर यातानागृह में। आम जनता के आर्जुओं की बात उठाने वाले राही मासूम रजा लिखते हैं– ''यही तो इमरजेंसी का कमाल था कि हर आदमी ने अंदर से किवाड़ लगा रक्खे थे और सपनों पर दफा चवालीस लगा रखी थी कि पांच सपने इकट्ठा न हों। रोजगार, शांति, बेखौफी, इतमीनान और आजादी पाँच सपनों के इकट्ठा होने को सरकार जुर्म मान रही थी।''[8]

जिन पाँच सपनों की बात राही मासूम रजा ने उठायी है, ये वही सपनें हैं, जिन्हें आम आदमी पूरा करना चाहता है लेकिन आपातकाल ने तो इन सपनों पर बुलडोजर चलाकर उसे चकनाचूर कर दिया था। दिल्ली में उस समय सौन्दर्यीकरण के नाम पर तुर्कमान गेट के पास गरीब तबके के लोगों की झुग्गी झोपड़ियों पर सरकार ने बुलडोजर चलवा दिये थे। जिन लोगों ने विरोध किया उसे बुलडोजर के नीचे डाल दिया गया। चूँकि दौर इमरजेंसी का था और इसलिए सरकार के सभी नाजायज काम जायज थे। मनोहर पूरी ने अपने उपन्यास आपातनामा में लिखा है– "जो भी घर बुलडोजर की चपेट में आया उसका साजो–सामान पुलिसवालों की व्यक्तिगत संपदा बन गया। सामान के साथ–साथ यदि किसी के हाथ सामान की रक्षा कर रही बहू–बेटी लग गई तो उस व्यक्ति का भाग्य माना गया जो अनायास ही अबला की इज्जत– आबरू का मालिक बन बैठा। जितनी खुलकर बेशर्मी, दरिंदगी, लूट–खसोट एवं मार–पीट इस क्षेत्र में हुई, उतनी संभवतः कहीं भी नहीं हुई।"[9] ऐसे ही संजय गांधी के दिमाग की उपज थी– नसबंदी योजना। सरकार जनसंख्या वृद्धि से इतनी चिंतित थी कि बौखलाकर सभी कर्मचारियों को आदेश दे दी थी कि उन्हें नसबन्दी के लक्ष्य को किसी भी स्थिति में प्राप्त करना है। ऐसे में सरकारी कर्मचारियों ने अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पात्र और अपात्रों के बीच कोई भेदभाव न दिखाते हुए अपात्रों का भी नसबन्दी कर दिया। बिपन चंद के अनुसार– ''बलात बंध्यीकरण ने लोगों में डर की मनोविकृति उत्पन्न कर दी और उसका इतना प्रसार हुआ कि एक साधारण बंद गाड़ी को देखते ही वे भाग कर छिप जाते थे। नसबंदी एक डरावना शब्द बन गया और उसका आतंक जंगल की आग की भांति समस्त उत्तरी भारत में फैल गया।''[10]

उल्लेखनीय है कि कटरा बी आर्जू उपन्यास में भी मास्टर बद्रुल हसन 'नायाब' मछलीशहरी शहनाज से निकाह करने के लिए मना कर देते हैं क्योंकि एक शादी से लौटते समय पानीपत के पास पुलिसवालों ने दूल्हा समेत उन सब बारातियों की नसबंदी कर दी थी। स्पष्ट है कि 26जून 1975 को इंदिरा

गांधी ने जिस प्रजातंत्र की रक्षा के लिए 'आपातकाल' को लागू किया था, उसने समस्त उत्तर भारत में अपना कहर दिखाया। लाखों लोगों को जेल नसीब हुई तो न जाने कितने लोगों पर सरकार के नुमाइंदों ने घोर अमानुषिक अत्याचार किया। कांग्रेस सरकार को जिन लोगों ने समर्थन देने से मना किया उन सब को इंदिरा सरकार ने देशद्रोही के खिताब से नवाजा। इन सबके बावजूद देश के साहित्यकारों ने सत्ता के अत्याचार के खिलाफ अपनी लेखनी उठायी और तानाशाही सत्ता के चरित्र को जनता के सामने लाने में अपनी सार्थक भूमिका का निर्वहन किया। अरूण कुमार भगत के शब्दों में– ''आपातकाल के दौरान साहित्यकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। स्वातंर्त्योत्तर भारत में इस आंदोलन के दौरान पहली बार साहित्यकार नुक्कड़ों पर उतरे और उन्होंने भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, शैक्षणिक अराजकता, महंगाई एवं पुलिसिया जुल्म के खिलाफ आवाज बुलंद की।..... बाबा नागार्जुन, भवानी प्रसाद मिश्र, अज्ञेय, कुंवर बेचौन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, डॉ. देवेन्द्र दीपक, फणीश्वरनाथ रेणु जैसे रससिद्ध कलमकारों ने तानाशाह सरकार के खिलाफ लेखनी उठाई और वाक्–अग्निवर्षा की।''[11]

संदर्भ–सूची :–

1. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, 'अधुबनी रस्सी : एक परिकथा', पृ.200, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2009।
2. बिपन चंद, 'लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण', पृ.26, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्र.लि., नई दिल्ली, संस्करण, 2016।
3. राही मासूम रजा, 'कटरा बी आर्जू', पृ.73, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1988।
4. वही, पृ. 140–141।
5. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, 'अधुबनी रस्सी : एक परिकथा', पृ.213, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2009।
6. राही मासूम रजा, 'कटरा बी आर्जू', पृ.187, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1988।
7. कुलदीप नैयर, 'एक जिंदगी काफी नहीं', पृ.28, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पांचवा संस्करण, 2018।
8. राही मासूम रजा, 'कटरा बी आर्जू', पृ.193, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1988।
9. मनोहर पूरी, आपातनामा, पृ. 126, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली।
10. बिपन चंद, 'लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण', पृ.239, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्र.लि., नई दिल्ली, संस्करण, 2016।
11. अरूण कुमार भगत, 'आपातकालीन काव्य : एक अनुशीलन', पृ.55, श्रुति बुक्स, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2013।

काशीनाथ सिंह की रचनाओं में व्यंग्य

नेहा गुप्ता*

व्यंग्य साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। इसका महत्वपूर्ण अभिप्रेरक है– विसंगति यथार्थ। मानवीय घटनाओं एवं कार्य–व्यापारों की विसंगति एवं अंतर्विरोध ही व्यंग्य–लेखन के लिए सर्वाधिक उपयोगी आवश्यक सिद्ध होता है। वस्तुतः व्यंग्य तभी प्रभावी सिद्ध होता है, जब उसका लक्ष्य निश्चित व स्पष्ट हो। व्यंग्य के तीखेपन और उसके आक्रामकता को परिभाषित करते हुए ए. निकोल लिखते हैं– "व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है। इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। इस में दया, विनम्रता एवं उदारता का लेशमात्र भी भाव नही।होता। व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी–कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है, यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियां किसी को क्षमा किए बगैर उड़ाता है।"[1] अर्थात् जब किसी उक्ति को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, तो उसमें कोई दया–भाव नहीं होना चाहिए, अपने–पराये का बोध नहीं होना चाहिए नहीं तो व्यंग्य अपने लक्ष्य प्राप्ति से भटक जाता है। व्यंग्य का सहारा किसी ऐसे मुद्दे को कहने के लिए लिया जाता है जिससे सामने वाला बिना मार खाए चोट महसूस करें और तिलमिला जाए। जब तक व्यंग्य का लक्ष्य निर्धरित न हो व्यंग्य निराधार होता है। इस संदर्भ में अलेक्जेंडर पोप का कहना है– "व्यक्तियों को छुए बिना, अमूर्त बुराइयों पर प्रहार करना निरापद हो सकता है, लेकिन वह हवा में घूंसेबाजी करना ही है।"[2] स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य में व्यंग्य का प्रचार–प्रसार बहुत तेजी से हुआ है। आजादी के बाद चारों ओर फैली विसंगतियों, अन्तरविरोधों, विषमताओं पर प्रहार करने के लिए रचनाकारों को एक बहुत ही सशक्त माध्यम की जरूरत महसूस हुई और इस माध्यम की जरूरत "व्यंग्य" के सहारे पूरी हुई और यह एक मात्र ऐसा माध्यम बनकर उभरा, जिससे वे उपर्युक्त तमाम चीजों पर भरपूर चोट कर सकते थे।

हिंदी साहित्य कोष के मुताबिक "व्यंग्य" बना है विअंग से, जिस का मतलब होता है विकृत या विरूप अंग। "व्यंग्य" का काम यही है कि समाज में जो कुछ उल्टा–पुल्टा है उस पर उंगली उठाए। उस तरफ ध्यान दिलाए वो वाली नस इतने कड़े तरीके से दबाए कि गलत ट्रैक पर चल रहा इंसान या संस्था बिलबिला जाए। व्यंग्य मनुष्य के जीवन, समाज और साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मनुष्य का जीवन हमेशा से अनेक विसंगतियों से आच्छादित होता रहा है और विसंगतियों के प्रभाव से आक्रोश पैदा होना स्वाभाविक है। व्यंग्य के माध्यम से गंभीर से गंभीर बातो को भी बड़ी सहजता तथा प्रभावशाली तरीके से उद्घाटित किया जा सकता है। व्यंगय मुख्यतः तीन तत्त्वों से मिलकर बना है– बुद्धि, हास्य तथा आक्रोश। इसमें सबसे अधिक महत्त्व बुद्धि के प्रयोग का है, इसके बिना व्यंग्य पूर्ण नहीं हो सकता।

हिंदी–साहित्य में व्यंग्य की अवधारणा को समझाने हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– "व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाले वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने आपको और भी उपहसास्पद बना लेना हो जाता हो।"[3] व्यंग्य के लिए रचनाकार की भाषा का मारक होना बहुत ही जरूरी है। काशीनाथ सिंह का व्यंग्य मारक क्षमता से लैस है क्योंकि उनके पास कबीर की ही तरह लोकभाषा की शक्ति है। काशीनाथ सिंह की कलम समकालीन व्यवस्था और उसकी विसंगतियों पर खूब चली है। इस क्रम में उनकी भाषा तो मारक है ही, साथ में उसमें व्यंग्य का समावेश कर काशीनाथ सिंह ने रचना को पाठक–वर्ग के बीच लोकप्रिय बना दिया है और सत्ता वर्ग की बखिया उधेड कर रख दी है, जिससे कई लोग छटपटाते रह जाते है। काशीनाथ सिंह की भाषा पर विचार करें तो हम पाऐंगे कि उनके लेखन के पास एक टटकी, खिलंदापन और लोक–संप्रिक्तता से ओत प्रोत भाषा है। संदीप लोटलीकर से बातचीत करते हुए कमला प्रसाद लिखते है– "काशीनाथ सिंह ने

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, (प.बं.)**

प्रचलित भाषा को तोड़ने का काम किया है। वे लोक–जीवन की भाषा लेते हैं। श्लील–अश्लील, भद्र–अभद्र का ज्यादा सोच–विचार नहीं करते। जो लोग काशीनाथ की भाषा पर आक्षेप करते हैं वे गैर–रचनात्मक है।"[4] काशीनाथ सिंह की भाषा लोक–जीवन की भाषा है, जिसे लिखा नहीं बतियाया जाता है और काशीनाथ सिंह लिखते नहीं बल्कि "कहन" शैली के माध्यम से पाठकों से सीधा संवाद करते हैं।

कहानियों का सरोकार समाज से सीधे– सीधे रहा है। प्रत्येक युग में कहानियों ने समाज में अहम भूमिका का निर्वहन किया है। जब भी समाज में उथल–पुथल मच जाती है, भ्रष्टाचार बढ़ जाता है, राजनीति जनता के शोषण का "टूल" बन जाती है तो जनता के बारे में सोचने वाला एक ही वर्ग बचा रह जाता है, जो समाज के प्रसिद्ध रचनाकारों का वर्ग है। अपनी रचनाओं के माध्यम से यह वर्ग जनता की आपबीती और विडंबनाओं को सबके सामने लाने का प्रयास करता है। चूँकि लेखन भी समाज का एक अहम हिस्सा होता है, इसलिए उसे भी कुछ बातों को ध्यान रखना होता है, अर्थात् वह सीधे–सीधे किसी का विरोध नहीं कर सकता। फलतः उसे व्यंग्य का सहारा लेना पड़ता है। कहानी– आंदोलन के कहानीकारों ने व्यंग्य का सहारा गाहे– बगाहे लिया है।

काशीनाथ सिंह अपने तल्ख मिजाज के लिए जाने जाते हैं। काशी की कहानियों में विभिन्नता देखने को मिलती है, चाहे वह सामाजिक जो, सांस्कृतिक हो या फिर राजनीतिक विसंगतियां उन को अपनी लेखनी में पूरी मर्यादा के साथ निरूपित किया है– "सदी का सबसे बड़ा आदमी, अधूरा आदमी, आदमी का आदमी और मौज मस्ती के दिन " जैसी कहानियों में व्यंग्य को आसानी से लक्षित किया जा सकता है। "सदी का सबसे बड़ा आदमी" कहानी के माध्यम से लेखक ने अपने समय के द्वंद और विसंगतियों को अत्यंत ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया है, जहाँशौक साहब अपने तिमंजिले से आते–जाते लोगों के ऊपर थूकते है और फिर उन्हें ससम्मान, नहा धुला खिला पीला कर नए कपड़े देकर हाथी पर बिठाकर विदा करते हैं। लेकिन बड़ी बात यह है कि जिन पर शौक साहब थूकते है, वे लोग स्वयं को धन्य समझते है। ध्यांतव्य है कि शौक साहब भी सब पर नहीं थूकते, वे उन पर थूकते है, जो थूके जाने पर उन्हें गालियां दे। अंत में उन्हें एक ऐसा मर्द का बच्चा सिंकिया पहलवान मिला, जो एक रिक्शावाला का बेटा था और जो लगातार शौक साहब की पीक से बचता रहा और थूकने की अयाशी को खुली चुनौती देता रहा, जिसने दानी बनने की सामंती सोच का विरोध किया, जबकि उसे खाने और कपड़े की सबसे ज्यादा जरूरत थी। इस कहानी पर खगेन्द्र ठाकुर का कथन है –"दानशीलता के सामंती ढोंग और चाटुकारिता को एक साथ चुनौती देने वाला यह निस्वार्थ मेहनतकश जवान सदी का सबसे बड़ा आदमी कहलाने का अधिकारी है।"[5]

"आदमी का आदमी" शीर्षक कहानी में लेखक ने तत्कालीन– व्यवस्था से संत्रस्त आम आदमी को पेश किया है, जो विक्षिप्त हो चुका है और व्यवस्था के प्रति अपना विरोध व्यक्त करता हुआ रास्ते के बीचो बीच डंडा लेकर खड़ा हो जाता है। ऐसे में राजनीति और उससे जुड़े लोग बाज नहीं आते और उसके डंडे के साथ उस के शरीर को चुनाव प्रचार का जरिया बना लेते है। परन्तु वह आदमी इस व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करता हुआ, व्यंग्यात्मक स्तर पर अपनी आड़ का दर्शन करवाता है। 'मौजमस्ती के दिन' कहानी में एक निम्न मध्यवर्गीय आदमी के जीवन की विडंबनाओं को चित्रित किया है और 'पियोन' बने सुखराम की आपबीती का वर्णन किया है, जहाँ बेचारे सुखराम नई नौकरी पाकर अपनी परेशानियों का अंत समझते है, लेकिन उन्हें क्या पता कि एक आम आदमी की परेशानियां जिन्दगी भर उसका पीछा करती रहती है। सुखराम के बॉस का कुत्ता उन्हें काट लेता और वे रोज तिलतिलकर मरने लगते हैं या तो कहे कि वे मरकर अपनी तमाम जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। रोज कुत्ते के काटने से जुड़ी बातों का पता करते हैं। पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य प्रायः उस समय तो नहीं मरता, किंतु स्वयं पागल हो जाता है और कुछ समय बाद मर जाता है। इसी से पागल कुत्ते का काटना सबसे बुरा समझा जाता है। ऐसा मनुष्य पानी से डरने लगता है स्वयं पागल हो जाने के कारण वह भी पागल कुत्ते की भाँति दूसरों को काटना चाहता है...... ।"[6] इस कहानी के माध्यम से लेखक इस व्यवस्था पर व्यंग्य की शैली में कहना चाहता है कि इस व्यवस्था में आम आदमी की विसंगतियां स्वयं उसी व्यवस्था से जुड़ी हुई है।

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में समाज की चिंता वृहत रूप में दिखाई पड़ती है। उनका सुप्रसिद्ध उपन्यास 'काशी का अस्सी' केवल काशी ओर काशी के गलियों की कहानी नहीं कहता बल्कि काशी का अस्सी उपन्यास में पूरे भारत की बदलती हुई तस्वीर देखने को मिलती है। इसके साथ ही उपन्यास में समाज के बदलते हुए तमाम पहलुओं पर गहरी चिंता व्यक्त की गई है। व्यंग्यकार कन्हैया लाल नंदन कहते है— 'आज किसी भी रचना विधा में व्यंग्य के बिना तराश नहीं आ पाती। लेकिन शायद इसका एक जबर्दस्त कारण यह है कि आज देश की जो स्थिति है, उसको सही ढ़ग से अगर बयान किया जा सकता है, तो वह व्यग्यं के माध्यम से ही हो सकता है।'[7]

संख्या में कम होते हुए भी काशीनाथ सिंह के उपन्यास समकालीन समाज की पड़ताल करते हैं और इसके विविध पहलुओं पर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, चाहे वह धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो या फिर राजनीतिक हो। जहाँ 'काशी का अस्सी' में काशी की बदलती तस्वीर पेश की गई है, वहीं उनके अन्य उपन्यासों यथा—'अपना मोर्चा' में छात्र आंदोलन और विश्वविद्यायों की राजनीति की बाते सामने आती है। 'रेहन पर रग्घू' में परिवार की समाज में समसामयिक स्थिति देखने को मिलती है। साथ ही अपनी जमीन से बिछड़ने का दुख और बुजुर्गो की दशा का आख्यान बयां करता है यह उपन्यास। उनके नए और ताजे उपन्यास 'उपसंहार' में तो महाभारत कालीन भूमि को आधार बनाकर समाज के ठेकेदारों, खासकर सत्ता पक्ष की जो खबर ली गई है, वह देखते बनती है। उनका उपन्यास 'महुआ चरित में पृत्तसतात्मक रूढ़ियों पर प्रहार किया गया है।

उपर्युक्त उपन्यासों में समाज की चिंता व्यक्त की गई है, लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि काशीनाथ सिंह ने व्यंग्य के माध्यम से उन तमाम बातों को कह डाला है, जिससे बड़े से बड़े सूरमा उनके लपेटे में आ गए। 'काशी का अस्सी' शीर्षक उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने राजनीतिज्ञों और धर्म के ठेकेदार तथा पाखंडियों की खूब खबर ली है और उन पर कठोर व्यंग्य से प्रहार किया है। अतः कशीनाथ सिंह अपने कथा— साहित्य को व्यंग्य की पैनी धार से गुजरने को बाध्य करते है। यह व्यंग्य एक ऐसी भाषा का रूप ग्रहण करता है, जो एक तरफ हास्य की सृष्टि करता है, तो दूसरी तरफ उसमें हमारे समय की विद्रूपताओं पर दूर तक तथा देर तक आघात पहुंचाने की क्षमता है। यह कहना कठिन है कि काशीनाथ सिंह का कथाकार व्यंग्य को भाषा में अनुकूलित करता है या उनकी कथा— भाषा ही व्यंग्य को अपने हिसाब से अनुकूलित करती है। भाषाई व्यंजनात्मकता में काशीनाथ सिंह कबीर, भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला के परम्परा के उततराधिकारी प्रतीत होते हैं। उनके कथा साहित्य में व्यंग्य एक 'टोही विमान' है, जो मनुष्य तथा मनुष्यता के विरोधियों, शत्रुओं को पूरी तरह नेस्तनाबूद कर देना चाहता है।

संदर्भ—सूची :—

1. गर्ग डॉ. शेरगंज ,व्यास डॉ.मदालसा, हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणसी, प्रथम संस्करण ,1999, पृष्ठसंख्या—02।
2. .वीणा दाढ़े , अधुनिक कथा साहित्य में वयंग्य का स्वरूप एवं विकास, जयभारती प्रकाशन, प्रथम संस्कण, 2008, पृष्ठ संख्या— 27।
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति— 2003, पृष्ठ संख्या—131।
4. दुबे, मनीष (सं) , काशी पर कहन, वर्षा प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या—479।
5. वही, पृष्ठ संख्या— 309।
6. सिंह, काशीनाथ ,कहानी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या— 248।
7. पूर्वोदधृत, श्याम सुंदर घोष (सं), व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यो, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या— 89।

ꙮ★ꙮ

ज्ञानप्रकाश पाण्डेय की ग़ज़लों में विद्रोह के स्वर

आरती देवी*

ग़ज़ल आज प्रेमिका से गुफ़्तगू की लक्ष्मण रेखा पार कर खेत, खलिहानों, शोषित वर्ग, राजनीतिक षड़यंत्रों, धार्मिक संकीर्णता पर तंज़, सामाजिक विघटन आदि समसामायिक जीवन संदर्भों से जुड़ी हुई है। ग़ज़ल में मानव जीवन के प्रत्येक रंग का चित्रण देखने को मिलता है। ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए ज्ञानप्रकाश पाण्डेय लिखते हैं–

धूप को ठेंगा दिखाकर जिस्म से मज़दूर के,
दम–ब–दम चूता हुआ नमकीन पानी है ग़ज़ल।
बेहिचक बे–रोक बे–खौफ़ो–खतर दिल खोल के,
दुम हिलाऊ दौर में आतिश बयानी है ग़ज़ल।[1]

ग़ज़ल को कैसा होना चाहिए, इस पर वे लिखते हैं–

धूप तीखी, खूं पसीना आग पानी चाहिए,
अब ग़ज़ल से इंकिलबी गंध आनी चाहिए।
अब अलिफ लैला न वो बोतल के क़िस्से कहो,
धूल–माटी में सनी ताज़ा कहानी चाहिए। [2]

पहले शराब–शबाब, लैला–मजनू आदि विषयों पर ग़ज़लें कहीं जाती थीं, परन्तु आज वह रूढ़ दृष्टिकोण खंडित हो गया है। आज ग़ज़ल आमजन से गुफ़्तगु कर रही है अर्थात् आम व्यक्ति की तड़प, शोषण, उदासी, अकेलापन आदि विषयों को केन्द्र में बनाए हुए है।

ग़ज़लकार ज्ञानप्रकाश पाण्डेय की ग़ज़लों में समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, अनैतिकता, साम्प्रदायिक दंगे, राजनीतिक व्यभिचार, उच्चादर्शों का पतन, उपेक्षित मानव मन का अतद्वंद, नारी जीवन की विडम्बना, अवसरवाद, आर्थिक विषमता, रोटी के लिए संघर्षरत आम आदमी, पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव, किसान की दशा, मीडिया का बदलता रूप आदि विषयों को बारीकी तथा बेबाकी के साथ विद्रोही तेवर में व्यक्त किया है। विद्रोह का रास्ता सीधा और सरल नहीं होता है। समाज में रहकर अनेक प्रपंचों, साज़िशों, प्रलोभनों आदि से आए दिन टकराना पड़ता है। समाज में व्याप्त रूढ़ तथा सड़ी–गली रीति–रिवाजों की झूठी इमारत को ध्वंस करने लिए अनेक चुनौतीपूर्ण रास्तों से गुज़रना पड़ता है। इस चुनौतिपूर्ण राह की हक़ीक़त बयाँ करते हुए ग़ज़लकार का शे'र है –

"इक ख़ता की थी सर उठाने की,
हर सितम हमने आँख भर देखा।"[3]

परिवार मानव जीवन के भीतर निरंतरता, एकता तथा स्थिरता का प्रतीक है। परिवार की एकता 'हम' भाव पर निर्भर होती थी, परन्तु आज 'मैं' की भावना पनपने लगी है। विकास की अंधी दौड़ में आज मनुष्य अपने परिवार से दिन–ब–दिन दूर होता जा रहा है। परिवार में एक–दूसरे के प्रति आत्मीय–भाव, प्रेम, सम्मान, विश्वास तथा समर्पण भाव का लोप हो रहा है। बाज़ार के कारण मानवीय संबंधों में औपचारिकता आ गयी है। इस कारण एक साथ रहते हुए भी घर में सदस्यों के भीतर अजनबीपन और कृत्रिमता आ रही है। आज कुटुंब संस्था की स्थिति इस प्रकार है :

"आ गया आँगन तलक बाज़ार अब,
घर की इज्ज़त धूप में मुरझा रही है।"[4]
"मकानात के खुश्क इन जंगलों में,

*** पीएच.डी. शोधछात्रा, हिन्दी एवं अन्य भारतीय, भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू।**

जहाँ देखिए एक घर मर रहा है।"[5]

घर के आँगन में पल्लिवत होने वाला प्रेम का पौधा अब बाज़ार की चपेट में आ गया है। प्रेम की जगह अब नफे–नुकसान का भाव उगने लगा है। बाज़ार की छिंटों ने घर को मकान में तबदील कर दिया है। अब घर केवल ईंट–पत्थर से बनी एक ईमारत है, जहाँ संवेदनाएं विलुप्त हो रही हैं। आधुनिकता, रोज़गार, नगरीकरण आदि के कारण संयुक्त परिवार बिखर कर एकल परिवार में बदल गए। परन्तु एकल परिवार के भीतर रागात्मक सम्बन्धों की जगह अकेलापन तथा अजनबीपन आ गया। बाज़ारवाद, भूमण्डलीकरण, उदारीकरण आदि नीतियां तो मानव विकास के लिए थीं परन्तु भौतिक उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए इन नीतियों ने मानव मन को संवेदनहीन बना दिया है। बदलते परिवेश को देखकर ग़ज़लकार प्रश्न उठाता है कि :

"ये सदी तो थी उजाले की सदी,
क़त्ल फिर क्योंकर हुआ एहसास का।"[6]

भौतिक तरक्की ऐसा मायाजाल है जिसके भीतर फंसकर हम त्याग, परोपकार, स्नेह आदि मानवीय मूल्यों को नष्ट कर रहे हैं। चमचमाती सदी ऊपरी सतह पर तो आकर्षक दिख रही है परन्तु भीतर–ही–भीतर वह मानव मन को खोखला कर रही है। हम ऐसी लक्ष्यहीन तथा दिशहीन प्रगति की दौड़ का हिस्सा हैं जिसमें मानव अपना विवेक तथा संवेदना की बली दे रहा है। जिस कारण आज मनुष्य बदहवास सी जिंदगी जी रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण आज भारतीय संस्कृति के परम्परागत मूल्य, संस्कार और विचारधारा में अंतर आया है। विविधता में एकता का सूत्र लिए भारतीय संस्कृति आज विविध संकटों से गुज़र रही है। आज हम अपनी संस्कृति की जड़ों से दूर हो रहे हैं। लोकगीत हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। लोक गीत घरेलू कार्यक्रमों में चार चाँद लगाते हैं। उनके अंतर्गत लोक के मन के हर्ष–विषाद की भावनाओं का चित्रण होता है। लोकगीत लोकजीवन का दर्पण हैं। परन्तु आज लोकगीतों की अवहेलना कर पॉप संगीत को अपनाया जा रहा है–

बस पतझड़ का पीलापन अब, कोंपल की अरुणाई चुप है।
सोहर कजरी तीजा गायब, मेरी बुढ़िया माई चुप है।
आज हनी सिंह प्रासंगिक हैं, तुलसी की चौपाई चुप है। [7]

लोक जीवन के आदर्श, नैतिक मूल्यों की शिक्षा, सौहार्द आदि लिए हुए लोकगीत, महान रचनाकारों के दोहों, चौपाई आदि की जगह सुरहीन, अर्थहीन तथा लयहीन गीतों को प्रासंगिता मिल रही है।

वर्तमान दौर को नारी सशक्तिकरण का दौर माना जाता है। नारी चार दिवारों से बाहर निकल कर प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है। परन्तु आज भी उसका जीवन अनेक अंतर्विरोधों से भरा हुआ है। वह सशक्त तथा जागरुक तो है परन्तु शोषण मुक्त नहीं है। घर से लेकर दफ़्तर तक आज भी उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। युग परिवर्तन के साथ उसके साथ हो रहे शोषण का केवल रूप बदला है। भारतीय संविधान में उसके समान अधिकार दिलाने हेतु कई कानून बनाए गए हैं, जैसे – हिन्दु विवाह अधिनियम (1985), समान पारिश्रमिक अधिनियम, देह व्यापार अधिनियम आदि। परन्तु उसकी सुरक्षा का प्रश्न आज भी बना हुआ है। घर से बाहर निकल कर काम करना आज भी उसके लिए चुनौतिपूर्ण कार्य है। अपहरण, बलात्कार, कार्यस्थल पर छेड़–छाड़ जैसी अनेक समस्याएँ उसके सम्मुख हैं। इसी ज्वलंत प्रश्न को रचनाकार ने इस प्रकार शब्दबद्ध किया है :

अब कहाँ जाएँ जनक की बेटियाँ ये,
भेष बदले एक रावण छल रहा है।[8]

यहाँ रचनाकार सभ्य समाज के बनावटी मुखड़े को उधेड़ कर उसके असली रूप को दर्शाते हुए, उससे प्रश्न करता है कि 'कहाँ'? रावण जैसी प्रवृत्ति वाला पुरुष आज भी नारी जीवन के लिए एक कलंक बना हुआ है। सीता के साथ छल से हुए अपहरण की गाथा वर्तमान युग में निरंतर व्याप्त है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्नयते, रमन्ते तत्र देवता' – संस्कृत का यह श्लोक नारी के महत्त्व को दर्शाता है। धर्म के भीतर नारी को

देवी, शक्ति आदि नामों से संबोधित किया गया है। उन्हीं धर्म के ठेकेदारों के असली चेहरे को दिखाते हुए, लेखक का शे'र है– "जिनके सम्मुख लुट रही 'द्रोपदी'
धर्म के वो ही तो ठेकेदार हैं।"[9]

वे धर्म गुरुओं को आड़े–हाथ लेते हुए उन की न्याय–नीति तथा नारी को देवी स्थान देना जैसे खोखले दावों पर तंज़ करते हैं। बड़े–बड़े धर्म के ठेकेदारों की चुप्पी ही द्रौपदी के साथ अन्याय का कारण बनी तथा आज भी समाज में यह समस्या विधमान है। पुरुष प्रधान समाज में नारी अपना अस्तित्व बनाने के लिए प्रयत्न कर रही है। वह जागरुक है तथा निरंतर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। ग़ज़लकार के शब्दों में :

"सर उठा जब मुकाबिल खड़ी हो गई,
बाज़ से इक चिड़िया बड़ी हो गई।"[10]

विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश (भारत) आज कुछ हाथों की कठपुतली बना हुआ है। राजनीति का मूल धर्म समाज सेवा है परन्तु अब स्वसेवा की योजनाएँ बनाई जाती हैं। आज राजनीति के भीतर अनैतिकता, अनाचार, भ्रष्टाचार, स्वार्थ आदि कुप्रवृत्तियाँ आई हैं। चारों ओर अराजक माहौल पैदा हो गया है, जिसका खामयाज़ा आम जनता को भुगतना पड़ता है। देश की दिशाहीन स्थिति को ग़ज़लकार इस प्रकार व्यक्त करता है–

"जिस तरफ भी देखता हूँ खून के धब्बे पड़े,
मुल्क है ये या लहू चुता हुआ अख़बार है।"[11]

लोकतंत्र व्यवस्था को आए–दिन अखबार और टी.वी. में जोकतंत्र की भांति पेश किया जा रहा है। जिस कारण लोकतंत्र का महत्त्व तथा गरिमा नष्ट हो रही है। वंशवाद की परंपरा ने राजनीति को एक व्यापार बना दिया है। राजनीति कुछ लोगों की विरासत बन रही है, जिसमें वह किसी बाहरी व्यक्ति को पनपने तक नहीं देते।

"यहाँ कुछ लोग मुटठी में बहारों को दबाकर के,
भुनाने में लगे हैं बुलबुलों की सर्द लाचारी।"[12]

भारतीय संस्कृति में नेती की कल्पना समाजसुधारक तथा राष्ट्रनायक के रूप में की जाती है परन्तु वर्तमान समय में नेता के रूप बदल चुके हैं। आम आदमी के बलबूते पर नेता लोग सत्ताधीश बनते हैं परन्तु बाद में उसी आम जनता को दरकिनार किया जाता है। विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र के भीतर अधिकांश नेता भ्रष्ट, वंशवाद के पक्षधर तथा स्वार्थी हो गए हैं। वर्तमान राजनीति की बिडम्बना यह है कि रातों–रात योजनाएं बनाकर लागू कर दी जाती है तथा जनता के मत को अहमियत नहीं दी जाती है। तुगुलकी फरमान का विरोद्ध करते हुए लेखक का शे'र है–

"बहुत तुगुलकी योजनायें बना ली,
किसी बिन्दु पर अब ठहरने के दिन हैं।"[13]

स्वस्थ राजनीति का यह विकृत पक्ष है तथा लोकतंत्र के लिए हानिकारक है। लोग चुनाव प्रक्रिया द्वारा अपनी सरकार का चयन करते हैं परन्तु वही सरकार तुगुलकी योजनाएं बनाए तो लोकतंत्र के अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में लोक मत का कोई महत्व नहीं रहेगा। आधुनिक युग में राजनीति के भीतर हो रही उथल–पुथल से जनता भली–भांति परिचित है। जागरुक जनता की मनोस्थिति को दर्शाते हुए लेखक कहता है– "उतरने को तो उतरे हैं सुलगते प्रश्न सड़कों पर
जवाबी खिड़कियाँ लेकिन अभी तक बंद हैं सारी।"[14]

रोज़ सुलगते प्रश्नों को खड़ा कर सरकार केवल मौन साधे रहती है, और जनता केवल प्रश्नों में ही उलझी रहती है। धर्म का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करते हुए उसके जीवन को सही दिशा की ओर अग्रसर करना है। आधुनिक युग में धर्म का पवित्र स्वरूप खंडित हो रहा है। ढोंगी बाबा धर्म के ठेकेदार बनकर भोली–भाली जनता के विश्वास को छलते हैं। आसाराम, रामरहीम आदि जैसे ढोंगी बाबा धर्म की आढ़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे कपटी धर्मगुरुओं पर कटाक्ष करते हुए रचनाकार का शे'र है :

"मुसलसल आजतक जो खेलता आया शराफत से,
वही दाढ़ी बढ़ा अख़्लाक की बातें बताता है।"[15]

आधुनिक युग को हम वैज्ञानिक क्रांति का युग कहें तो अतिश्योक्ति न होगी। एक ओर जहाँ हम चाँद पर अपना परचम लहरा रहे हैं वहीं दूसरी ओर आम जनता कहीं–न–कहीं आज भी अंधविश्वासों से जकड़ी हुई है। अंधविश्वास बुद्धि तथा विवेक पर हावी हो जाता है और तर्क हमें सही–गलत की पहचान कराता है। तर्क और अंधविश्वास एक ही कश्ती में सवार होकर नहीं चल सकते हैं।

"जिस तरफ देखो वहीं बाबा खड़े इस देश में,
किस तरह विज्ञान का इस दौर में विस्तार हो।"[16]

भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रगति में किसान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। किसान को तप और त्याग की मूर्त कहा जा सकता है। वह धूप, ठंड और बारिश के मौसम में अपनी दृढ़ साधना द्वारा माटी से सोना उगाते हैं। अतः देश के किसान की उन्नति के लिए कार्य किए जाने चाहिए। किसान क्रेडिट कार्ड योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, परंपरागत कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय किसान विकास योजना, किसान सम्मान निधि योजना आदि योजनाओं के केन्द्र में किसान हैं। सभी योजनाओं के अर्न्तगत किसान को आत्मनिर्भर, आर्थिक विकास, फसल की गुणवत्ता आदि बिन्दुओं पर कार्य किया जाता है। प्रत्येक सरकार केवल योजनाओं के नाम फेर–बदल करती है। यथार्थ के धरातल पर इन योजनाओं का जांचा जाए तो यह योजनाएं कोरी सिद्ध होती हैं। आज़ादी के इतने सालों बाद किसान की दशा में केवल 19–20 का अन्तर आया है। कृषक जीवन की वास्तविक स्थिति इस प्रकार है–

"अब न गेहूँ न धान खेतों में, बो रहा क्या किसान खेतों में।
सर्द चूल्हे सिसक रहे हर सू, जल रहा संविधान खेतों में।
तरबतर कौन यूँ पसीने से, दे रहा इम्तहान खेतों में।"[17]

किसान की स्थिति में कोई बेहतर बदलाव नहीं आ रहा है। बल्कि स्थिति इतनी भयानक बनती जा रही है कि किसान आत्महत्या जेसै फैसले कर रहा है। सरकार की योजनाओं के प्रलोभन पर कटाक्ष करते हुए ज्ञान प्रकाश पाण्डेय के अशआर हैं :

"चुक न पाया किसान क्रेडिट फिर, बैंक निगले कहीं न घर भइया।"[18]
"बिक गए बैल खेत रेहन है, अब तो भटके है दर–बदर हल्कू।"[19]

अथाह परिश्रम कर किसान अपने लिए दो जून की रोटी जुटाता है परन्तु उसके जीवन की त्रासदी यह है कि प्राकृतिक आपदाएँ उसके जीवन को और कष्टदायक बना देती हैं। उसका प्रत्येक पल इस डर में व्यतीत होता है कि न जाने किस पल मौसम कखट बदल दे और उसका परिश्रम मिट्टी में मिल जाए। किसान के भीतर इसी डर को लेखक इस प्रकार व्यक्त करता है :

"पूस आषाढ़ या हो जेठ मियाँ, इन किसानों को बस है डर भइया।"[20]
"बाढ़ पहले औ बाद में सूखा, मर रहा है ठहर–ठहर 'हल्कू'।"[21]

किसान को सरकारी षडयंत्रों के प्रति सचेत करते हुए ज्ञान प्रकाश पाण्डेय लिखते हैं :

"आसमाँ पर एक टुकड़ा उड़ रहा बादल मर,
ऐ किसानों! खुश न हो ये मेघ सरकारी अरे!"[22]

ग़ज़लकार किसान के साथ हो रहे अन्याय को विद्रोही तेवर में व्यक्त करते हुए लिखता है :

"खुश्क खेतों की फट रही छाती,
क्यों न आती है ये नहर 'हल्कू'।"[23]

मेहनतकश वर्ग के लिए आज भी सबसे बड़ा प्रश्न भूख है। इसी प्रश्न का ज़िक्र रचनाकार इस प्रकार करता है :

"काबा मेरे आगे न कलीसा मेरे आगे,
दो वक्त की रोटी की है चिंता मेरे आगे।"[24]

श्रमिक वर्ग को ताउम्र परिश्रम करने के उपरान्त भी पेट की आग के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। वह आज भी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में जीवन व्यतीत कर रहा है। मीडिया लोकतंत्र का चौथा महत्त्वपूर्ण स्तम्भ माना जाता है। यह तो सशक्त माध्यम है जिसके ज़रिए शोषित वर्ग तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठायी जाती है। परन्तु आज मीडिया की विश्वसनीयता की डोर कमजोर हो रही है। युग परिवर्तन के साथ–साथ इसके भीतर भी कई बदलाव आए हैं जिस कारण पाठक आँख बंद कर खबरों पर भरोसा नहीं कर सकता। मीडिया में आए दूषित परिवर्तन पर चोट करते हुए लेखक लिखता है :

"रूप बदले हैं कई इस दौर में किरदार ने,
हक़बयानी छोड़ दी मुल्क के अखबार ने।"[25]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समाज में भयग्रस्त माहौल बना हुआ है। परन्तु समाज में जहाँ एक ओर अत्याचार, अन्याय है वहीं दूसरी ओर ऐसा वर्ग भी मिल जाएगा जोकि शोषित वर्ग का हिमायती है तथा अन्याय का विरोध भी करता है। ऐसे संघर्षरत तथा प्रयत्नशील वर्ग को संबोधित करते हुए रचनाकार की दो पंक्तियां हैं :

"पतझड़ों से कर रहा संघर्ष पर,
आँख में सपना भरा मधुमास का।"[26]

जीवन में विपरीत परिस्थितियां होने पर भी हमें मधुमास के सपने को नहीं छोड़ना चाहिए। सपने मानव जीवन के जीवंतता का प्रतीक हैं जोकि उसे प्रयत्न करने के लिए प्रेरणा देते हैं। बेशक न्याय के पक्षधर संख्या में कम हों परन्तु वह बड़े–से–बड़े अन्धकार को मिटाने में समर्थ हैं।

सुना है जुगनुओं ने ठान ली है सर उठाने की,
उजालों से अँधेरे की न अब तो अनुचरी होगी।"[27]

जुगनुओं का अस्तित्व हमेशा समाज मे बना रहेगा। वह निरंतन अंधेरे को मात देते रहेंगे। ज्ञानप्रकाश पाण्डेय ने अपनी ग़ज़लों में समाज में व्याप्त विसंगतियों को शब्दबद्ध कर यथार्थ चित्रण करते हुए, शोषित वर्ग को सचेत करने का प्रयास किया है। वह मानव जीवन की जटिलताओं से परिचित होने के बावजूद जीवन के प्रति आस्था तथा विश्वास की लौ नहीं बुझने देते। सर्द मौसम की खलिश शीर्षक में 'सर्द' शब्द जहाँ समाज में व्याप्त संवेदनहीनता, अनैतिकता, अराजक माहौल आदि को दर्शाता है वहीं 'खलिश' वह सकारात्मक उर्जा है जो मानव जाति को निरंतर अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उसे प्रेरित करती है।

संदर्भ–सूची :–

1. ज्ञानप्रकाश पाण्डेय, सर्द मौसम की ख़लिश, पृ. 80
2. वही, पृ. 100
3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 68
5. वही, पृ. 49
6. वही, पृ. 74
7. वही, पृ. 106
8. वही, पृ. 92
9. वही, पृ. 102
10. वही, पृ. 108
11. वही, पृ. 37
12. वही, पृ. 53
13. वही, पृ. 36
14. वही, पृ. 55
15. वही, पृ. 65
16. वही, पृ. 55
17. वही, पृ. 34
18. वही, पृ. 24
19. वही, पृ. 25
20. वही, पृ. 23
21. वही, पृ. 25
22. वही, पृ. 62
23. वही, पृ. 23
24. वही, पृ. 44
25. वही, पृ. 98
26. वही, पृ. 74
27. वही, पृ. 64

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता
(दिव्यांग विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में)

सुधीर कुमार तिवारी*

शोध–सार :– *भारत में समावेशी शिक्षा का वर्तमान स्वरूप शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु किये जा रहे संरचनात्मक परिवर्तनों का परिणाम है। समावेशी शिक्षा एक सामाजिक विचारधारा की उपज है जिसमें दिव्यांग विद्यार्थी अपने साथियों के साथ सामान्य कक्षाओं में शिक्षण–अधिगम को सीखते हैं। समावेशी शिक्षा न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है जिससे सामाजिक–आर्थिक विषमता को समाप्त किया जा सकता है। शिक्षा एक साधन है जो बालकों की क्षमताओं को निखारने का कार्य करती है। इस कार्य में शिक्षक उनकी सहायता करता है। बदलते परिवेश में शिक्षकों से कई अपेक्षाए की जाती हैं कि एक शिक्षक के रूप में ज्ञान के साथ–साथ कौशल, मानवीय मूल्यों से भी परिपूर्ण होने की जरूरत है, जिससे विद्यार्थियों में ज्ञान के साथ–साथ मानवीय मूल्यों को भी विकसित किया जा सके। समावेशी शिक्षा में दिव्यांग विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान किया जाता है, जिससे शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों की क्षमता को उन्नत बनाया जा सके और समाज के सकारात्मक और रचनात्मक नागरिकों को तैयार किया जा सके।*

समावेशी शिक्षा सामाजिक प्रारूप पर आधारित है, जिसके अंतर्गत विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह दिव्यांग विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण करके विद्यालय में उनकी भागीदारी को हर स्तर पर सुनिश्चित करे। समाज का विकास उसमें निहित सम्पूर्ण मानवीय क्षमताओं का कुशलतापूर्वक उपभोग पर निर्भर करता है, समाज के सभी वर्ग के सहयोग के बिना पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता है। शिक्षा किसी समाज के उर्ध्वगामी विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत में विकलांग लोगों की संख्या अधिक है और इनके विकास के बिना देश का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। भारत में विकलांग लोगों के लिए शिक्षा का इतिहास एक बदलते स्वरूप में उभरता हुआ दिखाई देता है (शुक्ला, 2015)। समावेशी शिक्षा द्वारा शिक्षक एवं विद्यार्थी एक ऐसा वातावरण बनाने के लिए एक साथ काम करते हैं जिसमें प्रत्येक छात्र की योग्यता को केंद्र में रखते हुए उचित शिक्षण कार्य का क्रियान्वयन किया जाता है, जिससे सभी विद्यार्थियों को सीखने के लिए एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण हो सके। इस प्रकार समावेशी कक्षाओं द्वारा शिक्षक एवं छात्र दोनों की समान भागीदारी और पारस्परिक सम्मान को बढ़ावा दिया जाता है।

समावेशी शिक्षा एक साधन है, न कि साध्य, जो सीखने की चाह रखने वाले विद्यार्थियों में अवरोधों के बावजूद भी उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं को ऊर्ध्वगामी दिशा की ओर प्रेरित करती है और उनकी भिन्नताओं के बावजूद उन्हें पठन–पाठन का एक समान अवसर प्रदान करती है। पिछले कुछ सालों में समावेशी शिक्षा ने दुनिया भर में सभी शिक्षा नीतियों को प्रभावित करते हुए समावेशन की एक नयी अवधारणा को मजबूत आधार प्रदान किया है। अधिकांश देशों ने अपनी शिक्षा प्रणाली को और अधिक समावेशी बनाने के प्रयास किये है जिसके परिणाम स्वरूप विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है (बॉयल एवं अन्य, 2015)। संजीव, के. सिंह एस. पी., 2008 के अनुसार, समावेशी शिक्षा हाल ही में भारतीय शिक्षण–अधिगम प्रणाली से जुड़ा है जो संप्रेषण माड्यूल के जरिये चलाये जा रहे सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, मूल्यांकन के अधिकांश पैमाने पर खरा उतरा है। इसके अधिकांश प्रशिक्षण माड्यूल गुणवत्तापूर्ण हैं। आवश्यक है केवल इसके क्रियान्वित रणनीतियों में सुधार लाने की जिससे प्रशिक्षण कार्यक्रम को और अधिक बेहतर बनाया जा सके।

समावेशी शिक्षा हेतु कक्षा–कक्ष–प्रबंध की आवश्यकता अत्यधिक मानी जाती है, क्योंकि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत वे बालक आते हैं जो कि विशिष्टता लिए हुए होते हैं। अतः इन विशिष्ट बालकों हेतु कक्षा–कक्ष–प्रबंध भी उसी अनुसार किया जाता है (नारंग, 2017)। विकलांगजनों के लिए सुगम्यता सबसे जरूरी है। अवसरों की

*** पी–एच. डी. शोधार्थी, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र।**

समानता प्रदान करने के लिए बाधामुक्त वातावरण प्रदान किया जाना एक मूलभूत आवश्यकता है। सुगम्य और बाधामुक्त वातावरण विकलांगजनों के अधिकारों और सामुदायिक जीवन के हर क्षेत्र में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए बेहद अवाश्यक है (पाठक, 2016)। समावेशी शिक्षा अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच की कड़ी को मजबूत करती है, जिससे विद्यार्थियों के ज्ञान का विकास होता है। समावेशी शिक्षा कक्षाओं में ऐसे वातावरण का निर्माण करती है जिससे बच्चे स्कूली शिक्षा के साथ साथ अन्य सामाजिक गतिविधियों से जुड़ सकें।

विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं एवं योग्यताओं के साथ स्वीकार करना ही समावेशी शिक्षा देन है। समावेशन की इस प्रक्रिया में दिव्यांग विद्यार्थियों को सामान्य कक्षाओं में साथियों के साथ सीखने के साथ–साथ एक दूसरे को समझने के अवसर मिलते हैं। हेलेन केलर, स्टीफन हॉकिंग, रूजवेल्ट, अल्बर्ट आइंस्टीन, लूई ब्रेल, थॉमस अल्वा एडिसन... जैसे वास्तविक नायक समाजिक उत्थान के लिए सक्रिय रहे। स्टीफन हॉकिंग व्हील चेयर पर आश्रित महान वैज्ञानिक हैं तो हेलेन केलर मूक–बधिर होते हुए भी विश्व की महान लेखिकाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। अल्बर्ट आइंस्टीन ने 'सापेक्षता का सिद्धान्त' विकसित किया तो थॉमस अल्वा एडिसन ने 'बिजली का आविष्कार' करके संसार को अंधकार से प्रकाश की ओर लाने का प्रयास किया। लूई ब्रेल ने संसार के दृष्टिबाधित दिव्यांगों को शिक्षण हेतु स्पर्शीय ज्ञान का बोध कराया। अर्थात् समावेशी शिक्षा सभी विद्यार्थियों की योग्यता को परिमार्जित करने वाला मात्र दृष्टिकोण नहीं है बल्कि उन्हें उनकी विशिष्टताओं के साथ स्वीकार करने की एक विकसित प्रणाली है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। समावेशन सभी विद्यार्थियों को एक ही स्तर पर आंके जाने पर जोर नहीं देता जिन्हें पहले से तय सूचनाएं दी जाएं, क्योंकि ज्ञान हासिल करना सक्रियता है, निष्क्रियता नहीं। इसका रूपान्तर होना चाहिए और इसके लिए शिक्षा ग्रहण करने वालों की भागीदारी जरूरी है (चड्ढा, 2016)। इस प्रकार उक्त सभी दिव्यांग नायकों ने अपनी प्रतिभा को सिद्ध किया। जरूरत है दिव्यांगों को उचित निर्देशन एवं मार्गदर्शन की है, जो उन्हें विद्यालय की कक्षाओं में प्रशिक्षित शिक्षकों के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार समावेशित शिक्षा की अवधारणा में ऐसी आदर्श कक्षा की कल्पना की गयी है, जहाँ हर बच्चे की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। विशेष शिक्षा स्कूल की अवधारणा में विशेष शिक्षा सामान्य शिक्षा का एक घटक था जबकि समावेशित शिक्षा में विशेष शिक्षा समान शिक्षण का ही एक हिस्सा है (भास्कर एवं अन्य, 2017)। समावेशी शिक्षा द्वारा विद्यालय में भेदभाव रहित, अवरोध रहित वातावरण का निर्माण किया जाता है और उपयुक्त उपकरणों की सहायता से उनके अंदर छिपी प्रतिभा की पहचान करके उसकी क्षमताओं का विकास कर उसे आत्मनिर्भर बनाया जाता है।

विकलांगता की अवधारणा :– भारत की जनगणना (2001) के अंतर्गत विकलांगता की अवधारणा के अंतर्गत पाँच प्रकारों (मानसिक, दृश्य, श्रवण, भाषण और गतिशीलता) को ध्यान में रखते हुए जनगणना में शामिल किया गया जो कि सामाजिक मॉडल पर आधारित थीं, जबकि निःशक्त व्यक्ति अधिनियम (1995) एवं दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016) में दी गई परिभाषाएँ चिकित्सा मॉडल पर आधारित हैं।

दिव्यांग विद्यार्थियों के अधिगम में आने वाली चुनौतियाँ– दिव्यांग विद्यार्थियों को शिक्षण अधिगम में आने वाली चुनौतियां उनकी विकलांगता के कारण नहीं हैं, बल्कि सहायक उपकरणों, जागरूकता की कमी है। नीतियों और कानूनों के प्रभाव ने शिक्षा क्षेत्र के परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। विकलांग बच्चों के अलावा विभिन्न सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक आधार वाले बच्चे अब नियमित स्कूलों में हैं। एक स्कूल की एक विशिष्ट कक्षा में अब विभिन्न सांस्कृतियों, सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि और विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थी होते हैं। शिक्षक के लिए कक्षा को अकादमिक और सामाजिक दोनों संदर्भों के रूप में समझना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि यह बातचीत संवाद और विविधता की सराहना करने का अवसर प्रदान करता है जो समावेशी शिक्षा के लिए एक समान अवसर और विकास के लिए योगदान देता है। समावेशी शिक्षा को विकसित करने में एक बड़ी चुनौती बच्चे को सामाजिक संदर्भ में समझना है, क्योंकि इसकी आवश्यकताएं देश के भावी नागरिकों को विकसित करने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार है। एक शिक्षक के रूप में आपको सामाजिक, सांस्कृतिक और

क्षेत्रीय पृष्ठभूमि को समझने की आवश्यकता होती है, जिससे सीखने वाले विद्यार्थियों की योग्यता की विविधता को समझा जा सके। समावेशी शिक्षा विकसित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण गुणवत्ता में से एक है कि आप समावेशी शिक्षा की मांगों के प्रति मानवीय एवं उत्तरदायी हों।

समावेशी अधिगम प्रक्रिया के आवश्यक रूप :– समावेशीकरण का अर्थ है कि विद्यालय में नाना प्रकार के उपागम, तकनीकी, तरीकों के प्रयोग द्वारा विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना है जिससे शिक्षा ग्रहण करने में सुगमता प्रदान की जा सके (नामदेव, 2017)। एक समावेशी कक्षा में दिव्यांगता के आधार पर बिना भेदभाव के सभी विद्यार्थियों को शामिल किया जाता है। इस प्रक्रिया में दिव्यांग विद्यार्थियों अधिगम समस्याओं एवं जरूरतों के लिए मानक पाठ्यक्रम को समायोजित करने का प्रयास किया जाता है। विकलांग बच्चों की आवश्यकता के आधार पर रैंप, सुलभ शौचालय या अन्य सुविधाओं द्वारा स्कूल को बाधा–रहित बनाया जाता है। जब कोई दिव्यांग बच्चा पहली बार विद्यालय में आता है तो शिक्षक की ज़िम्मेदारी है कि उस दिव्यांग विद्यार्थी के अंदर निहित योग्यताओं की पहचान कर उन योग्यताओं को विस्तार दें।

निष्कर्ष– समावेशी वातावरण विद्यार्थियों के मध्य एक स्वस्थ्य वातावरण बनाता है जिसमें शिक्षक विद्यार्थियों के साथ एक दोस्ताना तालमेल विकसित करते हैं और विद्यालय को दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति संवेदनशील बनाता है। वर्तमान समय में परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य के अनुरुप शिक्षकों को शिक्षण व्यवसाय हेतु तैयार करना शिक्षक–शिक्षा की मुख्य चुनौती है (यादव एवं अन्य, 2016)। समावेशी कक्षा में पाठ्यक्रमों में किस प्रकार की विविधता की संभावना है, यह जानने के लिए छात्रों की उपलब्धि, पृष्ठभूमि के बारे में या अन्य माध्यमों से छात्रों की जानकारी को एकत्र कर सकते हैं। कक्षा में सभी छात्रों को सक्रिय रूप से शामिल किया जाता है एवं उनकी योग्यताओं को ध्यान में रखा जाता है। इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

दिव्यांगजनों का जीवन अलग तरह का होता है। उनकी विकलांगता से उन्हें अक्सर महसूस होता है या समाज द्वारा उन्हें बोध कराया जाता है कि वे समाज के बोझ हैं। सशक्तिकरण के लिए उनकी जरूरतें बिलकुल अलग हैं। यानी कार्यक्रमों को उनकी जरूरतों के हिसाब से बनाने की दरकार है। विकलांगता शारीरिक रूप में दिव्यांग विद्यार्थियों से उतना नहीं छीनती जितना सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से वह उन्हें प्रभावित करती है। इसलिए विकलांग व्यक्तियों के लिए भेदभाव मुक्त और समान–अधिकारिक जीवन का स्वप्न साकार करने के लिए संस्थागत प्रबंधों और कानूनी प्रावधानों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता विकलांग व्यक्तियों के बारे में हमारी सोच में बदलाव की है।

संदर्भ–ग्रन्थ–सूची :–

1. Boyle, S., & Sharma, U. (2015). Inclusive education-Worldly views? Support for Learning, 301, 1-3. https://doi.org/10.1111/1467-9604
2. चड्ढा, ए. (2016). भारत में समावेशी शिक्षा का स्वरूप. योजना, जनवरी, 01(60), नई दिल्ली।
3. नामदेव, एच. (2017). समावेशी शिक्षा. आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन. प्रथम संस्करण।
4. नारंग, एम.के. (2017). समावेशी शिक्षा. आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन. प्रथम संस्करण।
5. पाठक, ए. (2016). सुगम्य भारत अभियान (निर्बाध वातावरण और सशक्तिकरण की राह), योजना, मई 05(60), नई दिल्ली।
6. भास्कर, एस. – श्रीवास्तव ए. के. (2017). समावेशी विद्यालयों का सृजन. आगराः राखी प्रकाशन. प्रथम संस्करण।
7. यादव वी. और शर्मा ए.के. (2016). परिवर्तित परिदृश्य में शिक्षक–शिक्षा संबंधी नयी दृष्टि. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 23(2), 121–130।
8. शुक्ला, एस. के. (2015). सामान्य एवं अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 22(2), 91–102।
9. संजीव, के. – सिंह एस. पी. (2008). सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सेवाकालीन प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन. परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), 15(3), 75–80।

ꕥ★ꕥ

भाषाओं की जननी के रूप में संस्कृत का योगदान

रंजय कुमार पटेल*
डॉ. मनीषा रानी**

सारांश :– यह सर्वविदित है कि भारतीय जनमानस के द्वारा संस्कृत भाषा वर्तमान सन्दर्भों में एक तिरस्कृत एवं उपेक्षित भाषा के नजरिये से देखी व सोची जा रही है जबकि इसका भी अपना एक अत्यन्त गौरवशाली इतिहास रहा है। मानवीय जीवन के विभिन्न अवस्थाओं या पक्षों से सम्बन्धित समग्र व्यवहार का यथा न्यायोचित सांगोपांग विवेचन संस्कृत साहित्य में किया गया है वैसा अन्य भाषा या विधाओं में अत्यल्प है। अब संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्यिक भण्डार रूपी खजाने को एक नये नजरिये से देखने व आकलन करने की जरूरत है जैसा कि विदेशी शिक्षा एवं शोध संस्थानों द्वारा निरन्तर किया जा रहा है। निश्चित् रूप से देश, काल, वातावरण एवं परिस्थिति की दृष्टि से इस भाषा की भी अपनी यत्किंचित् जो परिसीमाएँ हैं उसकी उपेक्षा या निन्दा होनी ही चाहिए किन्तु उससे भी पूर्व आवश्यक शर्त यह हो कि हम संस्कृत के विशालकाय साहित्य को पहले अच्छी तरीके से जानें व समझें तो सही। अतः हम भारतीयों के द्वारा संस्कृत के प्रति उपेक्षा नहीं अपितु सम्मान का भाव हो जैसा कि भारतीय विद्वानों का स्वभाव भी रहा है यहीं इस अध्ययन का परम ध्येय है।

प्रमुख शब्द :– शास्त्रीय भाषा, सुधर्मा, एल्गोरिदम, पाण्डुलिपियाँ, ताड़पत्र।

प्रस्तावना :– वर्तमान समय में प्राप्त सबसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ ऋग्वेद है जो कम से कम ढाई हजार ई. पू. की रचना है। ऋग्वेद काल से लेकर आज तक संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वांङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक किसी न किसी रूप में संस्कृत का अध्ययन–अध्यापन अब तक होता चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति और विचारधारा का माध्यम होकर भी यह भाषा अनेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष रही है। इस भाषा में धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, मानविकी आदि प्रायः समस्त प्रकार के वांङ्मय की रचना हुई है। संस्कृत भाषा का साहित्य अनेक अमूल्य ग्रंथरत्नों का सागर है इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है। अति प्राचीन होनें पर भी इस भाषा की सृजन–शक्ति कुण्ठित नहीं हुई है। संस्कृत का इतिहास बहुत पुराना है। जिस प्रकार देवता अमर हैं उसी प्रकार संस्कृत भाषा भी अपने विशाल साहित्य, लोक हित की भावना, विभिन्न प्रयासों तथा नित्य नवीन शब्दों के निर्माण की क्षमता आदि के द्वारा अमर है **(पाण्डेय, आर. 2015)**। इसकी सुस्पष्ट व्याकरण और वर्णमाला की वैज्ञानिकता के कारण सर्वश्रेष्ठता भी स्वयंसिद्ध है। सभी भाषाओं में एकवचन और बहुवचन होते हैं जबकि संस्कृत में द्विवचन अतिरिक्त होता है। भारत में संस्कृत के अध्ययन–अध्यापन से भारतीय भाषाओं में अधिकाधिक एकरूपता आती है। विश्व की सभी भाषाओं में एक शब्द के एक या कुछ ही रूप होते हैं जबकि संस्कृत में प्रत्येक शब्द के 27 रूप होते हैं। संस्कृत अन्य सभी भारतीय भाषाओं की जननी है जिसकी अधिकांश शब्दावली या तो संस्कृत से ली गयी है या संस्कृत से प्रभावित है **(आर्य, एम. 2014)**। संस्कृत का साहित्य अत्यन्त प्राचीन, विशाल और विविधता पूर्ण है। इसमें अध्यात्म, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान और साहित्य का खजाना है। संस्कृत भाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है 'सन्धि'। संस्कृत में जब दो अक्षर निकट आते हैं तो उनमें सन्धि होने से स्वरूप और उच्चारण बदल जाता है। संस्कृत वाक्यों में शब्दों को किसी भी क्रम में रखा जा सकता है।

*** शोधार्थी, शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चम्पारण, बिहार।**
****सहायक प्राध्यापिका, शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चम्पारण, बिहार।**

संस्कृत भाषा :– 'संस्कृत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के ही 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग के योग से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'संस्कार की गई भाषा'। संस्कृत भारतीय उपमहाद्वीप की एक शास्त्रीय भाषा है। इसे देववाणी अथवा सुरभारती भी कहा जाता है। यह विश्व की आदिभाषा तथा समस्त भाषाओं की जननी है। यह विश्व की सर्वाधिक पूर्ण एवं तर्क सम्मत भाषा है **(झा, 2016)**। यह 'संस्कृत भाषा परिवार' की एक प्रतिनिधि भाषा है, जिसकी लेखन प्रणाली वस्तुतः देवनागरी लिपि के साथ ही साथ 'ब्राह्मी' एवं 'रोमन लिपि' भी है। मानव इतिहास का सबसे पुराना जीवित दस्तावेज ऋग्वेद है। संस्कृत केवल भाषा ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति है। भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 आधिकारिक भाषाओं के साथ यह आज भी विराजमान है तथा त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत भी संस्कृत भाषा समाहित है। अनेकानेक शैक्षिणक एवं गैर शैक्षणिक संस्थानों तथा परिषदों इत्यादि का ध्येय वाक्य भी संस्कृत के ही मन्त्रों के अंश होते हैं जैसे– सर्वोच्च न्यायालय का *'यतो धर्मस्ततो जयः'*, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान का बीज सूत्र *'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'*, दिल्ली विश्वविद्यालय का *'निष्ठा धृतिः सत्यम्'*, कॉर्पोरेशन बैंक का बीज सूत्र *'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु'*, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ का *'विद्ययाऽमृतमश्नुते'*, उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद का *'तमसो मा ज्योतिर्गमय'* इत्यादि। संस्कृत भारत की ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम भाषा है। विश्व के अन्य देशों में लोग जिस समय सिर्फ सांकेतिक भाषा से परिचित थे उस समय भारत में संस्कृत भाषा के द्वारा 'आत्मज्ञान' एवं 'ब्रह्मज्ञान' का प्रचार–प्रसार किया जा रहा था। संस्कृत केवल ग्रन्थ रचना तक ही सीमित नहीं थी अपितु रामायण एवं महाभारत काल में यह जन साधारण की भी भाषा थी। तब से लेकर आज तक यह भाषा जन साधारण की भाषा बनी हुई है। हालाँकि इस दौरान संस्कृत बोलने वालों की संख्या में भी तमाम उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। श्री नरहरि विष्णु गाडगिल के शब्दों में "संस्कृत भाषा का लालित्य, सौन्दर्य, शैली, शब्द सम्पत्ति, गतिशीलता, संस्कृत वांङ्मय में प्रतिपादित विचार, ज्ञान और अध्यात्म विद्या जब मन और आँखों में आती है तब यह अलौकिक दृष्टि लोगों के लिए भी उपयोगी हो यह इच्छा स्वाभाविक ही है। 19वीं शताब्दी में जितनें भी व्यक्ति सामाजिक उत्थान या राष्ट्र के विकास के लिए आगे बढ़े उनमे सभी संस्कृत के मर्मज्ञवेत्ता थे। उन्होंने संस्कृत विद्या से ही प्रेरणा प्राप्त की थी जैसे– राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक और महामना मालवीय जी इत्यादि। रामायण और महाभारत में जो नीति तत्त्व हैं उन्हीं के आश्रय से ही भारतीयों के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन का निर्माण हुआ है। वेदों और उपनिषदों में प्रतिपादित तत्त्व ज्ञान ही यहाँ के जीवन का मुख्य आधार है। इसी कारण से भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए संस्कृत का सामान्य ज्ञान आवश्यक सा हो जाता है।

संस्कृत का महत्त्व :– नासा के मुताबिक 'संस्कृत' धरती पर बोले जाने वाली सबसे स्पष्ट भाषा है। संस्कृत में दुनियाँ की किसी भी भाषा से अधिक शब्द हैं। फोर्ब्स मैगजीन नें जुलाई, 1987 में संस्कृत को कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के लिए सबसे बेहतर भाषा माना था **(अवधिया, 2013)**। 'सुधर्मा' संस्कृत भाषा का पहला अखबार है जो 1970 में शुरू हुआ था। आज भी इसका ऑनलाइन संस्करण उपलब्ध है। नासा के वैज्ञानिकों के अनुसार– 'जब वे अन्तरिक्ष यात्री को मैसेज भेजते थे तो उनके वाक्य उलटे हो जाते थे। इस वजह से मैसेज का अर्थ ही बदल जाता था। उन्होंने कई भाषाओं का प्रयोग किया लेकिन हर बार यहीं समस्या आयी। आखिर में उन्होंने संस्कृत में मैसेज भेजा क्योंकि संस्कृत के वाक्य उलटे हो जाने पर भी अपना अर्थ नहीं बदलते हैं'। कम्प्यूटर द्वारा गणित के सवालों को हल करने वाली विधि यानि 'एल्गोरिदम' संस्कृत में ही बनें हैं। लन्दन और आयरलैंड के कई स्कूलों में संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाया जा चुका है। तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती आदि सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत से ही अनुप्राणित हैं। डॉ. राधाकृष्णन् की अध्यक्षता वाली विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग नें अपने प्रतिवेदन के 131वें पृष्ठ पर माध्यमिक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के शिक्षण की सिफारिश की है। आयोग ने कक्षा 9 एवं कक्षा 10 के पाठ्यक्रम में एक शास्त्रीय भाषा के रूप में संस्कृत को प्रमुखता से स्थान दिया है। इस प्रकार आयोग ने संघीय भाषा के रूप में संस्कृत विषय को अनिवार्य करने की सिफारिश भी की है। वर्ष 1938 ई. की 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' में यह संस्तुति की गई कि 'संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं की जननी है अतः विद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर संस्कृत के अध्ययन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।' गायत्री

परिवार द्वारा प्रकाशित 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका के अनुसार डॉ. लूई रेणु महोदय रूस से भारत पधारे तब उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा था कि "मुझे केवल एक ही दुःख है कि हम जिस संस्कृत भाषा को अति रुचि से पढ़ते हैं और जिस भाषा को अमर समझते हैं उस भारती (संस्कृत भाषा) को भारतीय मृत भाषा के नाम से पुकारते हैं" **(देव, 1957)**। महाभारत में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि *"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ, यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"* **(महा, आदि., अ. 62, श्लो. 53)**। अर्थात् 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों से सम्बन्धित जो कुछ भी यहाँ है वहीं संसार में सर्वत्र है और जो कुछ भी यहाँ नहीं है वह धरती पर कहीं नहीं है।' कहने का अभिप्राय यह है कि मानव जीवन के लक्ष्यभूत चार पुरुषार्थ माने गये हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनसे सम्बन्धित विषयों पर हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों नें जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं वे सब संस्कृत में ही निबद्ध हैं। इसकी शब्द सामर्थ्य अद्भुत है। इस दिशा में यह इतनी समृद्ध भाषा है कि आज के नवीन विषयों के लिए भी यह पारिभाषिक तथा अन्य प्रकार के शब्द दे सकती है।

संस्कृत भाषा का व्याकरण :– संस्कृत भाषा का व्याकरण अत्यन्त परिमार्जित एवं वैज्ञानिक है। व्याकरण शास्त्र का प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा को कहा गया है ऋक् तन्त्र (1/4) में इस श्रृंखला का वर्णन करते हुए कहा गया है 'ब्रह्मा ने आचार्य बृहस्पति को व्याकरण का ज्ञान दिया तथा बृहस्पति नें अपने शिष्य इन्द्र को, इन्द्र नें भारद्वाज को भारद्वाज नें ऋषियों को और ऋषियों नें ब्राह्मणों को इसका ज्ञान प्रदान किया।' पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये व्याकरण के मुनित्रय कहलाते हैं। 'व्याकरण' शब्द की उत्पत्ति वि+आ+कृ (धातु)+ल्युट् प्रत्यय के योग से हुई है, अर्थात् *'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्* **(टोणगांवकर, 2017)**। हिन्दी अर्थ यह है कि 'जिससे शब्द का प्रकृति प्रत्यय विधान बनाकर व्युत्पादन किया जाये उसे व्याकरण कहा जाता है'। यह छः वेदांगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष) में प्रमुख है। इसे वेदपुरुष के मुख की संज्ञा प्रदान की गई है। व्याकरण को शब्दानुशासन भी कहा जाता है। व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा का ज्ञान अधूरा माना जाता है। वररुचि ने व्याकरण के मूलतः पाँच प्रयोजन बताये हैं– रक्षा, ऊह, आगम, लघु, और असन्देह। महर्षि पाणिनि द्वारा संस्कृत व्याकरण पर किया गया कार्य 'अष्टाध्यायी' सबसे प्रसिध्द है। व्याकरण के महत्त्व को दर्शाने वाली प्रसिद्ध श्लोक है कि– *"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्, स्वजनः श्वजनो माऽभूत्सकलं शकलं सकृत्शकृत्"* **(कुमार, 2017)**। अर्थात् 'हे पुत्र! यद्यपि तुमनें बहुत कुछ पढ़ लिया है फिर भी व्याकरण अवश्य पढ़ लो। यदि तुम्हें व्याकरण का ज्ञान हो जाएगा तो तुम 'स्वजन' (आत्मीय जन) के स्थान पर 'श्वजन' (कुत्ते), सकल (सम्पूर्ण) के स्थान पर 'शकल' (खण्ड) और 'सकृत' (एक बार) के स्थान पर 'शकृत' (विष्ठा) का उच्चारण नहीं करोगे'। इसी सम्बन्ध में आगे यह भी कहा गया है कि– *"अव्याकरणमधीतं भिन्नद्रोण्या तरंगिणीतरणम्, भेषजमपथ्यसहितं त्रयमिदमकृतं वरं न कृतम्।"* अर्थात् 'बिना व्याकरण के पढ़ाना, टूटी हुई नाव द्वारा नदी पार करना, बिना जानकारी के औषधि का सेवन करना, इन तीनों के करने से इनका न करना श्रेष्ठ है'। महर्षि पतंजलि ने भी अपने महाकाव्य में लिखा है कि– *'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः, स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति* **(व्या. महा., प्र. आ.)**।' अर्थात् 'एक भी शब्द अच्छी तरह जाना हुआ और अच्छी तरह प्रयोग किया हुआ इस लोक तथा परलोक में इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है।'

वैश्विक स्तर पर संस्कृत भाषा की स्थिति :– प्रतिष्ठित हिन्दी समाचार एजेन्सी 'जागरण' नें नई दिल्ली के अपने ऑनलाइन प्रकाशन के (मार्च 05, 2018) अंक में 'गजब! संस्कृत सीखने को वाराणसी में डेरा डाले हैं करीब सत्तर देशों के छात्र' नामक शीर्षक से एक लेख प्रकाशित की। जिसमें लेखिका रेणु जैन ने बताया कि 'देवभाषा कहलाने का सौभाग्य केवल संस्कृत को ही प्राप्त है। प्राकृत से उत्पन्न हुई यह भाषा है तो बहुत प्राचीन लेकिन इसकी तमाम खूबियाँ इसे आज भी उतना ही प्रासंगिक बनाए रखती हैं। मसलन कहा जाता है कि संस्कृत जानने वाला दुनियाँ की कोई भी कठिन से कठिन भाषा भी आसानी से सीख सकता है। इसे कम्प्यूटर के लिए भी सबसे उपयुक्त भाषा माना गया है क्योंकि इसमें जो उच्चारण होता है वहीं अक्षर लिपिबद्ध भी किया जाता है। उच्चारण सुधारने के लिए भी संस्कृत के अभ्यास की सलाह दी जाती है।

शायद यहीं वजह है कि हम भारतीय भले ही संस्कृत से मुँह मोड़ रहे हों लेकिन विदेशियों में इस भाषा को सीखने का चलन बढ़ रहा है। संस्कृत वैश्विक स्तर पर अपना प्रसार कर रही है। पूर्वी यूरोपीय राष्ट्र यूक्रेन के युवाओं का चौदह सदस्यीय जत्था इसी सिलसिले में वाराणसी के शिवाला में डेरा डाले हुए है। संस्कृत सीखने आये इन युवाओं में रियल स्टेट के कारोबारी, डॉक्टर तथा शिक्षक शामिल हैं। अनुमान है कि शहर में इस समय 70 अलग–अलग देशों के कुल 190 छात्र संस्कृत सीख रहे हैं। कुछ साल पहले तक यह आँकड़ा 40 से 50 के दायरे में होता था लेकिन फिलहाल अमेरिका के ही 35 छात्र यहाँ संस्कृत की दीक्षा ले रहे हैं। इसके अलावा म्याँमार, कोरिया, श्रीलंका तथा थाईलैण्ड के छात्र भी यहाँ हैं। वाराणसी आने वाले ये विदेशी युवा सर्टिफिकेट या डिप्लोमा कोर्स के बजाय तीन साल की डिग्री को ज्यादा महत्त्व देते हैं। वे मानते हैं कि जो संस्कार और संस्कृति संस्कृत भाषा में है वह दुनियाँ की किसी अन्य भाषा में नहीं है। अमेरिकन हिन्दू यूनिवर्सिटी के मुताबिक संस्कृत में बात करने वाला मनुष्य रक्तचाप, मधुमेह, कोलेस्ट्राल आदि रोगों से बेहतर तरीके से बच सकता है। संस्कृत के उपयोग से तंत्रिका तंत्र भी सक्रिय रहता है।' कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन संस्कृत शिक्षा प्रणाली अपने समय की संसार की सबसे श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली थी परन्तु आज के भारतीय समाज के स्वरुप और उसकी भावी आवश्यकताओं की दृष्टि से उसके कुछ तत्त्व ग्रहणीय हैं और कुछ तत्त्व त्याज्य हैं। हमें वैदिक कालीन संस्कृत शिक्षा प्रणाली के ग्रहणीय तत्त्वों को ग्रहण कर अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को प्रभावी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

संस्कृत का आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली के विकास में योगदान :– यह सच है कि पाँच से पन्द्रह साल के अधिकांश बच्चों को ऐसी शिक्षा मिल रही है जो सिर्फ दिमाग को सम्बोधित करती है। उनके भावनात्मक जीवन से किसी का कोई सरोकार नहीं होता। वर्तमान की नींव अतीत में होती है। हमारे देश में वैदिक काल में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ वह हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव का पत्थर है। यूँ वैदिक शिक्षा प्रणाली के पश्चात् हमारे देश में क्रमशः बौद्ध शिक्षा प्रणाली, मुस्लिम शिक्षा प्रणाली और अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली का विकास भी हुआ परन्तु वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में निरन्तर चलती रही है। आज भी देश भर में वैदिक शिक्षा प्रणाली पर आधारित धार्मिक शिक्षा केन्द्र, गुरुकुल एवं संस्कृत विद्यालय चल रहे हैं। यूँ इनका स्वरुप वैदिक कालीन ऋषि आश्रमों और गुरुकुलों से काफी भिन्न है परन्तु मूल आधार तो वहीं है। आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास में भी इसकी आधारभूत भूमिका रही है जैसे– कटु अनुभवों से सीख, स्त्री पुरुषों की समान शिक्षा, जन शिक्षा के महत्त्व की स्वीकृति, व्यावसायिक शिक्षा का शुभारम्भ, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर बल, शिक्षा का संकुचित एवं व्यापक अर्थ, अनुशासन के सही सम्प्रत्यय का विकास, विस्तृत पाठ्यचर्या एवं विशिष्टीकरण का शुभारम्भ, शिक्षण की उत्तम विधियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करना, शिक्षा को विभिन्न स्तरों में विभाजित करना, शिक्षा के सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक उद्देश्यों का निर्माण, शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्धों की सुदृढ़ नींव, विभिन्न प्रकार की शिक्षा के लिए भिन्न–भिन्न शिक्षण संस्थाओं का निर्माण इत्यादि (लाल, 2013)।

निष्कर्ष :– प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत किसी जाति विशेष, धर्म विशेष, वर्ग विशेष, सम्प्रदाय विशेष या किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है और न ही यह केवल धार्मिक कर्म काण्ड एवं अध्यात्म की ही भाषा है। यह एक स्वाभाविक, जन सम्पर्क और वैज्ञानिक भाषा है, जिसमें जनजीवन से सम्बन्धित विषयों पर ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। संस्कृत कामधेनु है अर्थात् जिसने हृदय से जो चाहा वह उससे दुह लिया। इसी के साथ वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली के नींव की पत्थर भी है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। सच बात तो यह है कि वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वहीं हैं जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान–विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। अन्ततोगत्त्वा आधुनिक भारतीय शिक्षा

प्रणाली और वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली के बीच जो अन्तर है वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक ही है।

सन्दर्भ सूची :–

1. पाण्डेय, आर. (2015). *संस्कृत शिक्षण.* अग्रवाल प्रकाशन, आगरा. ISBN: 978–81–905301–5–6.
2. आर्य, एम. (2014). *संस्कृत भाषा का महत्त्व व इसके प्रचार पर विचार.* प्रवक्ता डॉट कॉम अभिव्यक्ति का अपना मंच. https://www.pravakta.com/considering-the-importance-of-sanskrit-language-and-its-promotion/
3. झा, आर. एवं सहयोगी. (2016). *इज संस्कृत द मोस्ट सूटेबल लैंग्वेज फॉर नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग.* थर्ड इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस 2016. https://ieeexplore.ieee.org/abstract/document/7724257?reload=true
4. अवधिया, जी.के. (2013). *फेसबुक* पेज. पोस्ट जनवरी 11, 2013. https://www.facebook.com/HindiWebsite/posts
5. देव, एस. (1957). *संस्कृत भाषा का महत्त्व.* अखण्ड ज्योति. वर्जन 2, अंक 13, अगस्त 1957, गायत्री परिवार, गुरुकुल झज्जर, रोहतक. http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1957/August/v2.13
6. महर्षि, वेदव्यास. (2019). *महाभारत.* प्रथम खण्ड, कोड 32, गीता प्रेस, गोरखपुर.
7. टोणगांवकर, वी.पी. (2017). *व्याकरण प्रथम भाग.* सुसंस्कृत डॉट वर्डप्रेस डॉट कॉम. https://susanskrit.wordpress.com/2017/0/05
8. कुमार, आर. (2017). *व्याकरण की परिभाषा और महत्त्व.* हिन्दी ज्ञान गंगा डॉट कॉम. https://www.hindigyanganga.com/हिन्दीव्याकरण/हिन्दी-व्याकरण-की-परिभाषा/
9. शास्त्री, चारूदेव. (1968). *व्याकरण महाभाष्य (प्रथम आह्निक).* प्रथम संस्करण, श्री मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली.
10. जैन, आर. (2018). *गजब! संस्कृत सीखने को वाराणसी में डेरा डाले हैं करीब सत्तर देशों के छात्र.* जागरण. हिन्दी न्यूज/समाचार/राष्ट्रीय. नई दिल्ली, प्रकाशित अंक, मार्च 05, 2018. https://www.jagran.com/news/national-students-of-70-countries-learn-sanskrit-in-varansi-jagran-special-17612531.html
11. लाल, आर. बी. (2013). *भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ.* संस्करण आठ, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ. ISBN: 978–81–7133–986–0.

✿★✿

'खण्डवारी कोट' (चन्दौली, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त पुरातत्विक अवशेषों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. संजय कुमार कुशवाहा*

वर्तमान समय में आपने बहुत से ऐसे स्थान देखे होंगे जो प्राकृतिक सतह से कुछ ऊंचे होते हैं ऐसे स्थानों को वहाँ के निवासियों के द्वारा कोट या डीह की और पुरातत्व के जानकार लोगों के द्वारा इसे टीला की संज्ञा दी जाती है। इस तरह के कोट, डीह या टीले का निर्माण उस स्थान पर रहने वाले लोगों के पूर्वजों या उससे पहले वहाँ निवास करने वाले मानवों के द्वारा छोड़े गए संरचनात्मक एवं भौतिक अवशेषों के नीचे दबते जाने के क्रम में होता हैं। इनमें से कुछ कोट या टीले वीरान हो जाते हैं लेकिन कुछ टीलों को ग्रामीणों के द्वारा काट दिया जाता है और कुछ को डर से सुरक्षित छोड़ दिया जाता है। ऐसे ही स्थानों की खोज सर्वेक्षण के माध्यम से पुरातत्वविद के द्वारा किया जाता है और वहाँ सतह से प्राप्त अवशेषों के आधार पर उसे पुरास्थल की संज्ञा देता है। ये पुरास्थल प्राकृतिक बदलावों और मानव की कहानी की दास्तां को बयां करते हैं। पृथ्वी के ऊपर होने वाले प्राकृतिक बदलावों के परिणाम स्वरूप जीवो का उद्भव हुआ उन्ही जीवों में मानव का भी उद्भव हुआ। मानवीय क्रियाकलापों और गतिविधियों के परिणाम स्वरूप पुरास्थल का निर्माण टिलों के रूप में हुआ जो अपने अंदर एक निश्चित क्षेत्र के अंदर रहने वाले लोगों की जीवन गाथा को संजोये हुए होते हैं, ऐसे ही पुरास्थलों में एक पुरास्थल खण्डवारी कोट भी है जहाँ से बहुत से पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए हैं जो इस पुरास्थल की महत्ता को बढ़ाते हैं।

इस पुरास्थल का महत्व इसलिए और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि यह पुरास्थल बैराठ पुरास्थल से लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। बैराठ पुरास्थल गंगा नदी की सहायक बानगंगा नदी के बायें किनारे पर स्थित है। इस जिले में इससे पूर्व भी सर्वेक्षण किया गया है जिसमें प्रथम नाम अलेक्जेंडर कनिंघम का आता है इनके द्वारा सर्वप्रथम 1875–76 में सर्वेक्षण का कार्य किया गया था (कनिंघम 1880)। 1877–80 में अलेक्जेण्डर कनिंघम के निर्देशन में ए0सी0एल कर्लाइल द्वारा सर्वेक्षण कार्य किया गया और बैराठ पुरास्थल को उत्खनित कर दुर्गीकृत शहर के रूप में चिन्हित किया गया (कार्लाइल, 1885)। इसी क्रम में 1891 ई0 में फूहरर द्वारा सर्वेक्षण का कार्य किया गया और एक नवीन पुरास्थल प्रहलादपुर को सर्वप्रथम सर्वेक्षित किया गया (फुहरर; 1891:234)। इस पुरास्थल का उत्खनन कार्य काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के ए.के. नारायण के निर्देशन में टी. एन. राय एवं बी. पी. सिंह द्वारा 1963 ईस्वी में करवाया गया था (आई0ए0 आर0 1961–62: 34–52) (नरायण एवं राय, 1968: 66)। इस उत्खनन के परिणाम स्वरूप प्राप्त अवशेषों के आधार पर गंगा मैदान के इस क्षेत्र की ऐतिहासिकता लगभग 800 ईसा पूर्व तक स्थापित हो जाती है लेकिन इस पुरास्थल का इतिहास लगभग प्रथम शताब्दी ईस्वी तक आते–आते समाप्त हो जाता है अर्थात् यह पूरा स्थल लगभग 700– 800 सालों तक गुलजार रहने के बाद वीरान हो जाता है। इसी तरह से बैराट पुरास्थल भी एक लंबे समय की गाथा को समेटने के बाद वीरान हो जाता है। इन्हीं दोनों पूरा स्थलों की ऐतिहासिकता एवं महत्व को देखते को देखते हुए इस क्षेत्र में मेरे द्वारा सर्वेक्षण का कार्य किया गया और खंडवारी कोट पुरास्थल की प्राप्ति हुई। पुरास्थल से सर्वेक्षण के दौरान भौतिक एवं संरचनात्मक अवशेषों की प्राप्ति हुई। इन्हीं अवशेषों के ऐतिहासिक पक्षों का विवरण प्रस्तुत शोध पत्र का आधार है।

खण्डवारी कोट – ($25^0$24′40′′ उत्तरी अक्षांस, $83^0$12′ 32′′ पूर्वी देशान्तर) खण्डवारी कोट (जगरनाथपुर) पुरास्थल उत्तप्रदेश के चन्दौली जिले की सकलडीहा तहसील में चहनियां बाजार से 1 कि0मी0 दक्षिण पूर्व

---

* **एसि0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एस. पी. एम. कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।**

में स्थिति है। यह पुरास्थल वाराणसी से 30 कि0मी0 एवं चन्दौली जिला मुख्यालय से 20 कि0मी0 की दूरी पर चन्दौली से चहनियाँ को जाने वाली सड़क के दायी ओर चहनियाँ बाजार के 1 कि0मी0 पहले ही स्थित है। गंगा नदी पुरास्थल से 2 कि0मी0 पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। पुरास्थल का विस्तार लगभग 250 x 250 मीटर के वृहद क्षेत्र में है तथा भूमि तल से 20 फिट की ऊँचाई पर स्थित है। पुरास्थल के उपरी भाग पर वर्तमान समय का एक माता जी का मन्दिर बना हुआ। पुरास्थल को चारों तरफ से स्थानीय लोगों द्वारा काट कर कृषि कार्य किया जा रहा है। पुरास्थल अपने मूल स्वरूप का आधा बचा हुआ है और दिन–प्रतिदिन ग्रामीणों एवं बारिस के पानी की वजह से अपने अस्तित्व को खोता जा रहा है (चित्र संख्या 1)। इस पुरास्थल पर सर्वेक्षण के क्रम में प्राचीन संरचना, पकी मिट्टी की ईंट (चित्र संख्या 3) एवं मृदभाण्डों के अवशेष प्राप्त हुए है। प्राचीन संरचना का साक्ष्य पुरास्थल के दक्षिणी–पूर्वी कोने पर खेती के लिए ग्रामीणों द्वारा काटे गये टीले के अनुभाग में दिखाई देता है (चित्र संख्या 6)। टीला के ऊपरी भाग पर भी पकी ईट यत्र–तत्र मिट्टी में धसी हुई प्राप्त होती है (चित्र संख्या 2)। टीले की ग्रामीणों द्वारा की गई कटाई के कारण कुछ प्राचीन संरचना दर्शित होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनको सुरक्षा के दृष्टिकोण से बनाया गया रहा होगा। टीले के ऊपरी भाग पर बहुत सी चौड़ी–चौड़ी ईटें बिखरी हुई प्राप्त होती हैं। टीले के सबसे ऊपरी भाग पर एक वर्तमान समय का मंदिर बना हुआ है जिसके आस–पास इन प्राचीन ईटों ईटों के प्रयोग से फर्श का निर्माण किया गया है। टीले की बनावट, प्राचीन सुरक्षा दीवाल तथा ईटों की प्राप्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह दुर्गीकृत पुरास्थल रहा होगा। इस पुरास्थल के निकटवर्ती पुरास्थल बैराठ से भी दुर्गीकरण के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। एक और पूरा स्थल केशवपुर भी इन दोनों पुरास्थल से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है (कुशवाहा,2020:42–51)। यहाँ से भी प्राचीन दुर्ग व्यवस्था के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यह सभी प्रमाण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यह तीनों पूरा स्थल स्थल तत्कालीन समय में एक दूसरे से संबंधित रहे होंगे।

चित्र संख्या 1: पुरास्थल का विहंगम दृश्य

मृद्भाण्ड :– इस पुरास्थल से प्राप्त मृदभाण्ड का विवरण निम्नवत् है –

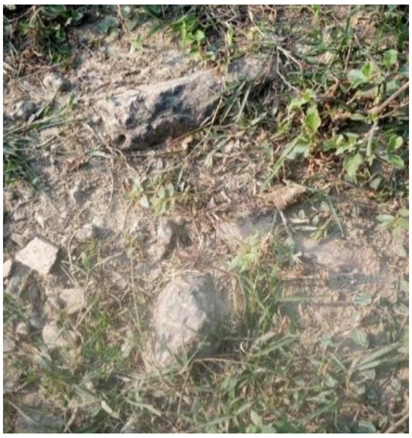

चित्र संख्या 2: मिट्टी में फंसी ईंट

चित्र संख्या 3: पुरास्थल पर बिखरी ईंट

चित्र संख्या 6: अनुभाग में दिखती प्राचीन संरचना

चित्र संख्या 4 में प्रदर्शित पात्रों का विवरण निम्नवत् है

चित्र संख्या 4: मृद्‌भाण्ड के बारी का भाग

1. लाल पात्र का टुकड़ा है संभवत लोटे की आकार की हाँडी का भाग है।
2. लाल स्लिप वाली पात्र परंपरा का टुकड़ा है जो बारी के भाग का प्रतीत होता है। संभवत कोखदार हाँडी का भाग है।
3. लाल स्लीप वाले पतली गठन की हाँडी का भाग प्रतीत होता है।
4. लाल रंग के हस्तनिर्मित मोटे गढ़न वाले मृदभांड का टुकड़ा है।
5. संभवत लाल रंग की तस्करी का भाग है।
6. ये भी संभवत लाल रंग के कटोरे का भाग है।
7. पतली गढ़न के लाल रंग की छोटी हाँडी का भाग प्रतीत होता है।
8. उत्कीर्ण कर बिंदीदार अलंकरण युक्त कोखदार हाँडी का भाग प्रतीत होता है।
9. संभवत लाल रंग की थाली का भाग है।

चित्र संख्या 5 में प्रदर्शित पात्रों के टुकड़ों का विवरण–

चित्र संख्या 5: मृद्‌भाण्ड के अन्य भाग

1. लाल रंग के पात्र का टुकड़ा है जो मोटे कटोरे का भाग का भाग प्रतीत होता है।
2. संभवत लाल स्लीप वाले पतली गढ़न के मृदभांड का टुकड़ा है।
3. ये भी लाल स्लिप लगी हुई पात्र का टुकड़ा है।
4. लाल मृदभांड का टुकड़ा है जो संभवत थाली का भाग प्रतीत होता है।
5. लाल मृदभाण्ड का टुकड़ा है जिसकी स्लीप ज्यादा समय तक मिट्टी में दबने के कारण उड़ चुकी है।
6. लाल मृदभांड का टुकड़ा है जो पतली गढ़न की थाली का भाग प्रतीत होता है।
7. कृष्ण लोहित मृदभाण्ड के पात्र का टुकड़ा है।
8. काले रंग के मृदभांड का टुकड़ा है जो पतली गढ़न की थाली का भाग प्रतीत होता है।
9. यह भी काले रंग के मृदभांड का टुकड़ा है जिसकी स्लीप उड़ी हुई है।

इस पुरास्थल से प्राप्त मृदभाण्डों में सादा लाल पात्र, लाल–लेपित पात्र, मोटे किस्म के लाल पात्र, अलंकृत लाल पात्र कृष्ण रंग के पात्र तथा कृष्ण लोहित पात्र के टुकड़े प्राप्त हुए है (चित्र संख्या 4 व 5)। इन पात्रों के टुकड़ों के आधर पर कहाँ जा सकता है कि यहाँ का मानव छोटे आकार के पात्रों के साथ–साथ बड़े आकार के पात्रों का प्रयोग करता था। सम्भावित पात्र प्रकारों में कटोरा तश्तरी, हाँडी, लोटा के आकार का घड़ा, कोखदार हाँडी एवं भण्डारण से सम्बन्धित कुछ बड़े पात्र इत्यादि है। इस तरह के पात्र उत्खनित स्थल अगियाबीर के चतुर्थ चरण से (सिंह एवं सिंह, 2004: 39–41) और पक्काकोट के चतुर्थ एवं पंचम चरण से (दुबे व अन्य, 2012: 112–124) मिले है। इस आधार पर इस पुरास्थल के कुषाण कालीन होने की सम्भावना की जा सकती है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि यदि इस पुरास्थल पर उत्खनन कार्य किया जाय तो वस्तुस्थिति स्पष्ट हो सकती है और प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व, मध्य गंगा मैदान के पुरातत्त्व तथा दुर्गीकरण के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ जायेगा।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची :–

- *इण्डियन आर्कियोलाजीः ए रिव्यू,* 1962–63।
- कनिंघम, ए0, 1880 *'ए रिपोर्ट आफ् टुर्स इन गगेटिक प्रोविन्सेज फ्राम बाँदा टू बिहार इन 1875–76 एण्ड 1877–78* वाल्यूम XI , कलकत्ता।
- कार्लाइल, ए0सी0 एल0, *1885 रिपोर्ट ऑफ टुर्स इन गोरखपुर, सारण एण्ड गाजीपुर इन 1977–80*, कलकत्ता।
- *कुशवाहा, संजय कुमार, 2020, मैटेरियल एण्ड स्ट्रकच्रल रिमेन्स फाउण्ड फ्राम, केशवपुर, चन्दौली यू पी : ए रिपोर्ट, 'अर्णव', VOL. IX, NO. 1, Page no. 42-51, अर्णव शोध संस्थान, वाराणसी।*
- दुबे, सीताराम, अशोक कुमार सिंह, एवं गौतम कुमार लामा, 2012, *पक्काकोटः सम न्यू आर्कियोलॉजिकल डाइमेंशन ऑफ मिड–गंगा प्लेन,* रिशी पब्लिकेशन, देलही।
- नरायन, ए0के0 एवं टी0एन0 राय, 1968, *द एक्सकेवेशन एट प्रहलादपुर,* काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- नरायन, ए0के0 एवं टी0एन0 राय, 1976, *एक्सकैवेशन एट राजघाट,* ए0आई0एच0सी0 एण्ड आर्कियोलॉजी विभाग,वाराणसी।
- फुहरर, ए0, 1981 *द मानुमेण्टेल एन्टीक्वीटिज एण्ड इन्सक्रीप्सन्स इन द नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेज एण्ड अवध,* नई दिल्ली, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इंण्डिया।
- सिंह, पी0 एवं अशोक कुमार सिंह .2004. *द आर्कियोलॉजी ऑफ मिडल गंगा प्लेन* (एक्सकवेशन एट अगियाबीर). आर्यन बुक्स इन्टरनेशनलः नई दिल्ली।

ꕥ★ꕥ

भारतीय हिन्दी साहित्य एवं समकालीन राजस्थानी कला में कृष्ण का रूपांकन

कमल किशोर कश्यप*

डॉ0 इन्दु जोशी**

सारांश :– संसार में कुछ भी ऐसा नही है जिसमें श्री कृष्ण तत्व न हों श्री कृष्ण संसार के प्रत्येंक कण में विधमान है कही विचार रूप में कही साकार रूप में और कही निराकार रूप में कृष्ण के इन रूपों कों अनेंक सन्तों और विद्धानों ने अपनें ज्ञान एवं भक्ति के नेत्रों से दर्शन कर सम्पूर्ण जगत कों गीत साहित्य एवं कला आदि के माध्यम सें कृष्णा सें साक्षात्कार करानें का प्रयास किया ताकि सम्पूर्ण मानव जाति कृष्ण प्रेम और स्वयं कृष्ण कों जीवन में उतार कर विश्व को प्रेम व आध्यात्म कीं एक नयी राह प्रदान करनें के साथ संसार कों सुन्दर व जीवन्त बना सके। कृष्ण के रूप व ज्ञान कों साहित्यकार कवियों दार्शनिको कथाकारों एवं कलाकारो नें अपनें अपनें रचना कोशल सें प्रस्तुत किया और जीवन के प्रत्णेंक बिन्दु सें जोंडा है यें क्रम प्राचीन काल सें आज आधुनिक समय तक निरन्तर चला आ रहा है। इसी में एक कडी साहित्यकारों और कलाकारों की है जों कृष्ण श्रृगार एवं आध्यात्म कों अपनें अपनें ढंग सें स्वर व चित्रों में उतारतें चलें आ रहें है और भक्ति एवं कला की नयी परिभाषा गढ़ रहे है।

मुख्य शब्द :– कृष्ण, साहित्य, कला, समकालीन।

प्रस्तावना :– श्री कृष्ण अन्नत काल सें सम्पूर्ण प्राणी जगत कों अपनें सुन्दर मनमोंहक रूप, नटखट बाल लीलाओं सें और कभी ज्ञान के प्रकाश से अपनें पथ पर आनें कों विवश सा करतें आ रहें है। अधरों पर सुन्दर मुरली, पीताम्बर धारण करें सुकोमल काया लियें चंचल मुस्कुराहट एवं मन कों हर लेनें वाली छवी का वर्णन हिन्दी साहित्य के अनेक महाकवियों ने अपनें पदों के माध्यम सें शब्दों की माला में पिरों कर प्राणी मात्र कों भाव ओर रस के उस विशाल सागर में डुबोंया है जिसमें जीवन के प्रत्येंक क्षण का आनन्द ओर प्रेम समाया है। सूरदास जी नें बिना नेंत्रों के अपनें मन की ऑखों सें कृष्ण के जिस मनमोंहक रूप कों काव्य के सहारें वर्णित किया है उस काव्य कि शब्द लहरियों में तैरतें रूप कों चित्रकारों नें अपनी रेखाओं और रंगों से चित्र रूप में साकार कर भक्त का अपनें भगवान सें यर्थाथ साक्षात्कार करानें का प्रयास किया। मध्य काल में कृष्ण काव्य पर आधारित अनगिनत साहित्य ग्रन्थों की रचना हुई और इन साहित्यिक ग्रन्थों में पदों के साथ साथ चित्रो के माध्यम सें भक्ति भाव कों चरम सीमा प्रदान करनें का प्रयास किया गया। काव्य और चित्रकला देखा जायें तों दोंनों एक ही धरातल के दों रूप है एक का माध्यम शब्द है तों दूसरें का रूप या आकार दोंनों नें भावों की सुन्दर व्याख्या अपनें अपनें माध्यम सें कि जाती आ रही है कभी चित्रकारों नें काव्य सें प्रेरणा प्राप्त कर चित्र संसार कों रचा तों कभी साहित्यकारों नें चित्रों के मन कों टटोल कर साहित्य में गूथा। ये ।क्रम एक लम्बें समय सें चलता चला आ रहा है बस समय और समाज की आवश्यकता के अनुसार इनके दर्शन में परिर्वतन हों जाता है। मध्यकाल भक्ति भाव का काल था तों उस समय उसकी झलक उस समय कें साहित्य और कला पर प्रतिलक्षित हांती है उसी प्रकार वर्तमान युग प्राचीन के साथ नवीन एव समकालीन विचारों का है तों उसकी छाया भी इन पर पडना लाजमी है। कोई भी कलाकार या साहित्यकार अपनें समय सें दूर नही भाग सकता। न चाहतें हुए भी उसकी रचना में उसकी छाया समा ही जाती है और देखा जायें तों ऐसा होना उस कलाकार और समाज दोंनों के लिए लाभदायक भी रहता है। ''प्राचीन भारतीय ग्रथों में जीवन के चार प्रयोजन बतायें गये है : अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। अतः मानव की कलाओं का उददेश्य भी इन्ही की प्राप्ति माना गया है जिसें विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में इस प्रकार कहा है– 'कलानां प्रवरं चित्र धर्मकामार्थमोक्षदम।'

*** शोध छात्र आगरा कॉलेज, आगरा।**

**** शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्षा, चित्रकला विभाग आगरा कॉलेज।**

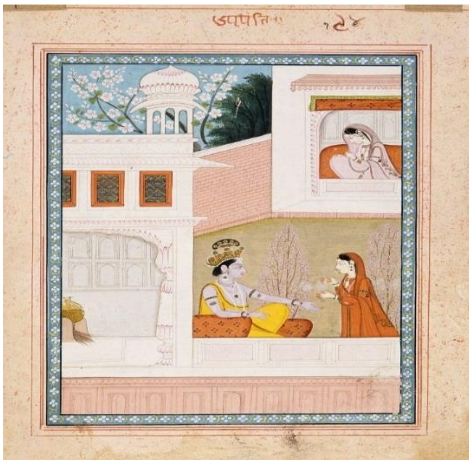

चित्र फलक 1

चित्र फलक 2

अर्थात् कला के द्वारा धर्म काम अर्थ तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। ''[1] और इसें प्राप्त करनें के लिए किसी नें काव्य कला कों अपना तों किसी नें संगीत कों और किसी नें चित्रकला कों परन्तु कला कोंई भी हों उसका लक्ष्य इन्ही चार पुरूषार्थों की प्राप्ती रहा हैं हमेंश सें। ''मध्यकाल का गीत काव्य 'गीतगोंविन्द' संस्कृत साहित्य का कृष्ण काव्य विषयक उत्कृष्ठ ग्रन्थ माना जाता है जिसकी रचना जयदेव नें बंगाल के राजा लक्ष्मणसेंन के समय 12वी0 शताब्दी में की थी। 'गीतगोविन्द' कों अनेंक आलोचकों नें उत्कृष्ठ श्रृगार का निकृष्ठ ग्रन्थ माना है किन्तु उसमें जयदेव नें अपनें काव्य कौशल सें मानवीय पृष्ठभूमि में दैवी पात्रों का जों विचित्र निदेर्शन किया है। वह प्रशंसनीय है। वैष्णव धर्म के प्रचार प्रसार के साथ–साथ इस ग्रन्थ का भारत भर में प्रचार हुआ और इस प्रचार में न केवल संस्कृतप्रेमी वैष्णवों के बीच रहा बल्कि चित्रकारों में भी यह लोकप्रिय हुआ उसके दृष्टान्त चित्र लगभग 19वी0 शताब्दी तक भारतीय चित्रकला की अनेंक शैलियों में बनें जों आज भारत के विभिन्न प्रान्तों में पायें जातें है। ''[2] इन सचित्रपोथियों सें प्रेरणा प्राप्त कर राजस्थान की लधुचित्र शैलियों में भी कृष्ण लीलाओं पर आधारित अनेंक चित्र बनें जों राजस्थानी चित्रकला की अमूल्य धरोहर है। राजस्थान की मेंवाड़ शैली में गीतगोविन्द, बिहारिसतई, सूरसागर आदि कृष्ण प्रेम में सराबोर ग्रन्थों की लेखनी कों मेंवाड़ शैली के चित्रकारों नें जीवंन्त किया सिर्फ मेंवाड़ ही नही नाथद्धारा, किशनगढ़, बीकानेर जैसी चित्रशैलियों नें भी कृष्ण और राधा के प्रेम एवं लीलाओं कों नेंत्रों के समक्ष प्रस्तुत कर द्धापर युग की सम्पूर्ण कथा कों एक चल चित्र की तरह प्रस्तुत कर दिया।

चित्र फलक 3

इसी कम कों आगे बढातें हुए आज के राजस्थानी समकालीन चित्रकार साहित्य ग्रन्थों की धरा में उपजें लधुचित्रों के रूपों कों एक नयें विचार और नयें रंग में अपनें कैनवास और कागज पर सजानें के कार्य में आत्मतल्लीनता और ध्यान साधना के साथ लगें है। इनमें राजस्थान के वैसें तों कई नाम है परन्तु मुख्य रूप सें

शैल चोयल जी, छोटू लाल जी, और युगल किशेर शर्मा जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके चित्रों में श्री कृष्ण कथाओं का प्रतीकात्मक और कही–कही यर्थाथ दर्शन होंता है।

छोटू लाल जी नें अपनें चित्रों कें द्वारा भगवत गीता के श्लोंकों की सुन्दर और सारर्थक व्याख्या करनें का प्रयास किया है जों कृष्ण सभी प्राणियों में सर्वोत्तम है सभी पशुओं में शक्तिशाली है और सभी पक्षियों में सुन्दर है उसें अपनें नवीन कला दर्शन के साथ चित्रों में व्यक्त किया है। उनके यें चित्र जीवन के पंचतत्वों कों भी प्रतीकात्मक रूप सें चित्र भाषा में अपनी बात कहतें नजर आतें है छोंटू लाल जी के चित्र आज भारत ही नही बल्कि सम्पूर्ण विश्व कों प्राचीनता व नवीनता के संगम सें उपजें तेज से प्रकाशमान कर रहें है। इसी प्रकार शैल चोयल जी के चित्रों में श्री कृष्ण कों अनेक सुन्दर रूपों में अपनी मुरली लिए वन उपवनों में गायों के साथ चित्रित किया गया है। शैल जी के इन चित्रों में श्रृगार के साथा–साथ पशुओं के प्रति प्रेंम व करूणा के भाव कों बडी सरलता के साथ चित्रतल पर उतारकर एक अदभुत संसार की रचना की है। इसी सूची में अगला नाम युगल किशोर जी का है जिन्होंनें श्री कृष्ण के होंनें का अहसास दिलातें उनकें द्वारा चित्रित गायें है इनके चित्रों में पशु चित्रण श्री कृष्ण के प्रकृति प्रेम व प्रकृति के सहचर के रूप में चित्रों में झलकता है। यें सभी कलाकार अपनी प्राचीन परम्परा को नयें सदर्भों में एवं नवीन रूप के साथ विश्व पटल पर बिखेर रहें है।

चित्र फलक 4

चित्र फलक 5

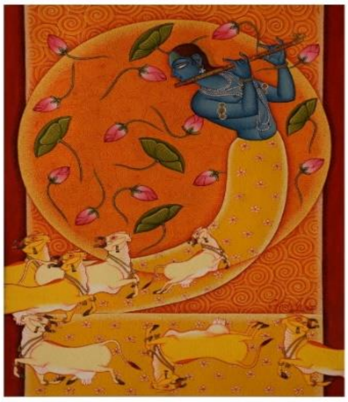

चित्र फलक 6

'आज का भारतीय चित्रकार अनेक क्थ्यों नयें परिवेशों नयी कल्पनाओं और नयें प्रतिमानों के अनुसंधान में व्यस्त है। कला के क्षेत्र में इधर के दर्शकों में जों विश्वव्यापी परिवर्तन हुए है। उनके प्रभाव सें भारतीय कलाकार भी प्रभावित है। आज कला का उददेश्य शास्त्रीय संविधानों का करतब दिखाना नही रह गया है। उसका उददेश्य आदर्श अध्याय या नैतिकता का अभिव्यंजन करना भी नही है। जिस प्रकार साहित्यकार साहित्य के लिए जीवनदायी और समाज के लिए उपयोगी वस्तु देनें की दिशा में व्यस्त है ठीक उसी प्रकार आज का भारतीय कलाकार पशिचम के उन्नत कला धरातल की परिक्रमा करके यह चाहता है कि वह जों कुछ दे वह नवीन तों हों ही साथ ही उसमें स्थायित्व भी हों जिससें भावी कलाकारों कें लिए एक मंच का निर्माण हों सकें।'[3]

चित्र सूची :–

1 मध्य कालीन साहित्य पर आधारित कृष्ण चित्र।
2 मध्य कालीन साहित्य पर आधारित कृष्ण चित्र।
3 मध्य कालीन साहित्य बिहारि सतसई पर आधारित कृष्ण चित्र।
4 ''कृष्ण सीरीज'' का एक चित्र शैल चोयल जी द्वारा।
5 ''बांसुरी''युगल किशेर शर्मा जी।
6 ''अनटाइटल'' छोटू लाल जी।

संदर्भ सूची :–

1. वर्मा, अविनाश बहादुर, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ0 सं0 3, प्रकाश बुक डिपों बरेली।
2. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय चित्रकला, पृ0 सं0 135, मित्र प्रकाशन प्रा0 लि0 इलाहाबाद। प्रथम संस्करण 1963।
3. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय चित्रकला, पृ0 सं0 289 मित्र प्रकाशन प्रा0 लि0 इलाहाबाद। प्रथम संस्करण 1963।

प्राचीन भारत में चिकित्सा एवं शल्य-चिकित्सा विज्ञान

डॉ. रूपेश कुमार गुप्ता*

शोध सारांश :– यत्र संवलित विज्ञान–प्रवण आधुनिक युग में मनुष्य का लगभग समस्त चिन्तन विज्ञान प्रभावित हो गया है। इस स्थिति में विज्ञान एवं तकनीकी की परम्परा के ज्ञान के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। इसी प्रभाव के अभिलाषा भाव में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता को जन्म दिया है, जिसके अंतर्गत प्रायः प्रत्येक राष्ट्र अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों को एकत्र करने के प्रयास में विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान की परम्परा के प्रति जागरूक हुआ है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत भारत में भी आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी सूत्र को प्राचीन सन्दर्भों में ढूंढने के अंतर्गत, प्राचीन भारत में चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय मनीषियों द्वारा किए गए प्रयासों एवं संकल्पनाओं का वर्णन प्रस्तुत करना ही इस शोध पत्र का मूल ध्येय है।

कूट शब्द :– प्राचीन भारत, विज्ञान एवं तकनीकी का क्षेत्र, प्राचीन चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा विज्ञान।

भारत में चिकित्सा विज्ञान एवं शल्य चिकित्सा विज्ञान की प्राचीनता सैंधव सभ्यता काल से मानी जा सकती है। कालीबंगा (राजस्थान) एवं लोथल (गुजरात) से बच्चों की खोपड़ी पर शल्य चिकित्सा के प्राचीनतम प्रमाण प्राप्त हुए है। औषधीय एवं शरीर रचना विज्ञान का अत्यन्त प्रारम्भिक स्तर वेदों में दिखायी पड़ता है, ऋग्वेद में 'अश्विन' को देवताओं का कुशल वैद्य कहा गया है, शल्य क्रिया के रूप में उन्होंने विश्पला के कृत्रिम पैर लगाया तथा पूषन को नई दन्त पंक्ति लगायी, च्वयन ऋषि को यौवन दान दिया तथा नार्षद के कुष्ठ रोग को ठीक किया। ऋग्वेद में ही वरूण के चिकित्सालय में हजार वैद्य होने का उल्लेख है। वैदिक आर्य जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा तथा शरीर रचना (एनोटॉमी) से भिज्ञ थे।

शरीर क्रियाओं की व्यवस्था पंच वायु द्वारा होती थी– उदान, प्राण, समान, अपान तथा वयान। भारत के प्राचीन शल्य चिकित्सक युद्ध में घायल अथवा न्याय द्वारा खण्डीकृत नासिका, कर्ण और अधरों के पुनर्निमाण में निपुण थे। प्राचीन भारतीयों का भेषज संस्कारशास्त्र अति विशाल था और उसमें पशु, वनस्पति एवं खनिज उत्पादन सम्मिलित थे।

अथर्ववेद को प्राचीनतम चिकित्सा ग्रन्थ कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें आयुर्वेद के सिद्धान्त दिए गए है–''विषस्य विषमौषधम्'' अर्थात विष की दवा विष ही होती है– का सिद्धान्त भी अथर्ववेद में मिलता है, जिस पर आधुनिक होम्योपैथी चिकित्सा आधारित है। यजुर्वेद में रक्त संचार, रक्त कोषिकाओं तथा अस्थियों का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में मानव शरीर में 360 हड्डिया होना बताया गया है। तक्षशिला विश्वविद्यालय में अस्थि चिकित्सा का विशेष विभाग था। प्रसद्धि आयुर्वेदाचार्य चिकित्सक जीवक को बिन्दुसार के पुत्र अभय द्वारा तक्षशिला अध्ययन के लिए भेजा गया, जहाँ उसने सात वर्ष तक गहन अध्ययन किया। अध्ययन के पश्चात जीवक ने राजा बिन्दुसार के भगन्दर (बवासीर) रोग को एक ही लेप से निकाल दिया, राजगृह के श्रेष्ठी के सात वर्ष पुराने सिर दर्द को ठीक कर दिया, काशी के श्रेष्ठी के पुत्र का आंतो की गांठ को निकालकर पेट के रोग से मुक्ति दिलायी एवं अवन्ति के राजा प्रद्योत को पीलिया रोग से मुक्त किया। बाल्य चिकित्सा में निपुण होने के कारण जीवन को कौमार भृत्य कहा जाता है। इस प्रकार से जीवक प्राचीन काल में एक कुशल चिकित्सा शास्त्री था। आकाशगोत्त नामक एक अन्य शल्य चिकित्सक का उल्लेख भी मिलता है, जो अलसर (ब्रण) तथा नासूरो की चिकित्सा का विशेषज्ञ था। अशोक की रानी तिष्यरक्षिता भी शल्य चिकित्सक थी। असूरमायारूप को प्राचीन भारत की प्रथम महिला चिकित्सक कहा जाता है, जिसने कुष्ठ निवारक औषधि की खोज की।

***प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।**

अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन चिकित्सा व्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है, चीड़फाड़ करने वाले भिषजों, यन्त्रों, परिचारिकाओं, महिला चिकित्सकों तथा शव परीक्षा का उल्लेख इसमें है। भारत में आयुर्वेद ने सांख्य, योग तथा वैशेषिक जैसे– दार्शनिक विचारों का अपने चिकित्सकीय ग्रन्थों में समावेश किया है। परम्परानुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष तथा भाष्कर को दिया था। दक्ष प्रजापति ने यह ज्ञान अश्विन कुमारों को तथा अश्विन कुमारों ने इन्द्र को आयुर्वेद का ज्ञान दिया। इन्द्र ने विशेषतः भारद्वाज को आयुर्वेद के अंतर्गत– हेतु लिंग तथा औषध का पृथक ज्ञान दिया। अग्निवेश या यात्री ऋषि ने प्रथम बार आयुर्वेद को लिपिबद्ध किया। चरक ने इसी में सुधार करके चरक संहिता के रूप में प्रस्तुत किया। आयुर्वेद में मुनि आत्रेय का वही स्थान है, जो यूनानी चिकित्सा में हिपोक्रेट्स का। आत्रेय संहिता में विभिन्न प्रकार के रोगों तथा उनके निदान, उपचार बताए गए है। काश्यप संहिता भी चिकित्सा विषयक ग्रन्थ है।

चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति ई0पू0 प्रथम से हुई जब चरक तथा सुश्रुत जैसे– सुप्रसिद्ध आचार्यो ने आयुर्वेद से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया। चरक कुषाण नरेश कनिष्क के राजवैद्य तथा काय चिकित्सा के जनक थे। चरक द्वारा रचित चरक संहिता को काय चिकित्सा का प्राचीनतम प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। अलबरूनी में इसे औषधिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा है। चरक संहिता में एक अच्छे वैद्य के चार गुण बताएं गए है– वह शास्त्र जानने वाला, पवित्र समयानुसार निदान में निपुण तथा औषधि योग में कुशल होना चाहिए। वह सरल बुद्धि, प्रतिभाशाली, क्रोध, अहंकार तथा इर्ष्या पर विजय प्राप्त करने वाला तथा शिष्यों से प्रेम करने वाला होना चाहिए। विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मृति, तत्परता तथा क्रिया ये 6 गुण जिस वैद्य में होते है, उससे सभी साध्य रोग दूर हो जाते है। वैद्य की चार वृत्तियाँ हैं– मैत्री, करूणा, मुदिता व उपेक्षा। वैद्य दो प्रकार के होते है–छद्म चर तथा सिद्धसाधित। चिकित्सा पाठ्यक्रम पूर्ण करने पर नये वैद्य को लोक कल्याण के लिए चिकित्सकीय शपथ लेनी पड़ती है, हिप्पोक्रेट्स से दो सदी पूर्व ही चरक ने इसका विवरण दिया है। चीनी यात्री फाह्यान ने उत्तर भारत में अवस्थित औषधालओं का उल्लेख किया था, चरक संहिता में एक आदर्श अस्पताल का विस्तृत विवरण दिया गया है।

त्रिसूत्र पद्धति (हेतु, लिंग व औषधि) है। अधिकांश रोगों का कारण त्रिदोष यथा– वात, पित्त तथा कफ का असंतुलन बताया गया है। सत्य ही 'चरक संहिता भारतीय चिकित्सा का इनसाईक्लोपीडिया' है। पांचवी शताब्दी में हरिश्चन्द्र भट्टार ने इस पर चरक न्याया नामक टीका तथा 11वीं शताब्दी में चक्रपाणि मिश्र ने इस पर आयुर्वेद दीपिका नामक टीका लिखी।

चरक के कुछ समय पश्चात सुश्रुत का आविर्भाव हुआ, उन्हें शल्य चिकित्सा का प्रवर्तक तथा विश्व में प्लास्टिक सर्जरी का जनक माना जाता है। सुश्रुत ने शल्य क्रिया में प्रयुक्त होने वाले 121 उपकरणों (कहीं–कहीं यह संख्या 101 भी मिलती है) वर्णन किया है। इनमें 24 यंत्र स्वास्त्कि, 2 संदेश, 2 ताल, 20 नाड़ी, 28 श्लाका तथा 25 उपयंत्र कहे जाते है। सुश्रुत के अनुसार आयुर्वेद की मूल अवधारणा धातु दोष यथा– वात, पित्त, तथा कफ एवं मल पर आधारित है। ये तीनों दोष शरीर के 7 तत्वों के साथ अंतःक्रिया करते है। सुश्रुत ने शारीरिक प्रक्रिया के केन्द्र में पाचन यंत्र को रखा है। सुश्रुत संहिता में मोतिया बिन्द की शल्य चिकित्सा, पथरी तथा गालब्लैडर का निष्कासन, अंग भंग उपचार आदि के साथ–साथ टांका लगाने की विधि का वर्णन भी मिलता है। शरीर के किसी हिस्से की त्वचा को इसी अन्य हिस्से के ठीक करने के लिए ग्राफ्ट विधि का उपयोग भी बताया गया है, जिसे वर्तमान में राइनो प्लास्टिक बोलते है।

गुप्त काल तक चरक तथा सुश्रुत के सिद्धान्तों को विशेष मान्याता प्राप्त हो गयी। चक्रपाणिदत्त ने सुश्रुत संहिता पर भानुमती नामक टीका लिखी। सुश्रुत संहिता पर लिखित टीकाओं में नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारतीय परम्परा में नागार्जुन को रसायन का नियामक तथा रस चिकित्सा का आविष्कारक माना जाता है। नागार्जुन ने अत्यन्त लम्बी आयु प्रदान करने वाली सिद्धवटी का आविष्कार किया था। पारा की खोज उनका सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार था। सुश्रुत के ग्रन्थों को व्यवस्थित करके छठी शताब्दी के लेखक बाणभट्ट प्रथम ने एक संग्रह प्रस्तुत किया। छठी शताब्दी ई0 में कर्नाटक निवासी

विशल्या प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक थी। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों वाग्भट्ट कृत अष्टांग हृदय तथा अष्टांग संग्रह भी अति महत्वपूर्ण है। चरक सुश्रुत तथा वाग्भट्ट को समिल्लित रूप से ''आयुर्वेदत्रयी'' तथा उनकी रचनाओं चरक संहिता (आत्रेय संहिता) सुश्रुत संहिता तथा अष्टांग हृदय को वृहदत्रयी कहा जाता है। विभिन्न रोगों की पहचान, विभिन्न जड़ी–बूटियों, खनिजों (क्वाथ, चूर्ण, आशव, अरिष्ट आदि) के संविन्यास से जुड़ी सभी जानकारियां क्रमशः माधव निदान, भव प्रकाश, निघण्टू तथा श्रृगधर संहिता में मिलती है, जिन्हे 'लघुत्रयी' कहा जाता है। निघण्टू के लेखक व चिकित्सक धन्वन्तरी चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबारी नौ रत्नों में से एक थे।

पाश्वक द्वारा रचित पाश्वक आख्यान (7वीं सदी ई0) मुख्यतः स्त्रियों तथा बच्चों की व्याधियों के संबंध में लिखा गया है। प्राचीन भारत में पशु चिकित्सा विज्ञान भी उन्नत अवस्था में था। पालकाप्य द्वारा रचित 'हत्स्यायुर्वेद' में हाथियों के प्रमुख रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस रचना को पालकप्य ऋषि एवं अंग के राजा रोमपाद के संवाद के रूप में लिखा गया है। शालीहोत्र संहिता/अश्वशास्त्र में घोड़ों की बीमारियों तथा उनके उपचार से संबंधित वर्णन प्राप्त होता है। इसके रचयिता शालीहोत्र भारत में पशु चिकित्सा के जनक माने जाते है। नवनीतकम (गुप्तकाल) तथा शारंगधर संहिता (14वीं शताब्दी) से भी विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों का वर्णन मिलता है।

प्राचीन भारतीयों का औषध कोश अत्यन्त विस्तृत था, जिसमें पशु, वनस्पतियां तथा खनिज उत्पादन सम्मिलित था। भारतीय आयुर्वेदिक ग्रन्थों को अरबी, फारसी तथा तिब्बती भाषाओं में अनुवाद हुआ। ऐसे प्रमाण उपलब्ध है जिसमें ज्ञात होता है कि यूरोप के वनस्पति शास्त्र के विकास में भारतीय आयुर्वेद का बड़ा योगदान रहाँ इनमें विशेष उल्लेखनीय छौलमुग्र वृक्ष का तेल है, जिसे कुष्ठ रोग की औषधि माना जाता है। प्राचीन भारत में एक प्रयोग आश्रित शल्य शास्त्र का विकास हो चुका था, अस्थिसंधान में वे निपुण थें, चिकित्सक नष्ट, युद्धक्षत या दण्ड स्वरूप विकृत नाक, कान व ओष्ठ को पुनः जोड़कर ठीक कर सकते थे।

सन्दर्भ–सूची :–

1. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो, प्रयागराज (इलाहाबाद), ग्यारहवां संस्करण 2005–06, पृ0सं0–890–891।
2. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, ओम प्रकाश, विश्व प्रकाशन (न्यू एज इण्टरनेशनल (प्रा0) लि0 का प्रभाग), नई दिल्ली, चतुर्थ संशोधित संस्करण 1997, पृ0सं0–235।
3. वैदिक वाड्मय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी, प्रियंका चौहान, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण 2012, पृ0सं0–29।
4. वैदिक वाड्मय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी, प्रियंका चौहान, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण 2012, पृ0सं0–43।
5. विज्ञान और प्रौद्योगिकी, रवि पी0 अग्रहरि, एम0सी0ग्रा0हिल एजूकेशन इण्डिया प्रा0 लि0, नोएडा, चतुर्थ संस्करण 2020, पृ0सं0–451–454।
6. प्राचीन भारत में चिकित्सा विज्ञान, राधेश्याम, गोयल पब्लिकेशंस, पुणे (महाराष्ट्र), प्रथम संस्करण 2021, पृ0सं0–150–153।
7. प्राचीन भारत का इतिहास, झा एवं श्रीमाली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पुनर्मुद्रण अक्टूबर, 2004, पृ0सं0–394।

उत्तम स्वास्थ्य और यौगिक अभ्यास

शिव कुमार तिवारी*

सारांश :– किसी का अनुसरण मात्र करने से योग की विद्या नहीं सीखी जा सकती है। योगाभ्यास के लिए योग्य गुरू का होना जरूरी है। ध्यान रखिए गुरु योग्य होना चाहिए जो शिष्य के कल्याण को ध्यान में रखते हुए योगाभ्यास या व्यायाम की शिक्षा दे रहा हो न कि अपने लाभ के लिए। हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि योगाभ्यास या व्यायाम की अपनी सीमाएं हैं यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग–अलग हैं। यदि सामूहिक रूप से या अत्यधिक मात्रा में योगाभ्यास या व्यायाम कराया जाए तो किसी भी को नुकसान पहुंच सकता है, विशेषकर उन लोगों को जो पहले से ही किसी न किसी बीमारी से ग्रसित हैं।

आज योग का प्रचार घर–घर तक हो चुका है। देश ही नहीं विदेश में भी योग का झंडा बुलंद है। अब अस्पतालों में भी योग की चिकित्सा के महत्व को समझा जा रहा है और चिकित्सक बीमारियों से निपटने के लिए योग के अभ्यास की सलाह देने लगे हैं। चिकित्सक अपने अनुसंधान का विषय योग को बनाने लगे हैं और अनेक शोधपत्र एलोपैथी के डाक्टरों द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है जिसका विषय योग या यौगिक व्यायाम हैं। यह तो सर्वसिद्ध सत्य है कि जब कोई भी विधा विकसित होती है तो उसके साथ कुछ न कुछ बुराइयां या कमियां भी विकसित होने लगती हैं। योग भी इस सत्य से परे नहीं है। इन कमियों को समझना और समझकर बचना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। जब तक इन्हें अच्छी तरह से समझ न लें न तो हमें स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार। पहले योग के बदलते रूप पर चर्चा कर लें तो हमें विचार यात्रा पर चलने में सुविधा होगी।

वैसे तो भारतीय परम्परा में योग की उत्पत्ति भगवान शिव से मानी जाती है और उसे ऋषि हिरण्यगर्भ को योग का प्रथम वक्ता माना जाता है। महर्षि पतंजति ने योग के सूत्रों को संकलित किया जिसे हम पतंजलि का योग दर्शन कहते हैं। परन्तु हम इतिहास की बात करें तो ने भारत का इतिहास विश्व का सबसे प्राचीन इतिहास माना जाता है और सिंधु घाटी की सभ्यता विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता मानी जाती है। सिंधु घाटी की सभ्यता को जानने का सबसे महत्वपूर्ण साधन पुरातात्विक विभाग द्वारा किया गया उत्खनन है। उन उत्खननों में अनेक मूर्तियां प्राप्त हुईं हैं, जिनमें से कुछ मूर्तियां तो खंडित हो गईं हैं और कुछ साबूत हैं। इनमें से कुछ मूर्तियों में योग की मुद्रायें अंकित हैं। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि योग उतना ही पुराना है जितना मनुष्य जाति का जीवन। योग तो सदैव से भारतीय दार्शनिक परम्परा का केन्द्रीय विषय रहा है। विद्वान मानते हैं कि हमारे वेदों में, जोकि सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं, जगह–जगह योग का वर्णन है। ऋगवेद, अथर्ववेद, सामवेद जैसे प्राचीन ग्रंथों में अनेक स्थानों पर वेदों का वर्णन है। लेकिन तब योग को मोक्ष के साधन के रूप में देखा जाता था। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग का अभीष्ट कैवल्य है। पूरे योग शास्त्र में यम–नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार द्वारा आंतरिक शुद्धि पर जोर दिया गया है। लेकिन महर्षि पतंजलि ने योग को कभी शारीरिक ब्याधि के उन्मूलन के लिए प्रयोग करने की बात नहीं की। कालांतर में हमारे ऋषियों ने यह महसूस किया किया बिना उत्तम स्वास्थ्य के योग की साधना संभव ही नहीं है। इसलिए शारीरिक शुद्धि के लिए उन्होंने अनेक अभ्यासों और शुद्धि क्रियाओं की खोज की जिसे हम आज यौगिक अभ्यास के नाम जानते हैं। इन विद्वानों में स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका और घेरण्ड ऋषि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता का नाम सर्वोपरि है।

आधुनिक युग में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, आचार्य रजनीश और स्वामी बी.के.एस. आयंगर जैसे विद्वानों ने योग को चिकित्सा विज्ञान के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आजकल स्वामी रामदेव, संतगुरू जगदेव जग्गी और श्री श्री रविशंकर जैसे लोग योग को एक सफल चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। भारत सरकार ने आयुष के नाम से एक अलग मंत्रालय बना दिया है, जिसमें योग को वैकल्पिक या पूरक चिकित्सा के रूप में मान्यता प्रदान कर इसके प्रचार प्रसार पर जोर दे रही है। 11 दिसम्बर 2014 संयुक्त

*** शोध–छात्र, सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरीकला, झुझनू, राजस्थान।**

राष्ट्र संघ की साधारण सभा ने प्रस्ताव पारित कर योग को विश्व के लिए हितकारी स्वास्थ्य संरक्षा का माध्यम मानते हुए प्रत्येक वर्ष 21 जून को विश्व योग दिवस के रूप में घोषित कर दिया। इसके साथ ही विश्व समुदाय से अपील की कि मानव स्वास्थ्य के हित में योग का अधिक से अधिक प्रचार–प्रसार करें।[1]

लेकिन योगाभ्यास का एक दूसरा पहले भी है जिस पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है। आजकल हर गली मोहल्ले में योग शिक्षक पैदा हो गये हैं, जिन्हें योग की सीमाओं का ज्ञान नहीं है। उन्हें इतनी भी सामान्य समझ नहीं है जिस व्यायाम का प्रभाव शरीर के लिए हितकारी हो सकता है गलत तरीके से उसका अभ्यास अहित भी कर सकता है। चरक संहिता में "देह व्यायाम संख्याता मात्राया तां समाचरेत।।" (च.सं. 7/31) अर्थात् जो शारीरिक चेष्टाएं शरीर की स्थिरता, दृढता के लिए शरीर के बल को बढ़ाने की इच्छा से की जाती हैं उन्हें व्यायाम कहते हैं। इस व्यायाम को मात्रा में सेवन करना चाहिए। आगे लिखा है, "श्रमः क्लमः क्षयतृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः। अति व्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते। शरीर का थकान, मन और इन्द्रियों का थकान, धातुओं का क्षय, रक्तपित्त रोग, प्रतमक, संज्ञक स्वास, खांसी, ज्वर और वमन अधिक व्यायाम से उत्पन्न होते हैं। चरक संहिता में अग्निदेव इससे भी आगे जाकर कहते हैं कि व्यक्ति को शरीर का श्रम, हंसना, अधिक बोलना, रात को जागना जैसे कार्य भी सीमित मात्रा में ही करना चाहिए अन्यथा जैसे सिंह अपने से अधिक बलवान हाथी को खींचता हुआ स्वयं ही थककर नष्ट हो जाता है उसी तरह से अति व्यायाम से भी मनुष्य को हानि होती है।[2] (च. सं. 7/33–35)

सामान्य मान्यता है कि अति सर्वत्र वर्जयेत। अर्थात प्रत्येक कार्य सीमा के भीतर ही करना लाभकारी होता है। श्रीमदभगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहाँ।[3] (श्री.भ.गी.–6/17) अर्थात योग तो उसी का सिद्ध होता है जो यथोचित रूप से खान–पान करता हो, सोता–जागता हो, और यथोचित रूप से कर्म करता हो। जो भी व्यक्ति इन सीमाओं का ध्यान नहीं रखेगा उसके लिए योग दुख को दूर करने का करण नहीं बन सकता है बल्कि दुख का कारण बन जाएगा। हमारे ऋषि–मुनि इन्हीं प्रचार लोलुपों से बचने के लिए योग को गुप्त रखने की बात कही थी। हठप्रदीपिका के प्रणेता स्वात्माराम जी ने लिखा, "हठविद्या परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम्। भवेद्वीयवती गुप्ता निवीर्या तु प्रकाशिता।।[4] (हठप्रदीपिका 1/11) पुस्तक की प्रस्तावना में ही कहा गया है कि कोई भी रीति–नीति, जब प्रचार या प्रदर्शन की ओर अग्रसर होने लगती है तो तब उस स्थिति में उसकी वास्तविकता धीरे–धीरे लुप्त होती जाती है और तब वह सिर्फ प्रदर्शन या प्रचार के लिए ही होकर रह जाती है। यौगिक अभ्यास भी मात्र व्यक्तिगत रूप से ही करने वस्तु है। प्रदर्शन के उद्देश्य से इसका सामूहिक मंचन कभी भी नहीं किया जाना चाहिए। इससे लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक रहती है। और इससे व्यक्ति कभी भी अन्तर्मुख नहीं हो सकता, जो कि योगाभ्यास का लक्ष्य है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वात्माराम ने "गोपनीयं प्रयत्नेन यथा रत्नकरण्डकम्" "भवेद्धीर्यवती गुप्ता निर्वीया तु प्रकाशिता" आदि का उल्लेख किया है।[5]

हिन्दी भाषियों में एक कहावत मशहूर है कि "देखी देखा कीजै योग, छीजै काया बाढे रोग"। इसका तात्पर्य है कि किसी का अनुसरण मात्र करने से योग की विद्या नहीं सीखी जा सकती है। योगाभ्यास के लिए योग्य गुरू का होना जरूरी है। ध्यान रखिए गुरु योग्य होना चाहिए जो शिष्य के कल्याण को ध्यान में रखते हुए योगाभ्यास या व्यायाम की शिक्षा दे रहा हो न कि अपने लाभ के लिए। हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि योगाभ्यास या व्यायाम की अपनी सीमाएं हैं यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग–अलग हैं। यदि सामूहिक रूप से या अत्यधिक मात्रा में योगाभ्यास या व्यायाम कराया जाए तो किसी भी को नुकसान पहुंच सकता है, विशेषकर उन लोगों को जो पहले से ही किसी न किसी बीमारी से ग्रसित हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. https://undocs.org/en/A/RES/69/131
2. गुप्त अत्रिदेव जी (सं. 2005), चरक संहिता प्रथम खंड, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस प्रकाशन, पृ०–99।
3. श्रीमदभगवत गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ–88।
4. दिगम्बरजी स्वामी एवं झा डॉ. पीताम्बर (1980) हठप्रदीपिका स्वात्माराम–कृत, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति लोनावाला प्रकाशन, पृ०–17।
5. दिगम्बरजी स्वामी एवं झा डॉ. पीताम्बर (1980) हठप्रदीपिका स्वात्माराम–कृत, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति लोनावाला प्रकाशन पृ०–5।

छत्तीसगढ़ में विकास जनित विस्थापन पश्चात पुनर्वास की वर्तमान स्थिति का एक अध्ययन

(रायगढ़ निर्मित दिलीप सिंग जूदेव सिंचाई परियोजना अंतर्गत विस्थापित जन-समुदायों के संदर्भ में)

डॉ. श्रद्धा गिरोलकर *

मुकेश्वर सोनवानी**

सारांश :– प्रस्तुत शोध छत्तीसगढ़ में विकास जनित विस्थापन पश्चात समुचित पुनर्वास की समस्या पर केंद्रित है। विकास स्वयं में सकारात्मक दृष्टिकोण का ही पर्याय है, जिसकी कड़ी लक्षित क्षेत्र के मूल निवासियों के विस्थापन से सम्बद्ध है। माना कि यह निरन्तर प्रक्रिया हो सकती है परन्तु प्रभावितों की सामाजिक–आर्थिक हितों की अनदेखी व उत्तरदायित्वपूर्ण पुनर्स्थापन की असफलता विकास के उक्त पर्याय को विघटन की ओर ले जाने वाला सिद्ध होता है। वर्तमान छद्म पुनर्वास नीतियों के दोषपूर्ण क्रियान्वयन से जीवन की मूल आवश्यकताओं जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पोषण एवं अन्य मानव अनुकूल दशाएँ द्रुत गति से प्रभावितों के समनान्तर नही हो पाते जिसका प्रमुख कारण यह भी है कि पुनर्वास नीति में विस्थापितों की सहभागिता व सहमति का अभाव होता है जिससे पुनर्वास के प्रावधानों से सामन्जस्य करने में वे असहज होते हैं। प्रस्तुत शोध में आनुभाविक एवं वस्तुनिष्ट आधार पर पुनर्वास नीतियों के प्रावधानों के अनुरूप प्रभावितों की वर्तमान स्थिति को जानने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द :–विकास, विस्थापन व पुनर्वास, मानवाधिकार, आधुनिकीकरण, आजीविका, उदारीकरण।

प्रस्तावना :– समसामयिक परिप्रेक्ष्य में विस्थापन और पुनर्वास की समुचित प्रक्रिया को विस्तृत अर्थ में विश्लेषित करना आवश्यक है। मानवीय व प्राकृतिक कारणों से घर, मूल स्थान, कृषि भूमि से दखल होने का नाम विस्थापन नही है अपितु विस्थापन विशेष वर्ग की सम्पूर्ण सांस्कृतिक तत्वों के विघटित स्वरूप का द्योतक है, जो असुरक्षा के भय से प्रारंभ होकर विवशता पर आकर खत्म होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि विस्थापन की स्थिति जब भी उत्पन्न होती है, तो इसके समनान्तर ही विस्थापितों के मध्य सत्ता पक्ष के विरूद्ध भ्रम की स्थिति का भी उद्वेग होता है, क्योकि प्रभावितों की सामाजिक–आर्थिक हितों, आवश्यकताओं और लाभों की मंत्रणा किये बिना ही केवल मुआवजे को आधार मानकर पुनर्वास कर दिया जाता है। जिनकी स्वयं की भूमि, घर और अन्य परिसम्पत्तियाँ है उन्हे उनका मूल्य तो अदा हो जाता है परन्तु जिनका परिवार केवल मजदूरी और शारीरिक श्रम से ही अपना जीवन यापन करते है उनके साथ मानवीय–न्याय का प्रावधान पुनर्वास नीतियों में संकीर्ण रूप में ही समाहित किये जाते हैं, जिन्होने भले ही अपनी कोई अचल सम्पत्ति नही गंवाई है परन्तु आजीविकागत, पारिवारिक और सामाजिक–सांस्कृतिक बिखराव का मूल्य पुनर्वास नीति अदा नही कर पाती है। इस अर्थ में स्वभाविकतः यह कहा जा सकता है कि वृहद विकास परियोजनाओं का लाभ केवल कुछ सम्पन्न वर्गों को ही मिल पाता है। असहमतिपूर्ण और असहभागी पुनर्वास नीति प्रभावितों को हाँशिए पर धकेल देता है।

''राष्ट्रीय पुनर्वास नीति 2007 की प्रस्तावना(1.2) के अंतर्गत पुनर्वास और पुनर्स्थापन के मुद्दों पर प्रभावित व्यक्तियों की सक्रियता को विकासात्मक प्रक्रिया में एक मूल–भूत अंग के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है, तथा साथ ही विस्थापन से प्रभावित वे लोग जो भूमि के संबंध में विधिक अथवा मान्यता प्राप्त अधिकार नही रखते जिस पर वे अपने जीवन को बनाए रखने के लिए पूर्णतः आश्रित

*** प्राचार्य, शास. दूधाधारी बजरंग स्नातकोत्तर(स्वशासी) महिला महाविद्यालय, रायपुर,, छत्तीसगढ़।**

**** शोधार्थी, शास. दुधाधारी बजरंग स्नातकोत्तर(स्वशासी) महिला महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।**

रहते हैं तथा विस्थापन, पुनर्वास और पुनर्स्थापन की प्रक्रियागत ढाँचे में केवल उन लोगों को ही नही, जिनकी भूमि तथा अन्य परिसम्पत्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से अर्जित की जाती है, बल्कि उन लोगों को भी जो ऐसी परिसम्पत्तियों के अर्जन से प्रभावित होते हैं, शामिल करना प्रावधानित है''[1]। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि इसकी निश्चित रूप–रेखा किसी भी पुनर्वास नीतियों में परिलक्षित नही होती।

2011–12 में दिल्ली के दोषपूर्ण बस्तियों को हटाकर सावदा घेवड़ा (नई दिल्ली) में बसाया गया। लैंड राइट्स नेटवक्र द्वारा सावदा घेवड़ा में पुनर्वासित परिवारों की बेदखली का विश्लेषण करने के लिए अध्ययन में संयुक्त राष्ट्र के मूल सिद्धांतों और विकास आधारित बेदखली तथा पुनर्वास नीति 2007 की दिशा–निर्देश द्वारा निर्धारित मानवाधिकार मापदंडों के आधार पर किया गया। अध्ययन में पाया गया कि ''दिल्ली में हजारों परिवारों की जबरन बेदखली और उन्हें सावदा घेवड़ा में स्थानांतरित करने में मानव अधिकारों की अनदेखी और उनका हनन हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दिल्ली सरकार ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उलंघन किया है। सरकार और उसके प्राधिकरणों ने भारत के संविधान, आवास एवं पुनर्वास से संबंधित राष्ट्रीय कानूनों एवं नीतियों, भारत के सर्वोच्च न्यायालय एवं दिल्ली उच्चन्यायालय के निर्णयों का उलंघन किया है। अध्ययन से प्राप्त तथ्यों से उजागर होता है कि दिल्ली सरकार ने राष्ट्र निर्माण संहिता और दिल्ली के मास्टर प्लान–2021 का भी उलंधन किया है, विशेष रूप से कम लागत के आवासों, पुनर्वास स्थल, आवासों का आकार और समयबद्ध सुरक्षा के मामलों में। संपूर्ण बेदखली प्रक्रिया विकास आधारित बेदखली पर संयुक्त राष्ट्र दिशा निर्देशों एवं सिद्धांतों का हनन हुआ है। सावदा घेवड़ा में जीवनयापन की स्थितियां व्यापक रूप में दोषपूर्ण हैं और राज्य राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मापदंडों के अनुसार पुनर्वास के अपने दायित्वों को निभाने में असपफल रहा है। स्थानांतरण के परिणाम स्वरूप महिलाओं को गंभीर परेशानियों का सामना करना पड़ा है। सावदा घेवड़ा महिलाओं और लड़कियों के लिए असुरक्षित है और उनके विरुद्ध हिंसा की कई घटनाओं की जानकारी मिली है। बच्चों पर भी बेदखली और सावदा घेवड़ा में स्थानांतरण खामियों का बुरा प्रभाव पड़ा है। लोगों को उनके घर तोड़े जाने और जबरन नए स्थान पर स्थानांतरण की खबरों से लोगों को मानसिक आघात पहुंचने के अतिरिक्त कई बच्चों को स्कूल छोड़ना पड़ा जबकि कई अन्य को अपने परिवार की आमदनी की पूर्ति के लिए काम करना पड़ रहा है''[2]।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है। कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना प्राथमिक लक्ष्य रहा है। इस क्षेत्र में 1990 के पश्चात जब उदारीकरण, नीजिकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को आत्मसाद् किया गया तब इन्हे और भी बल मिला। इससे नवीन तकनीकों के विकास मार्ग सुगम हो गया। वैश्विक स्तर पर साझे नेतृत्व की भावना से विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास से समुचित क्षेत्र में नवाचार का आगमन हुआ। कृषि क्षेत्र में 'हरित क्रांति' इसका एक उदाहरण है, जिसके अंतर्गत नवीन कृषि उपकरणों, संकरित बीज, फसलों की उत्पादकता बढ़ाने वाले खाद और सिंचाई साधनों का विकास करना प्रमुख था। सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि करने के लिए भारत में वृहद बांधों का निर्माण किया गया। मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, आध्रप्रदेश, कर्नाटक जैसे राज्यों में बांध निर्माण से बड़ी संख्या में विस्थापन हुआ। विस्थापन की मार सबसे ज्यादा जनजातियों को झेलने पड़े हैं। ''भातर दुनिया में बांध बनाने में तीसरे नंबर पर है। यहाँ आजादी के 65 वर्षों में लगभग 3500 बांधों (जिसमें प्रमुख है–नर्मदा बांध, रिहंद बांध, हीराकुण्ड बांध, सरदार सरोवर बांध, नागर्जुन बांध, मयूराक्षी बांध आदि) ने कराड़ों लोगों को विस्थापन की श्रेणि में ला दिया। 21वी सदी तक पहुंचने और विकास की गति को रथ देने में नदियों पर बनाये गए बांधों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बांधों से बिजली, सिंचाई का पानी, पीने का पानी मुहैया होता है। बिजली पैदा करने के उद्देश्य से विकास पुरूष पं. नेहरू ने 1940 में नर्मदा नदी पर बांध बनाने की अवधारणा रखी और 1978 में काम शुरू हुआ नतीजन नर्मदा घाटी में बसे लोगों को उजाड़ा जाने लगा। उजड़े हुए गाँवों और परिवारों के पुनर्वास की सम्पूर्ण व्यवस्था किए बिना ही उनके विस्थापन की प्रक्रिया जारी रही। यही कारण है कि मेघा पाटकर, डॉ. बी.डी मिश्रा जैसे सामाजिक कार्यकर्ता विस्थापितों के हक–हकूक के लिए आंदोलनरत है''[3]।

विस्थापन एवं पुनर्वास के संबंध में वास्तविकता यह है कि जिन प्राधिकृति संस्थाओं द्वारा विकास परियोनाओं के संचालन के लिए भूमि–अधिग्रहण और विस्थापन प्रक्रिया पश्चात पुनर्स्थापन किया जाता है उसके बाद के समयों में प्रभावितों की स्थिति के संबंध में कोई जायजा नही लिया जाता है न उनकी ओर औपचारिक तौर पर कभी ध्यान दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे तत्समय भी जीवन की पूर्व दशाओं में ही गुजर–बसर कर रहे होते हैं। ''डॉ. रामेश्वर उराँव जो कि तात्कालीन समय में राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के अध्यक्ष थे। इन्होने हैवी इंजीनियरिंग कार्पोरेशन लि. (एच.ई.सी.एल.), हटिया, रांची की स्थापना हेतु विस्थापित किये गए परिवारों की स्थिति के अवलोकन करने के लिए दिनांक 10/09/2016 एवं 11/09/2016 को रांची जिले के पुनर्वास ग्रामों का दौरा किया। विस्थापितों ने आयोग को निम्न जानकारियाँ दी और अपनी समस्याओं से अवगत कराया–

1. एस.ई.सी.एल की स्थापना हेतु भूमि का अधिगहण वर्ष 1957 से 1959–60 तक तात्कालीन बिहार सरकार द्वारा किया गया था। इस कंम्पनी की स्थापना वर्ष 1960 में हुई Deed of conveyance वर्ष 1996 मे किया गया। विस्थापितों को मुआवजे के रूप में रूपये 3200 से 4200 प्रति एकड़ राशि का भूगतान किया गया है। यह फसल हेतु क्षतिपूर्ति थी या भूमि की एवज में दी गई राशि थी, यह स्पष्ट नही है। उन्हे मकान, पेड़ पौधों, कुओं आदि की कोई क्षतिपूर्ति नही दी गई।
2. विस्थापितों को उनके मूल गांव के ही नाम के पुनर्वास स्थलों पर बसने के लिए 10 से 20 डेसिमल भूमि प्रति परिवार उपलब्ध गई जिनके लिए उन्हे 368 रूपये सरकार के पास जमा करना पड़ा। उन्हे जमीन के एवज में जमीन नही दी गई। उन्होने उक्त भूमि पर मकान भी अपने व्यय पर बनाया है। 60 वर्ष से अधिक समय बीत जाने पर भी उन्हे आज तक भूमि का मालिकाना हक नही दिया गया है क्योकि रजिस्टर–2 में नाम दर्ज नही हुआ है। रसीद न काटे जाने के कारण विभिन्न योजनाओं के लाभ से वंचित हैं और उन्हे भारी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। परिवार में बढ़ोतरी के कारण कई सदस्य वयस्क हो गए है और बाल–बच्चेदार होने के कारण उन्हे घर बनाने के लिए पुनर्वास स्थलों पर दी गई 10 से 20 डेसिमल भूमि कम पड़ रही है, जमीन के मालिकाना हक के कागजात न होने कारण उन्हे जाति प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, मूल निवास प्रमाण पत्र प्राप्त करने में दिक्कत हो रही है साथ ही अनुसूचित जनजातियों के विकास हेतु चलाई जा रही विभिन्न सरकारी योजनाओं के लाभ जैस–सामाजिक सुरक्षा–वृद्धा तथा विधवा पेंशन आदि से भी वंचित हैं क्योकि बहुत से लोगों के पास विस्थापित प्रमाण पत्र भी नही है''[4]।

आधुनिक जटिल सामाजिक व्यवस्था में नैतिकता और उत्तरदायित्व की भावना केवल सैद्धांतिक लक्ष्य के रूप में विद्यमान है। औपचारिक कानून की सीमाएँ और भी लचीले सिद्ध हुए हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में समाजवाद का लक्ष्य केवल यूटोपिया ही है क्योकि गुणवत्तापूर्ण मूल–भूत मानवीय साधन कुछ वर्ग विशेष तक ही आज भी सिमटा हुआ है, मानो मानव–मात्र में स्वच्छंद प्रकृतिक गुण क्षीण हो चुके हैं, इस व्यक्तिक स्वार्थपूर्ण चरित्र ने मध्यम व कमजोर वर्गों को सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पहलुओं पर मूक बना दिया है और निरंतर पतन की ओर हैं। पुनर्वास नियमों के पालन में अनियमितता प्रत्येक परियोजनाओं में अपरिहार्य बन गया है जिनके आंकड़ों में विश्वसनीयता का अभाव है। ''वाल्टर फर्नांडीस(2014) विस्थापित तथा पुनर्वसित किए गए लोगों के आंकड़ों का अभाव यह दर्शाता है कि सामाजिक परिप्रेक्ष्य का हमारा नजरिया कितना कमजोर है। इसी कमी की वजह से विस्थापित लोगों की संख्या को लेकर विवाद की स्थिति बन गई है। अरून्धति राय(1999) ने बड़े बांधों से विस्थापित 5.6 करोड़ लोगों का जिक्र किया। यह आंकड़ा लोक प्रशासन संस्थान के अनुमान पर आधारित है। सुरजीत भल्ला(2001) उनके इस आंकड़ों को यह कहकर चुनौति दी कि बड़े बांध से होने वाले विस्थापितों की औसत संख्या 13.60 है। दोनों ही तथ्य अशुद्ध आंकड़ों के आधार पर कहे गए थे। 1990 की शुरूआत में कुछ शोधकर्ताओं ने भरोसेमंद आंकड़ों के अभाव को दूर करने की कवायद शुरू की मौजूदा अध्ययनों से निकाले गए द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर यह आंकड़ा 2 करोड़ 13 लाख विस्थापितों तक पहुँचा। इस अध्ययन से साफ पता चलता है कि अधिकांश

आधिकारिक आंकड़े अनुमान से कम रखे गए हैं। उदा. हीराकुंड से विस्थापित लोगों का आधिकारिक आंकड़ा 1,10,000 (ओड़िसा सरकार 1986) था। लेकिन शोधकर्ताओं ने यह आंकड़ा 1,80,000 (पटनायक,दास एवं मिश्रा 1987) थी। इसी तरह त्रिपुरा में डुंबर बांध से विस्थापित परिवारों की आधिकारिक संख्या 2583 रखी गई जबकी वास्तव में 9000 परिवार या 40,000 व्यक्ति (भौमिक 2003 : 87) थी। असम में नंलबाड़ी जिले के पगलाडिया बांध के आधिकारिक आंकड़े के मुताबिक विस्थापित परिवारों की संख्या 3271 थी जबकि जमीनी आंकड़ों के मुताबिक प्रभावितों की यह संख्या 20,000 परिवार (भलारी 2004) थी''[5]।

उपरोक्त आनुभाविक अध्ययनों के विश्लेषण के आधार पर छत्तीसगढ़ राज्य के रायगढ़ जिला अंतर्गत निर्मित केलो बांध सिंचाई परियोजना के डूब क्षेत्र से विस्थापित किये गए परिवारों की पुनर्वास के पश्चात विस्थापन के सकारात्मक–नकारात्मक प्रभावों के संबंध में जानकारी प्राप्त की गई है।

केलो बांध–

''केलो बांध या दिलीप सिंह जूदेव परियोजना, रायगढ़ जिला मुख्यालय, छत्तीसगढ़ से 08 किमी की दूरी पर लाखा नामक गांव में केलो नदी पर निर्मित है। रायगढ़ व जांजगीर–चाँपा जिले के करीब 175 गांवों में सिंचाई व्यवस्था दूरूस्त करने केलों परियोजना की शुरूआत 2008 से की गई थी, यह परियोजना 2014 में पूरी हुई। यह परियोजना छत्तीसगढ़ की नवीनतम बहुउद्देशीय परियोजना है जिसकी कुल सिंचाई क्षमता 57 हजार 25 एकड़ है''[6]।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. उत्तरदाताओं की वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ज्ञात करना।
2. पुनर्स्थापन पश्चात की समस्याओं को ज्ञात करना।

अध्ययन पद्धति–

रायगढ़ में निर्मित केलो बांध के डूबान क्षेत्र से आधे दर्जन से अधिक गांवो का विस्थापन किया गया है। चूँकि बांध के डूबान में मुख्यतः ग्राम लाखा और दनौड, जहाँ से क्रमशः 186 व 137 परिवारों को हटाया गया है, आते हैं। इन ग्रामों का पुनर्वास (न्यू लाखा और न्यू दनौड) परियोजना क्षेत्र से 5–10 किमी की दूरी पर किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में दानों ग्रम लाखा एवं दनौड के कुल विस्थापित परिवारों के 25 प्रतिशत परिवारों को आनुपातिक आधार पर दैव निदर्शन के लॉटरी पद्धति द्वारा 80 परिवारों का चयन किया गया है। अध्ययन अंतर्गत तथ्यों का संकलन साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है।

आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण एवं विश्लेषण (Data presentation &Analysis)

तालिका क्रमांक–1

उत्तरदाताओं का व्यक्तिगत विवरण

क्रमांक	प्रत्युत्तर	आवृत्ति (80)	प्रतिशत %
1. लिंग	महिला	18	22.5
	पुरूष	62	77.5
2. आयु	35–45 वर्ष	38	47.5
	46–55 वर्ष	19	23.8
	56–65 वर्ष	16	20.0
	66–75 वर्ष	07	08.7
3. शिक्षा	अशिक्षित	34	42.5
	प्राथमिक	18	22..5
	माध्यमिक	15	18.8
	हाई स्कूल	09	11.3
	उच्च शिक्षा	04	5.0
4. जाति	अनुसूचित ज.जाति	64	80.0
	अनुसूचित जाति	09	11.3
	अन्य पिछड़ा वर्ग	07	8.7

5. व्यवसाय	मजदूरी	65	81.3
	कृषि मजदूरी	11	13.8
	स्वव्यवसाय	04	5.0

आरेख क्रमांक–1

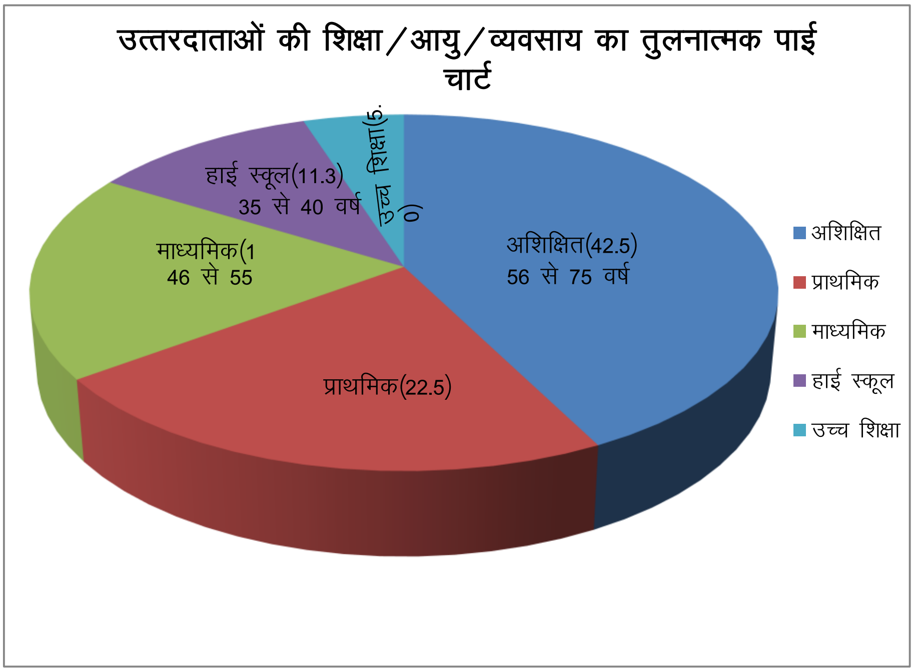

उपरोक्त तालिकाओं और तथा पाई चार्ट के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चयनित उत्तरदाताओ में 22.5 प्रतिशत महिलाएँ हैं तथा 77.5 प्रतिशत पुरूष। आयु संबंधी विवरण से ज्ञात होता है कि अधिकतम 45.7 प्रतिशत उत्तरदाता 35 से 45 वर्ष के हैं व 23.8 प्रतिशत की आयु 46 से 55 वर्ष के मध्य है तथा 20 प्रतिशत की आयु 56 से 65 वर्ष के मध्य है। केवल 8.7 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकी आयु 66 से 75 वर्ष के मध्य है। उत्तदाताओं में अधिकतम 45.5 प्रतिशत अशिक्षित हैं तथा 22.5 प्रतिशत ने प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की है। 18.8 प्रतिशत प्रभावित जन माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा व 11.3 प्रतिशत ने हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की है। मात्र 5 प्रतिशत ही उत्तरदाता उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाए हैं। चयनित उत्तरदाताओं में से अधिकतम 80 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति समूह के हैं तथा 11.3 व 8.7 प्रतिशत ही क्रमशः अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों से हैं। विस्थापन व पुनर्वास पश्चात वर्तमान में 81.3 प्रतिशत उत्तरदाता केवल मजदूरी करके ही अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं तथा 13.8 प्रतिशत कृषि मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए विवश है। केवल 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपना स्वयं का व्यवसाय है।

प्राप्त तथ्यों के सहसम्बंध से ज्ञात हुआ कि ऐसे उत्तरदाता जो अशिक्षित हैं उनमें से अधिकांशतः 56 से 75 वर्ष के मध्य आयु समूह से संबंधित है और इनमें से कुछ या तो कृषि मजदूर हैं या अक्षम है। जिन उत्तरदाताओं की आयु 35 से 45 वर्ष के मध्य हैं वे हाई स्कूल और उच्च स्तर तक की शिक्षा प्राप्त किये हैं परन्तु वर्तमान में इनके समक्ष मजदूरी से जीवन यापन करने के अलावा कोई विकल्प नही है।

विस्थापन का स्वरूप–

तालिका क्रमांक–2

विस्थापन का स्वरूप

क्र.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	ऐच्छिक	04	5.0
2.	अनैच्छिक	67	83.7

3.	बलपूर्वक	09	11.3
		80	100

अध्ययनगत समूह में उत्तदाताओं से विस्थापन के स्वरूप को जानने का प्रयास किया गया। इस संबंध में प्राप्त तथ्यों से ज्ञात हुआ कि केवल 5 प्रतिशत उत्तरदाता ही यह मानते हैं कि उनका विस्थापन उनकी इच्छा के अनुसार हुई है, तथा अधिकतम 80.7 प्रतिशत के द्वारा यह स्वीकार किया गया कि उनका विस्थापन अनैच्छिक रूप से हुआ है। 11.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि विस्थापन बलपूर्वक किया गया। जिन उत्तरदाताओं ने यह स्वीकारा कि विस्थापन उनकी इच्छा अनुरूप हुई है उनकी आर्थिक स्थिति वर्तमान की तुलना में बेहतर नही थी न उनकी घर की संरचनागत स्थिति उनके अनुकूल थी न उनका परिवार लम्बे समय से विस्थापित गांव में निवास कर रहे थे। ऐसे उत्तरदाता जो यह मानते हैं कि उनका विस्थापन बलपूर्वक किया गया है, उनके द्वारा जानकारी दी गई कि विस्थापन वर्षा के समय सम्पन्न कराया गया। इस दौरान डूब क्षेत्र में पानी भरने के कारण उन्हे विवश होकर वह स्थान छोड़ना पड़ा था।

प्राप्त मुआवजे से संतुष्टि का स्तर–

तालिका क्रमांक–3

मुआवजे से संतुष्टि का स्तर

क्र.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	पूर्णतः संतुष्ट	12	15.0
2.	पूर्णतः असंतुष्ट	43	53.8
3.	आंशिक संतुष्ट	25	31.2
		80	100

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि शासन द्वारा देय घर, कृषि भूमि, एव अन्य परिसम्पत्तियों के मुआवजे से 15 प्रतिशत उत्तरदाता पूणतः संतुष्ट हैं तथा अधिकतम 53.8 प्रतिशत उत्तरदाता शासन द्वारा प्रदत्त मुआवजे से पूर्णतः असंतुष्ट हैं व 31.2 प्रतिशत ऐसे हैं जो मुआवजे आदि से आंशिक रूप से ही संतुष्ट हैं। प्रदत्त मुआवजे से पूर्णतः असंतुष्ट होने का प्रमुख कारण यह पाया गया कि प्रात्त मुआवजे उनकी कृषि भूमि की गुणवत्ता व अवस्थिति के एवज में बहुत कम है तथा उनका मानना है कि शासन ने छलपूर्वक उनकी जमीन सहमति के बिना ही हथिया ली गई।

पुनर्वास पश्चात सामाजिक–आर्थिक स्थिति में परिवर्तन का प्रमुख कारण–

तालिका क्रमांक–4

सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन का कारण

क्र.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	आय बढ़ने के कारण	06	7.5
2.	आय कम होने के कारण	31	38.8
3.	घर और कृषि भूमि से दखल होने के कारण	12	15.0
4.	वर्तमान व्यवसाय में सुरक्षा के अभाव के कारण	23	28.7
		80	100

तालिका क्रमांक–4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 7.5 उत्तरदाता मानतें हैं कि उनकी वर्तमान सामाजिक–आर्थिक स्थिति में परिवर्तन का प्रमुख कारण आय में वृद्धि है। 38.8 प्रतिशत के द्वारा कहा गया कि आय घटने के कारण वर्तमान सामाजिक–आर्थिक स्थिति पहले की तुलना में निम्न स्तर की है तथा 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं के द्वारा इस बात पर बल दिया कि उनकी वर्तमान सामाजिक–आर्थिक स्थिति में परिवर्तन घर एवं कृषि भूमि से दखल कर दिये जाने के कारण हुई है। 28.7 प्रतिशत प्रभावितों ने स्वीकार किया कि उक्त स्थिति में परिवर्तन वर्तमान व्यवसाय में सुरक्षा के अभाव से हुआ है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति में परिवर्तन से संबंधित उपरोक्त तीनों कारण एक दूसरे से अंतर्सम्बंधित है परन्तु वर्तमान व्यवसाय में सुरक्षा का अभाव इस ओर इंगित करता है कि पुनर्वास नीति में विस्थापित परिवार के सदस्यों को उनकी योग्यता अनुरूप रोजगार देने का उल्लेख है, जिस पर अमल नही किया गया है, परिणामस्वरूप अधिकांश योग्य व्यक्ति दैनिक वेतन भोगी श्रमिक की श्रेणि में आ गए हैं।

निष्कर्श :– प्रस्तुत शोध में निश्कर्षतः यह पाया गया कि पुनर्वसित स्थल में शिक्षण केन्द्रों व अनुकूल दशाओं के अभाव में विस्थापित समुदाय शैक्षणिक गतिविधियों में और भी पिछड़ते जा रहे हैं। आजीविकागत साधनों के ह्रास के कारण प्रभावितों में मनावैज्ञानिक तनाव स्वभाविक ही है, यह समस्या रोजगार की उपलब्धता से जुड़ी हुई है। प्रभावितों को स्थानीय उद्योगों व कंपनियों में अकुशल होने के कारण काम पर नही रखा जाता। पारिवारिक सदस्यों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जिससे निवास की समस्या भी उत्पन्न हुई है, अतः आंशिक रूप से काम तथा आवास की तलाश में पलायन करने पर मजबूर हैं। जिस दर पर विस्थापितों से जमीन खरीदी गई उस दर पर परियोजना क्षेत्र के आस–पास उन्हे जमीन नही मिल पायी, इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी आर्थिक स्थिति स्थिर ही बनी हुई है। अनैच्छिक विस्थापन ने प्रभावितों में शासन के प्रति अविश्वास की भावना प्रबल बनाने में योगदान दिया है तथा नीतिगत असंतोष के कारण अधिकार आधारित संघर्ष का जन्म हुआ है। अध्ययनगत समूह में अधिकांश परिवार जनजाति समुदाय से संबंधित है। विस्थापन के पश्चात इस समुदाय की सांस्कृतिक जीवन में समुचित परिवर्तन देखा गया। पुनर्वसित स्थान में जातिगत संकेन्द्रण, संगठन व प्राथमिक संबंधों के विघटन के कारण प्रमुख रूप से परम्परागत सांस्कृतिक व्यवहार प्रतिमानों का लोप हुआ है।

सुझाव :– विकास जनित विस्थापन से संबंधित विभिन्न अध्ययनों में हमेशा इस पक्ष पर बल दिया गया है कि पुनर्वास नीति का क्रियान्वयन इस भांति हो कि प्रभावितों के लिए उसके प्रावधान तत्समय और निकट भविष्य में कल्याणकारी हो परन्तु विस्थापन व पुनर्वास के मुद्दों पर अनियमितता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। किसी भी देश–काल में प्रति व्यक्ति आर्थिक सम्वृद्धि ही विकास का सूचक नही है अपितु प्रति व्यक्ति खुशहाली भी विकास के अर्थ में समाहित है, इस उद्देश्य की पूर्ति प्रत्येक स्तर में मानवीय न्याय को प्राथमिकता देकर की जा सकती है। विस्थापन और पुनर्वास की समुचित प्रक्रियाओं के सम्पादन का दायित्व जवाबदेहिता के साथ किसी ऐसे केंद्रीकृत संवैधानिक संस्था को सौंपा जाना चाहिए जो मानवाधिकार का संरक्षण सुनिश्चित करे, तभी विकास का वास्तविक पर्याय सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची–

1. राष्ट्रीय पुनर्वास नीति–2007. नई दिल्ली. ग्रामीण विकास मंत्रालय.
2. चौधरी,शिवानी.(2014). *पुनर्वास की भयावहता.* नई दिल्ली. हाऊसिंग एंड लैंड राइट नेटवर्क्स.
3. विश्वास,अमित कुमार.(2011). *भारत में विकास बनाम विस्थापन.* हिन्दी समय. पृ.03
4. https://ncst.nic.in/sites/default/files/494.pdf
5. https://hindi.indiawaterportal.org/content/vaisathaapana-abhaava-aura-vaikaasa-kai-parakaraiyaa/content-type-page/47813
6. https://www.chhattisgarhgyan.in/2017/03/kelo-pariyojana-bandh.html

ओशो और नई शिक्षा का स्वरूप

रवि कान्त *

भारतीय शिक्षा व्यवस्था जितनी समर्द्ध है उतनी किसी अन्य देश की नहीं है। सदियों से इस शिक्षा व्यवस्था में वे अवयव सम्मिलित रहे हैं जो विश्व को प्रतिकूल परिस्थितियों में दिशा दिखाते रहे हैं। प्राचीन परम्पराओं और परिपाटियों का मूल्य एवं महत्व आज भी उतना ही है जितना कभी पहले रहा है या ये कहा जाए कि अब वे और भी अधिक मूल्यवान बन गये हैं तो ये अतिश्योक्ति न होगा। पश्चिम की शिक्षा व्यवस्था जो शैक्षिक वातावरण को अधिक से अधिक विलासिता से भरपूर करती है, वहीँ भारतीय शिक्षा दर्शन आज भी सूर्य की भांति अपना प्रकाश निरंतर फैला रहा है।

शिक्षा भारत में एक उत्साह से विचारणीय लेकिन अतिरेक से अवहेलना से ग्रसित एक समाजिक मुद्दा है। भारत जिसने विश्व को विश्वविद्यालय शब्द और उसकी कार्यप्रणाली के परिचित कराया आज वहीँ आज शिक्षा सबसे अधिक उपेक्षित है। जिस शिक्षा का मार्ग सुगम होना था आज उसी का मार्ग या तो अत्यधिक दुर्गम है या फिर ऐसा उलझा है कि समझ से परे है। पिछले कुछ दशक से सारा विश्व विशेषकर भारत जैसे विकाशील देश आधुनिकता और उदारीकरण के साक्षी बने हैं। आधुनिकता और भूमंडलीकरण अनेकों सकारत्मकताओ के साथ कुछ अद्रश्य नकारात्मकता भी लेकर आये। ये वो समय है जहाँ भारत की प्राचीन शिक्षा परम्पराओं के साथ पाश्चात्य की आधुनिक अवधारणाओं का मिलन हुआ। परिणामस्वरूप कुछ पुरानी समस्याओं के समाधान तो मिले लेकिन कुछ नविन समस्याए भी उत्पन्न हो गई।

आधुनिक युग में, जिसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग के रूप में मान्यता प्राप्त है, और इस क्षेत्र में विकास 20वीं शताब्दी से तेज गति से हो रहा है और साथ ही एक निडर, साहसी और विद्रोही बच्चे ने मध्य भारत से अपनी यात्रा को बताया। मध्य प्रदेश जो बाद में न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में सबसे मोहक विचारक दार्शनिक बन गया। शुरू में उन्हें आचार्य रजनीश और बाद में ओशो के नाम से जाना जाता था। ओशो एक क्रांतिकारी विचारक थे, जो पूरी तरह से अपने मूल और क्रांतिकारी विचारों के जनक थे और अत्यधिक आधुनिक और अत्यंत प्रगतिशील थे। उनके विचार जीवन के सभी पहलुओं पर भिन्न थे। वह शिक्षा व्यवस्था के बारे में बहुत चिंतित थे और उन्होंने शिक्षा पर गहन विचार दिया और युवा छात्रों और उनके शिष्यों को एक मुक्त समाज के लिए विचार–मंथन किया। ओशो ने एक प्रभावी और सार्थक शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक बहुआयामी ढांचा दिया है। ओशो के लिए, शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यक्ति को आजीविका के लिए तैयार करना था बल्कि आंतरिक समृद्धि प्रदान करना भी था। उनका लक्ष्य व्यक्ति को मुक्त करना और उसे आत्मा की पूर्ण पूर्णता की ओर ले जाना है। ओशो के लिए पारंपरिक रूप से घुमावदार समाज को एक स्वतंत्र और प्रगतिशील आधुनिक समाज में बदलने में शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। ओशो ने एक प्रभावी और सार्थक शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक बहुआयामी ढांचा दिया है। ओशो के लिए, शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यक्ति को आजीविका के लिए तैयार करना था बल्कि आंतरिक समृद्धि प्रदान करना भी था। उनका उद्देश्य व्यक्ति को मुक्त करना और उसे आत्मा की पूर्ण पूर्णता की ओर ले जाना है। ओशो के लिए पारंपरिक रूप से घुमावदार समाज को एक स्वतंत्र और प्रगतिशील आधुनिक समाज में बदलने में शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी।

ओशो और शिक्षक :– पश्चिमी शब्दावली में टीचर एक शब्द है जो सामान्यता कहीं भी प्रयोग कर लिया जाता है। किन्तु भारतीय दर्शन में इसके लिए तीन शब्द हैं गुरु, शिक्षक एवं अध्यापक। तीनों ही शब्द

*** सह–प्राध्यापक, शिक्षक–शिक्षा विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविध्यालय गया, बिहार।**

हिंदी और संस्कृत भाषा से लिए गयें हैं जिनका प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। सामान्य अर्थों में इन तीनो शब्दों को एक दूसरे के स्थान पर बहुधा ही प्रयोग किया जाता है किन्तु गूढ़ अर्थों में ये तीनों शब्द भिन्न अर्थ और स्वरूप लिए हुए हैं। ओशो ने भी शिक्षक के एक भिन्न रूप की कल्पना की थी जो उनके विचारों से परिलक्षित होती है।

शिक्षा :– जीवन्त शिक्षकों की खोज हमारे समाज में शिक्षक की अवधारणा जो है वो प्राचीन , परम्परागत गुरू से बिल्कुल भिन्न है। प्राचीन समाज की गुरू को लेकर जो धारणा है , वहाँ गुरू एक आदर्श है , ज्ञान का एक मात्र स्रोत है। उसका अनुकरण ही विद्यार्थी का एकमात्र धर्म है , गुरू सम्मान का समाज पात्र है उससे श्रेष्ठ कुछ नहीं। किन्तु शिक्षक वर्तमान द्वारा निर्मित है शिक्षक की अवधारणा नयी है। गुरू और शिक्षक में बहुत भेद है। गुरू से शिक्षक निम्न श्रेणी की बात है और शिक्षक इस भ्रम में है कि वह गुरू है और उतने ही सम्मान का भागीदार है। वस्तुतः जैस – जैसे शिक्षा के मूल्यों में गिरावट आयी वैसे – वैसे शिक्षा केवल एक व्यवसाय जैसी रह गयी। शिक्षक एक व्यवसायी , शिक्षण फैक्ट्रियों में काम करने वाला नौकर जैसा हो गया। ऐसी परिस्थितियों में सम्मान का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? शिक्षक अपना वास्तविक कार्य भूलकर केवल अपने पूर्वाग्रहों एवं समाज की मृत मान्यताओं को शिक्षार्थी पर आरोपित कर रहा है। वह केवल एक मध्यस्थ की भूमिका निभा रहा है।

सच्चा गुरु वह होता है जो किसी को सत्य की खोज कराये, उसकी आत्मा मे निहित ज्ञान को विकसित होने का अवसर दे। आज शिक्षक की परिभाषा ही बदल गई है। शिक्षक और विध्यार्थी के बीच मे फ़ासला ही नहीं है। आज इतना परिवर्तन है इतनी प्रगति है कि वस्तुएं और मान्यताएं कुछ ही देर बाद प्रचलन से बाहर हो जाती हैं। अतः शिक्षा के मूल्यों के बदलने के साथ ही शिक्षकों की भूमिका भी परिवर्तित होनी चाहिए। अब पहले की तरह शिक्षक शिक्षा के केंद्र मे नहीं होगा। वह सख्त आदेश देने वाला नहीं होगा वरन अब शिशु केंद्र के होगा। शिक्षा के और शिक्षक परिधि पर क्योंकि शिक्षा मात्र सूचनाओं से भर देने का कारी नहीं है बल्कि एडुकेशन शब्द के अनुसार उसके भीतर जो भी है बच्चे मे उसे प्रगट करने का माध्यम है। अब शिक्षक को बहुत विनर्म होना पड़ेगा वह तभी शिष्य को कुछ सीखा सकता है ऊपर से आरोपित अनुशासन के स्थान पर प्रेम से मित्र के समान शिक्षक को व्यवहार करना होगा। ओशो कहते हैं कि प्रेम आदर से ज्यादा मूल्यवान है क्योंकि प्रेम मे आदर तो समाविष्ट है लेकिन आदर मे जरूरी रूप से प्रेम समाविष्ट नहीं होता है। निषेध बगावत उत्पन्न करता है, आज्ञा जब ऊपर से थोपी जाती है तो वह स्वयं को तोड़े जाने का निमंत्रण भी देती है। ओशो के अनुसार एक शिक्षक की मुख्य विशेषताएं हैंः –

1. शिक्षक आधुनिक होना चाहिए, विचारों में पारंपरिक नहीं होना चाहिए।
2. बच्चों में निष्क्रिय प्रश्न पूछना, जिज्ञासा जगाना और बच्चों को निडर और साहसी बनाना ताकि वे समाधान ढूंढ सकें स्वयं के लिए।
3. एक मित्र, विद्यार्थियों के लिए एक बड़ा भाई, लेकिन पिता की तरह नहीं।
4. उनके बीच प्रतिस्पर्धा और तुलना शुरू नहीं करनी चाहिए।
5. छात्रों को अधिक रचनात्मक, हर्षित और हंसमुख बनने में मदद करना चाहिए।
6. समर्थन करना चाहिए छात्रों को एक दोस्त और मार्गदर्शक के रूप में लेकिन एक रूढ़िवादी शिक्षक के रूप में नहीं।
7. व्यक्तिगत, प्राकृतिक और उदार स्वतंत्र विचार रखने चाहिए।
8. छात्र को प्यार और करुणा के माध्यम से सही रास्ते पर रखें, और प्रतिस्पर्धा को दूर रखें।
9. एक शिक्षक छात्रों को स्वतंत्रता देना चाहिए और छात्रों की ऊर्जा को चैनलाइज़ करना चाहिए।
10. एक शिक्षक को विचारों में क्रांतिकारी होना चाहिए और सोचने के लिए लगातार आग होनी चाहिए और छात्रों में जागरूकता पैदा करने के लिए सभी प्रकार की जीवन स्थितियों का उपयोग करना चाहिए।

11. बच्चों से प्यार करें।
12. एक शिक्षक को राजनेताओं के संपर्क में नहीं रहना चाहिए।

हजारों सालों से इस देश में युवाओं का जन्म हुआ है। विचारों की इस दुनिया में, युवा कभी आशा का स्रोत नहीं होता है। इसलिए यह देश पिछड़ रहा है। हमारी आत्मा बिलकुल बूढ़ी हो चुकी है। हमारी अपनी समस्याओं का मुख्य कारण यह है कि आज हमारे पास युवावस्था नहीं है। युवा शक्ति का अर्थ है कि शक्ति को मजबूत किया जा सकता है, रूपांतरित किया जा सकता है। नई चीज़ें सीखें। इस तरह जो सीखने और बदलने के लिए तैयार है, उसे ओयो युवक कहा जाता है।

ओशो और नई शिक्षा का सृजन :— नई शिक्षा, नया बोध के संदर्भ मे ओशो का मत है कि सबसे पहले हमे उन गलत आधारों को पहचानना होगा जिनके कार्न शिक्षा व्यवस्था विकृत हुई है। ओशो अपनी व्याख्यानमाला मे कहते हैं कि "यदि व्यक्ति एक वार हीनता के भाव से ग्रसित हो जाता है तो उसके पास एक ही उपाय रह जाते हैं। या तो वह दूसरों को हीन सिद्ध करने का प्रयास करने लगता है जो कि एक रोग की अवस्था है। वह हीनता की ग्रन्थि से पीड़ित हो जाता है। वह बड़े पदों पर आसीन होकर दूसरों को छोटा दिखाने का प्रयास करने लगता है। ऐसे मे समाज के अधिकांश लोगों मे हीनता का बोध उत्पन्न हो जायेगा। एक अन्य अवस्था मे ऐसा व्यक्ति माता, पिता और शिक्षक आदि तथाकथित सम्मानित व्यक्तियों के द्वारा किया गया अपमान, व्यक्ति या बालक को हीनभावना से भरने के लिए पर्याप्त होता है और औसा बालक अपने आपको वास्तव मे हीन समझने लगता है जो कि आत्मघाती है। तो इस तरह हीन भावना से युक्त व्यक्ति या तो दूसरों की हत्या करना का कारण बनेगा अथवा आत्महत्या करना का कारण बनेगा"।

उपरोक्त विचार को आधार मानकर ओशो नई शिक्षा के विषय मे तीन प्रमुख बाते कहते हैं— प्रथम बात वे कहते हैं कि हमे अब तक की शिक्षा का जो मूल आधार था, बालक से आदर माँगना और बालक को आदर न देना, उसे अमूल रूप से मिटा देना पड़ेगा, हमे बालक को आधार देना पड़ेगा। द्वितीय बात वे कहते हैं कि सामान्यतः हमारा शिक्षक कभी भी विनम्र नहीं रहा है वह अपने विचारों को बालकों पर आरोपित करता है और अपने आप को ज्ञानी सिद्ध करता हुआ वह कहता है कि वह जो कह रहा है वह सत्य है। ओशो के अनुसार तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि माता, पिता और शिक्षक कोई भी हो उसके द्वारा बालक को शिक्षित करना अनिवार्य रूप मे स्वयं को शिक्षित करना है। शिक्षा की प्रक्रिया मे दो पीढ़ियों के बीच का संबंध होता है, शिक्षा ग्रहण करने वाले बालक एवं शिक्षा देने वाले शिक्षक या माता पिता या समाज के वरिष्ठ लोगों के मध्य एक पीढ़ी का अन्तर होता है अगर दोनों अपनी अपनी जगह स्थिर खड़े रहे तो शिक्षा की प्रक्रिया संपादित नहीं हो सकती है। दोनों को एक दूसरे की तरफ आधा मार्ग तय करना होगा तभी वास्तविक शिक्षा का आरंभ संभव है।

इस प्रकार नई शिक्षा, नया बोध नामक व्याख्यान मे ओशो ने बालक, शिक्षक और माता—पिता के मध्य संबंधों को पुनरपरिभाषित किया है।

ओशो और शिक्षा विद्रोह :— ओशो के शिक्षा दर्शन का एक अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु है कि वे समग्र विश्व के लिए अपना शिक्षा सिद्धांत प्रस्तुत न करके वरन भारतवर्ष की शैक्षिक सामाजिक विक्रातियों एव अतार्किक अवधारणों की विशद व्याख्या कर एक नवीन चिंतन प्रस्तुर करते हैं ओशो के अनुसार अभी तक भारत मे शिक्षक के लिए जिन आदर्शों की अपेक्षा की जाती है वह आदर्शवादी परंपरा के पोषक, अतीत का समान एवं अनुसरण करने वाले , अविद्रोही एवं यथा स्थिति को बनाये रखने के समर्थक हैं। जबकि ओशो इन गुणो के विपरीत शिक्षक को विद्रोही, क्रांति का जनक, विवेकशील, विचरवान एवं परंपरों की तार्किक व्याख्या करने वाला बताया है। इसी संदर्भ मे ओशो ने बड़ौदा मे अपने व्याख्यान मे कहा था कि " जो ज्ञान जो शिक्षा व्यक्ति की स्वतंत्र आत्मा को जन्म न दे सकती हो क्या उसे शिक्षा कहें, क्या उसे ज्ञान कहें ? वह बोझ होगी, जानकारी होगी, अधिगम होगी लेकिन शिक्षा नहीं होगी। अब तक शिक्षक ने विद्रोही का रूप धारण

नही किया है इसलिये पुराना सड़ा गला समाज, विकृतियों से युक्त समाज जिंदा है"। जो समाज खतरों को उठना बंद कर देता है वह समाज धीरे धीरे अपने ज्योतिशिखा खो देता है।

ओशो शिक्षक से अपरिचित की खोज की उम्मीद करते हैं लेकिन ये तभी संभव है जब शिक्षक मे खतरा मोल लेने की हिम्मत हो और अगर ये हिम्मत शिक्षक मे होगी तो निश्चित रूप से वह ये हिम्मत अपने शिष्यों मे भी विकसित करेगा।

ओशो और शिक्षा में महत्वाकांक्षा :– भारतीय सन्दर्भ में शिक्षा को आत्मसातीकरण का एक माध्यम माना गया है। शिक्षा जोकि एक सफल जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा जो मूल्यों के निर्माण के साथ साथ चरित्र का भी निर्माण करती है। भारत का गौरवशाली इतिहास बताता है कि शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य स्वयं से साक्षात्कार करना था लेकिन औद्योगीकरण और तकनीकी की बढती मांग ने शिक्षा को भी एक सफल व्यवसाय के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया। शिक्षा की अवधारणा मे ओशो कहते हॉं कि वर्तमान शिक्षा की धुरी "महत्वाकांक्षा की दौड़" ने मानुषी के हृदय को अधूरेपन से भर दिया है। पुरानी शिक्षा और नयी शिक्षा मे कोई भेद नहीं। शिक्षा पृथ्वी के किसी भी कोने पर और किसी भी युग मे मनुष्य को महत्वाकांक्षा सिखाने का ही मार्ग रही है। महत्वाकांक्षा का ज्वर जितना हम भर दें उतना ही हम व्यक्ति को शिक्षित मानते हैं। अब तक शिक्षा ने महत्वाकांक्षा से शून्य मन पैदा नहीं किया है। ओशो कहते हैं कि वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य के हृदय के पात्र को भरने कि कला मे दीक्षित कर दें। बाकी सब शिक्षा अधूरी भ्रांत और खतरनाक है। आज तक शिक्षा इस कसौटी पर पूरी तरह से खरी नहीं उतरी है बल्कि शिक्षित व्यक्ति का पात्र और भी बड़ा होता जाता है और मुश्किल भी होता जाता है। जितनी शिक्षा बढ़ती है दुनिया मे उतनी महत्वाकांक्षा का पात्र भी बड़ा होता चला जाता है जो सारी पृथ्वी की सम्पदा से भी भरा नहीं जा सकता है।

ओशो वर्तमान शिक्षा प्रणाली की "अतीत–उन्मुख" के रूप में आलोचना करते हैं। हमारे सभी सिद्धांत, विचार और आदर्श अतीत से लिए गए हैं। कोई भी विकासात्मक रचनात्मक गतिविधि हमेशा भविष्योन्मुखी होती है। शिक्षक, नेताओं, धर्मों, राज्य और समाज द्वारा बच्चे पर पुराने विश्वास, विचार थोपे जाते हैं। ओशो (रजनीश) के अनुसार, एक वास्तविक शिक्षा "प्रतियोगिता" नहीं बल्कि "सहयोग" सिखाएगी। यह रचनात्मक होना, प्रेम करना, आनंदित होना सिखाएगा। यह कभी भी "दूसरों के साथ तुलना" में विश्वास नहीं करता है "एक वास्तविक शिक्षा पहले नहीं होना सिखाती है।

संदर्भ–सूची :–

1. ओशो , धर्म और राजनीति , डायमण्ड बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1991।
2. ओशो, नए समाज की खोज, डायमण्ड बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1992।
3. ओशो, भारत के जलते प्रश्न, डायमण्ड बुक्स प्रा, लि., नई दिल्ली, 1973।
4. ओशो, शिक्षा में क्रान्ति, डायमण्ड बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली, 1981।
5. आचार्य रजनीश, धर्म और शिक्षा, बड़ौदा 27 मार्च 1969 को दिया गया व्याख्यान (रजनीश फ़ाउंडेशन लिमिटेड)
6. आचार्य रजनीश, नई शिक्षा, नया बोध (रजनीश फ़ाउंडेशन लिमिटेड, 1969)
7. ओशो, शिक्षा एवं प्रेम, 12 दिसंबर 1969 को जूनागढ़ मे दिया गया व्याख्यान (ताओ पब्लिशिंग हाउस पुणे, 1989)
8. ओशो, भारत के ज्वलंत प्रश्न (ताओ पब्लिशिंग हाउस पुणे, 1996)

ဢ★ଔ

भारतीय समाज और अम्बेडकर की दृष्टि

उमेश कुमार*

डॉ. अम्बेडकर के लेखन तथा भाषण भारतीय सामाजिक चिंतन के इतिहास और विकास का कालजयी दस्तावेज हैं। उन्होंने भारत में जाति प्रथा की जटिलता को सुलझाया एवं जाति प्रथा–उन्मूलन का सही मार्ग बताया। उन्होंने अमरीका में अपना शोध पत्र पढ़ते हुए बताया कि भारत में जाति प्रथा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक तौर पर एक गंभीर समस्या है। इसके परिणाम बहुत भयंकर हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दुओं में अंतर्जातीय विवाह नहीं हो सकते, बाह्य लोगों से समागम नहीं हो सकता, हिन्दुओं के अन्य देशों में जाने से जाति प्रथा वैश्विक समस्या होने का खतरा, सजातीय समाज में भी जाति प्रथा घुसी होने से उन लोगों का भी समागम नहीं हो सकता, सामाजिक अंतरंगता नहीं हो सकती, बाहरी लोगों से खान–पान और पहनावे पर पाबंदी होने से भिन्नता बढ़ती है, समाज कृत्रिम हिस्सों में विभाजित होकर रीति–रिवाजों और शादी–व्यवहार की भिन्नताओं से बंधता है, सपिंड विवाह के साथ सगोत्र विवाह भी अपवित्र माने जाते हैं, बाहरी समुदाय में शादी–व्यवहार को रोक देने से आंतरिक समस्याएं पैदा होती हैं जिनमें विधवा स्त्री और विधुर पुरूष समस्या हैं और इस समस्या का समाधान सती प्रथा, आजीवन वैधव्य और बालिका विवाह भी समस्या है, हिन्दुओं में जाति प्रथा के रीति–रिवाज व नैतिक मूल्य अवशेषों की तरह रहने से भविष्य में भी इसका खतरा, ब्राह्मणों में अपनी पूरी दृढ़ता से प्रचलित इस प्रथा का अनुसरण गैर–ब्राह्मणों द्वारा करने से ब्राह्मणों की नकल करने वाला वर्ग पैदा हुआ, मनु ने जाति प्रथा को दर्शन का रूप देकर 'मनु स्मृति' रचकर जाति धर्म का प्रचार किया जिससे वैज्ञानिकता के नाम पर धार्मिक सामान्यताएं लागू हुई, ब्राह्मणों ने धार्मिक प्रतिबंधों को वैज्ञानिकता का नाम देकर जाति प्रथा को और जटिल बनाया, जाति प्रथा के उल्लंघन से जाति बहिष्कृत बस्तियों का और जातियों का निर्माण हुआ। भारतीय लोगों में ऊँच–नीच, स्वच्छ–अस्वच्छ के भेदभाव पैदा हुए और एक ही प्रजाति के लोगों का सामाजिक विभाजन हुआ आदि। उन्होंने अपने भाषण (जो कि लाहौर जात–पाँत तोड़क मंडल 1936 के लिए लिखा था पर पढ़ा इसलिए न जा सका कि उसमें व्यक्त विचार असहनीय थे) में लिखा है कि अछूतों के साथ बहुत बुरा व्यवहार होता था। मराठा राज्य में पशवाओं के शासनकाल में यदि कोई हिन्दू सड़क पर आ रहा होता था तो किसी अछूत को इसलिए उस सड़क पर चलने की इजाजत नहीं थी कि उसकी परछाई से वह हिन्दू कहीं अपवित्र न हो जाए। अछूत को बतौर निशानी अपनी कलाई या गर्दन में एक काला धागा इसलिए बांधना आवश्यक था, जिससे कि हिन्दू गलती से उसे छूकर अपवित्र होने से बच जाए। पेशवाओं की राजधानी पूना में सभी अछूतों को अपनी कमर में झाड़ू बांधकर इसलिए चलना आवश्यक था, जिससे कि उसके चलने से पीछे की धूल साफ होती रहे और ऐसा न हो कि कहीं उस मार्ग से चलने वाला कोई हिन्दू उससे अपवित्र हो जाए। पूना (पुणे) में अछूतों के लिए यह जरूरी था कि जहाँ भी वे जाएं, अपने थूकने के लिए मिट्टी का एक बर्तन अपने गले में लटका कर चलें, जिससे कि जमीन पर पड़ने वाले उसके थूक से अनजाने में वहाँ से जाने वाला कोई हिन्दू अपवित्र न हो जाए। आधुनिककाल में भी मध्य भारत की बलाई नाम की एक अछूत जाति पर हिन्दुओं ने अत्याचार किया। 4 जनवरी, 1928 के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की एक रिपोर्ट दृष्टव्य है जिसमें संवाददाता ने बताया है कि बलाइयों पर नियम लाद दिए, जैसे–बलाई, सुनहरी गोटेदार किनारी की पगड़ियां नहीं बांधेंगे, वे रंगीन या फैंसी किनारी की धोतियां नहीं पहनेंगे, वे किसी हिन्दू की मृत्यु पर मृतक के सम्बन्धियों को चाहे वे कितनी भी दूर क्यों न रहते हों, मरने की सूचना देंगे, सभी हिन्दुओं के विवाहों में बलाई लोग बारात में आगे और विवाह के दौरान बाजा बजायेंगे, बलाई स्त्रियां सोने या चांदी के आभूषण नहीं पहनेंगी। वे फैंसी गाउन या जाकेट भी नहीं पहनेंगी, बलाई स्त्रियों को हिन्दू स्त्रियों के प्रसव के सभी मामलों में देखभाल

*** सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, अलवर एवं शोधार्थी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर।**

करनी होगी, बलाई लोगों को बिना कोई पारिश्रमिक मांगे सेवा करनी होगी और हिन्दू उन्हें जो कुछ खुश होकर देंगे, लेना होगा, अगर बलाई लोग इन शर्तों का पालन करना स्वीकार नहीं करते हैं तो उन्हें गाँव को छोड़ना होगा। बलाई लोगों ने उन्हें मानने से इंकार कर दिया तो हिन्दुओं ने उन पर अत्याचार किए। जैसे, बलाइयों को गाँवों के कुओं से पानी नहीं भरने दिया गया, उनको अपने जानवरों को चराने के लिए नहीं ले जाने दिया गया, उनको हिन्दुओं के खेतों से गुजरने की मनाही कर दी, जिससे यदि किसी बलाई का खेत हिन्दुओं के खेतों से घिरा हो तो बलाई अपने ही खेत तक न जा सकें और हिन्दुओं ने अपने जानवरों को भी बलाइयों के खेतों में चरने के लिए खुला छोड़ दिया आदि। गुजरात में सन् 1935 में घटी कविठा की घटना में अछूतों को बहुत कष्टों को सामना करना पड़ा। कविठा के हिन्दुओं ने आदेश दिया कि वे अपने बच्चों को सरकार द्वारा चलाए जा रहे गाँव के आम विद्यालय में न भेजें। गुजरात में अहमदाबाद जिले के जानू गाँव में नवम्बर 1935 में हिन्दुओं ने अछूत महिलाओं को इसलिए पीटा क्योंकि कुछ सम्पन्न अछूत महिलाओं ने धातु के बर्तनों में पानी लाना शुरू कर दिया। हिन्दुओं ने इसे अपने सम्मान के विरूद्ध समझा। भारत की जाति प्रथा की प्रचलित सामाजिक समस्या का प्रभाव शैक्षिक समस्या, राजनीतिक समस्या, आर्थिक समस्या और सांस्कृतिक (धार्मिक) समस्या पर भी पड़ा। जाति प्रथा से सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक (धार्मिक) अवनति हुई। इससे हिन्दू समाज संपूर्णतः छिन्न–भिन्न और हताश हुआ। इसमें सामूहिक गतिविधियों का आयोजन वर्जित होने से हिन्दू एक नहीं हो पाये। इससे असामाजिक भावना पनपती है, जैसे, एक जाति के लोग आनंदपूर्वक ऐसे गीत गाते हैं, जिनमें दूसरी जाति के प्रति घृणा छिपी रहती है। इससे हिन्दू समुदाय शत्रुओं का समुदाय बन गया। जाति प्रथा के कारण ही हिन्दुओं ने स्वयं सभ्य हो जाने के बावजूद मूल आदिम जातियों को जंगली ही बने रहने दिया। इसके साथ ही ऊँची जाति वाले हिन्दुओं ने जान–बूझकर हिन्दू समाज की निचली जातियों को ऊँची जाति के सांस्कृतिक स्तर तक ऊपर नहीं उठाया। हिन्दुओं ने ज्ञान का प्रकाश फैलाने नहीं दिया, उन्होंने दूसरों को अंधेरे में रखने की कोशिश की और उन्होंने अपने बौद्धिक और सामाजिक दाय को उन लोगों के साथ नहीं बांटा, जो उस दाय को अंगीकृत करने के लिए पूरी तरह तैयार और इच्छुक थे। हिन्दू धर्म के प्रचार में जाति प्रथा बाधक है। जाति प्रथा धर्म–परिवर्तन नहीं होने देती क्योंकि जाति का नियम ही यह है कि उसकी सदस्यता उसी जाति में जन्मे व्यक्ति को मिलती है। जाति प्रथा के कारण हिन्दुओं में संगठन नाम की कोई चीज नहीं है, इसीलिए हिन्दू कमजोर और डरपोक हैं। जाति प्रथा के कारण हिन्दुओं में उदासीनता है। रूढ़िवादियों ने सुधारकों को उत्पीड़ित करने और सुधारों को समाप्त करने के लिए जाति को सशक्त माध्यम बनाया। जाति प्रथा ने जन–चेतना और सार्वजनिक धर्मार्थ की भावना को समाप्त किया। इससे किसी भी विषय पर सार्वजनिक सहमति नहीं होती। हिन्दुओं ने अपनी जाति के हितों–स्वार्थों की रक्षा करने की बजाय अपने देश के लिए नहीं सोचा। डॉ. अम्बेडकर ने चातुर्वर्ण का विरोध किया और कहा कि, ''सामाजिक अधिकारों के संबंध में मनु के कानून से ज्यादा बदनाम और कोई विधि संहिता नहीं है। सामाजिक अन्याय के संबंध में कहीं से भी लिया गया कोई भी उदाहरण मनु कानून के समक्ष फीका पड़ जाता है। अधिकांश जनता ने इस सामाजिक बुराइयों को क्यों सहन किया ? विश्व के अन्य देशों में सामाजिक क्रांतियां होती रही हैं। भारत में सामाजिक क्रातियां क्यों नहीं हुईं, यह एक ऐसा प्रश्न है जो मुझे सदैव कष्ट देता रहा है। मैं इसका केवल एक ही उत्तर दे सकता हूँ और वह यह है कि चातुर्वर्ण की इस अधम व्यवस्था के कारण हिन्दुओं के निम्न वर्ग सीधी कार्रवाही करने में पूर्णतः असक्त बन गए हैं। वे हथियार धारण नहीं कर सकते, और हथियारों के बिना वे विद्रोह नहीं कर सकते थे। वे सभी हलवाहे थे या हलवाहे बना दिए गए थे। और उन्हें हलों को तलवारों में बदलने की कभी भी अनुमति नहीं दी गई। उनके पास संगीनें नहीं थीं इसलिए कोई भी व्यक्ति उन पर प्रभुत्व जमा लेता। चातुर्वर्ण के कारण वे शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। वे अपनी मुक्ति का मार्ग नहीं सोच सके या ज्ञात कर सके। उन्हें सदैव दबाकर रखा गया। उन्हें अपने छुटकारे का न तो रास्ता ही मालूम था और न ही उनके पास साधन थे। उन्होंने अनंत दासता से समझौता कर लिया और ऐसी नियति पर संतोष कर लिया, जिससे उन्हें कभी भी छुटकारा नहीं मिल सकता था।''[1]

डॉ. अम्बेडकर ने बताया कि एक आदर्श समाज स्वाधीनता, समानता और भाईचारे पर आधारित होता है। इसमें वर्ण–व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) नहीं होनी चाहिए क्योंकि ये पुराने नाम हिन्दुओं के दिमाग में उनकी पुरानी धारणाओं को पुनः जागृत करते रहेंगे। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में सुधार करने के लिए जाति प्रथा को समाप्त करना होगा। जाति प्रथा को समाप्त करने का वास्तविक उपाय अंतर्जातीय विवाह है, जिससे जति–विलय होगा। लेकिन यह रोटी–बेटी का सम्बन्ध का उपाय उन आस्थाओं और धर्म–सिद्धान्तों के विपरीत है, जिनको हिन्दू पवित्र मानते हैं। जाति तो एक धारणा है और यह एक मानसिक स्थिति है। इसलिए जाति प्रथा को समाप्त करने का अर्थ भौतिक रूकावटों को दूर करना न होकर, विचारात्मक परिवर्तन से है। हिन्दू समुदाय धार्मिक होने के कारण जाति प्रथा को मानते हैं। इसलिए जात–पाँत मानने में लोग दोषी न होकर, उनका धर्म दोषी है। इस धर्म के कारण ही जाति प्रथा की पवित्रता की धारणा का जन्म हुआ। शास्त्रों ने जाति–धर्म की शिक्षा दी। जाति प्रथा को समाप्त करने का वास्तविक उपचार शास्त्रों की पवित्रता में लोगों के विश्वास को समाप्त करने पर ही संभव है। जब प्रत्येक पुरूष और स्त्री शास्त्रों के बंधन से मुक्त हो जायेगा और शास्त्रों द्वारा थोपी गई हानिकारक धारणाओं से उनका मस्तिष्क मुक्त हो जायेगा, फिर अपने आप अंतर्जातीय खान–पान और अंतर्जातीय विवाह होने लगेगा। इसके लिए आपको महात्मा बुद्ध और गुरू नानक की तरह शास्त्रों की उपेक्षा के साथ ही, शास्त्रों की सत्ता को भी अस्वीकार करना होगा। आपको शास्त्रों और वेदों की सत्ता समाप्त करनी होगी। हिन्दू धर्म, धर्म नहीं है, यह वस्तुतः एक कानून है। आपको अपने धर्म को एक नया सैद्धान्तिक आधार देना होगा, जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के अर्थात् प्रजातंत्र के अनुरूप हों, और इस प्रकार के सिद्धान्त उपनिषदों में वर्णित हैं। यह धर्म–परिवर्तन अर्थात् नया जीवन होगा। इसी से हिन्दू समाज का पुनर्निर्माण होगा।

महात्मा गाँधी जी, डॉ. अम्बेडकर को हिन्दू धर्म के लिए एक चुनौती मानते थे। उन्होंने सवर्णों को अपनी मान्यता तथा व्यवहार को सही करने की सलाह दी थी। वे जात–पाँत को धर्म से नहीं जोड़ते थे। वर्ण और आश्रम–व्यवस्था को भी वे जात–पाँत से नहीं जोड़ते थे। वे वर्ण–व्यवस्था को व्यवसाय तक सीमित रखकर मानव कल्याण के लिए मानते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म को सत्य ही ईश्वर और अहिंसा मानव परिवारों का कानून के रूप में बताया था।

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दुओं को इस बात का एहसास करा दिया कि वे भारत के ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें दोष भरे पड़े हैं और उनके दोषों से अन्य भारतीयों की खुशहाली और प्रगति बाधित हो रही है। उनके नेतृत्व में 'मनु स्मृति' का दहन हुआ और उनकी अध्यक्षता में भारत का संविधान, 1950, की रूपरेखा निर्मित हुई। इस संविधान में भारत एक प्रभुत्वसंपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बना और उसके समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की भावना मिली।

संदर्भ–सूची :–

1. संकलनकर्ता (अंग्रेजी) : मून, श्री वसंत, प्रधान संपादक : शशि, डॉ. श्याम सिंह, 2014 (फरवरी), बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड–1, अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., भारत में जाति प्रथा एवं जाति प्रथा उन्मूलन, भाषायी प्रांतों पर विचार, रानाडे, गांधी और जिन्ना आदि, प्रकाशक : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 85

सहायक ग्रंथ सूची :–

1. कीर, धनंजय, (अनुवाद) सुर्वे, गजानन, (2018), डॉ. बाबासाहब आंबेडकर : जीवन–चरित, हर्ष भटकल द्वारा प्रकाशित पॉप्युलर प्रकाषन प्रा.लि. के लिए, 301, महालक्ष्मी चेंबर्स भुलाभाई देसाई रोड, मुंबई।
2. धनदे, डॉ. बी.एल. (संपादक), 2021, महामानव बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, प्रकाशक : वान्या पब्लिकेशंस, 3A/127, आवास विकास हंसपुरम्, नौबस्ता, कानपुर– 288021।
3. नैमिशराय, मोहनदास, 2021, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, प्रकाशक : मिशन जय भीम, हाउस नं. 590, जाटव मौहल्ला गाँव बादली, दिल्ली–110042, भारत।
4. (संपादक) सोनटक्के, यषवन्त, (2017), बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के विचार, सम्यक प्रकाषन, 32/3, पष्चिम पुरी, नई दिल्ली।
5. संकलनकर्ता (अंग्रेजी), मून, श्री वसंत, 2014 (फरवरी), बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड 1, अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., भारत में जाति प्रथा एवं जाति प्रथा–उन्मूलन, भाषायी प्रांतों पर विचार, रानाडे, गाँधी और जिन्ना आदि, प्रकाशक : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
6. संकलनकर्ता (अंग्रेजी), मून, श्री वसंत, 2014 (फरवरी), बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड 2, अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., संवैधानिक सुधार एवं आर्थिक समस्याएं, प्रकाशक : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

★

नालन्दा की गच-कला

डॉ. संजय कुमार*

सामान्य रूप से गच का अर्थ बारीक चूना धातु के पलस्तर को कहते है, जिसका प्रयोग अलंकरण के लिए दीवारों पर किया जाता है। गांधार में गच चूना के जो खोजे गयें है। तथा इस्वीं सदी के प्रारंभिक चरणों मे इसके प्रयोग की जो पद्धति अथवा तकनीक पहचानी गयी है इसमें कालक्रम में अनेक परिवर्तन हुए। आगें चलकर बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ–साथ गच के प्रयोग की तकनीक भी विभिन्न दिशाओं में फैली पूर्वी भारत में विशेषकर मगध क्षेत्र में चूना गच के प्रयोग की एक नयी तकनीक विकसित हुई, तथा राजगीर के मनियार मठ अपसठ, तथा नालन्दा जैसे केन्द्रों के गच के प्रयोग द्वारा अलंकरण किये गये। यहाँ पर स्टकों गच का अर्थ एक ऐसा निश्चित माध्यम है जिसे पत्थरो के छोटे–छोटे टुकडों तथा ईट के छोटे–छोटे टुकडों को चूने के द्वारा मिलाकर तैयार किया जाता था।

इसके अलावे मंदिर के ताखें अथवा बाहरी भितियाँ के ताखें पर आकृति अथवा प्रतिमा का ढॉचा खडा किया जाता था। जब इस तरह से तैयार किया ढॉचा सूख जाता था तब अंतिम पोटिंग के तौर पर चूने का 1/2 से लेकर 1/4 तक के हिसाब वाला प्लास्तर की दुसरी पश्त चढां दी जाती थीं। जिससे आकृति अथवा प्रतिमा को अंतिम स्वरूप प्रदान कर दिया जाता था। गच से बनी हुई प्राचीनतम कलाकृतियाँ गांधार क्षेत्र में विशेषकर तक्षशिला, फन्दूकिस्तान में तथा नालन्दा में प्राप्त हुए है। जहॉ स्तूपों एवं चैत्यों की बाहरी भित्तियों को चूना गच के द्वारा अलंकृत किया गया है। इन कलाकृतियों में कलाकारों ने किसी विशिष्ट आकृति अथवा प्रतिमा में यथार्थ भाव भंगिमा को व्यक्त कराने का अत्यंत बारीकी के साथ प्रयास किया है ताकि आकृति विशेष में भय, शाोक, वेचैनी तथा शांति जैसें भाव मुखरित हो सकें।

सर जॉन मार्शल के अनुसार गांधार क्षेत्र के स्टकों या गच बजरी अथवा छोटे–छोटे टूटे हुए तथा अन्य सामाग्रियों के साथ मिश्रित चूने से बनी है। चौथी एवं पॉचवी सदियों के उतरकालीन स्मारकों के में प्रयोग किये गये गच की तुलना में अधिक रूखड़ा या स्थूल है साथ इस काल में निर्मित गच अथवा स्टकों की आकृतियों में दूसरी बारीक परत चढाने का कोई भी साक्ष्य नहीं है जो कि उत्तरकाल के स्टकों की आकृति में नियमित रूप से पाया जाता है। मगध क्षेत्र के भी अपसढ़ नालंदा एवं राजगीर जैसे क्षेत्रों में 5वीं एवं 6ठीं सदियों में गच की कलाकृतियां पायी गई है। अपसढ़ मंदिर की आधार शिला की घटनाएॅ है।

इस फलक में जो विभिन्न आकृतियाँ है तथा जो प्रतीक है वे इसकी प्रकृति गुप्तकालीन होने का संकेत देते है। यद्यपि कुछ विज्ञानों ने अपसढ़ के मंदिर का समय 7वीं सदी निर्धारित किया है। मनियारमठ के आधार क चारों ओर भी पाँच ताखें है, जिसमें से एक–एक में निम्नलिखित आकृतियाँ है। (1) लिंग (2) चतुर्भुज विष्णु (3) नाग और नागिन (4) पाषाण पर आसीन गणेश तथा (5) छः भुजा वाले नृत्य करते शिव की आकृति। गच की ये आकृतियों अधिक महत्व की है क्योकि पूर्वी भारत में स्टकों कला के ये सबसे पुराने उदाहरण है।[2] दुर्भाग्य वश इस समय गणेश की आकृति के अवशेष यह दिखलाते है कि इस आकृति में भीतरी परत बजरी तथा चूना के मिश्रण से बनी है तथा अंत में चूना क बाहर प्लास्टर की परत इस पर चढ़ाई गई है।

नालन्दा के पुरातात्विक स्थलों से प्राप्त अधिकतर गच की कलाकृतियाँ मंदिर संख्या 3 के बाहरी भाग के चारों ओर बने हुए ताखों के अन्दर मिली है इनमें से अधिकतर बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गयी है केवल इनमें कुछ ही लगभग ठीक अवस्था में है। भग्नभाग के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मनियार मठ में गच के प्रयोग की जो तकनीक अपनाई गई थी उसे वहीं दोहराया गया है पर यहॉ की विषय वस्तु पूर्ण रूप

***सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, किसान कॉलेज, सोहसराय, नालंदा–बिहार।**

से बौद्धधर्म से संबंधित है। उदाहरण के लिए फलक संख्या 4 की आकृतियाँ क और ख बुद्ध तथा अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, बोधिसत्व की प्रतिमाएँ है। गच की ये आकृतियां इस दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक आकृति शिल्प शास्त्र में प्राप्त काले घुंघराले बालों के अतिरिक्त सभी को बौधिसत्वों की आकृतियाँ पर विविध प्रकार की आकृतियाँ पर केश सज्जा निश्चित ही महत्वपूर्ण है। इनके बालों को कम्पित ऐठनों लच्छेदार गुच्छों, छल्लों की तहों में विनयस्त किया गया। पुरुष आकृतियाँ के मुख लंबे तथा कभी–कभी गोल बनाये गये है तथा नीचलें होठ सामान्य रुप से भारी और मोटे उत्कीर्ण किये गये है।

नारियों की आकृतियाँ में सभी जगह गोल मुख पतले होठ उभरी हुई नाक तथा अन्य प्रमुख नारीगत विशेषताएं दिखलायी गयी है। उनके कानों में कुडल तथा गले में कंठा धारण किये हुए चिंहित किया गया है। बौधिसत्व की आकृतियाँ अत्यधिक अलंकृत है। इनमें कगंन करधनी कंठहार जैसे अलंकार देखे जा सकते है। ये आकृतियाँ को अभय मुद्रा में खडी अथवा बैठी हुई स्थितियों में मिलती है। यदाकदा उनका अंकन भद्रासन स्थिति में किया गया। बुद्ध आकृतियों वेश विन्यास से सर्वथा भिन्न बौधिसत्वों की वेशभूषा पूरी तरह दूसरें में अंकित की गयी।

सारनाथ की बुद्ध प्रतिमाओं में मुख के भावों में जो एक रूपता है वैसी एकरूपता नालन्दा की गच प्रतिमाओं में सुफलतापूर्वक अंकित नहीं किया जा सका है। ऐसा लगता है कि गच प्रतिमाओं के निर्माण के लिए कुशल तथा अकुशल दोनो प्रकार के मूर्तिकारों का एक समूह कार्य कर रहा था। इनमें से कुछ प्रतिमाओं में सारनाथ बुद्ध प्रतिमाओं के ही समान मुख की भाव भंगिमाएँ अंकित हुई है। उदाहरण के लिए मंदिर संख्या 3 के पूर्वाभिमुखी दक्षिण पूर्वी कोने के सबसे ऊपर के ताखे पर विद्यमान धर्मचक्र प्रर्वतन मुद्रा वाली बुद्ध प्रतिमाओं की मुख भंगिमाएँ सारनाथ जैसी ही है। जबकि इसी टावर के दक्षिण अभिमुखी बुद्ध प्रतिमा में इस प्रकार की मुख भंगिमा नहीं आ सकी है। बौधिसत्व की आकृतियों के संबंध में भी यही बात दिखलायी देती है। गच प्रतिमा निर्माण का कार्य पालकाल मं भी जारी रहा परन्तु इसके शैलीगत तथा तकनीकि दोनो ही स्वरूपों में परिवर्तन हुआ। नालन्दा के मंदिर संख्या 3 तथा 14 में पालकालीन गच मूर्तिनिर्माण कला के निर्माणकला का पतनोन्मुख प्रवृति होने का संकेत मिला।

इनमें भीतरी तह का स्थान गोबर तथा भूसी से मिश्रित पकी हुई मिटटी के नमूनों ने ले ली है। तथा चूने के पलास्टर द्वारा अंतिम तह को बनाया गया। उत्खनन स्थल से सीधे पूर्व की ओर सरायटीला के कुछ समय पूर्व किये गयें उत्खननों में भी बुद्ध की मिटटी की विशालकाय प्रतिमा के अवशेष प्राप्त हुए जिसपर चूने के पलास्टर की परत चढ़ाई गई है। इस उत्खनन में प्राप्त तथा संग्रहालय की गैलरी संख्या –2 में प्रदर्शित पकी मिट्टी से बना मानव के विशाल सिर में भी इसी तकनीक का प्रयाग हुआ है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि पालकालीन गच प्रतिमाएँ वस्तुतः चूने के मोटे पलास्टर से अच्छादित कच्चे और पक्की मिट्टी से बने हूए नमूने ही है। विक्रमशिला के उत्खनन में भी प्रधान स्थल के चारों दिशाओं में स्थिल गच से बनी विशाल सिर में भी इसी तकनीक का प्रयोग हुआ है।

अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि पालकालीन गच प्रतिमाएँ वस्तुतः चूने के मोटे पलास्तर से अच्छादित कच्चे और पक्की मिट्टी से बनी चार विशाल प्रतिमाएँ भी प्रकाश में आयी है जो यह प्रदर्शित करती है कि पालकाल में भी परिवर्तित रूप में भी गच का प्रयोग मूर्ति निर्माण में होता रहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बंगाल आदि अन्य पूर्वी क्षेत्रों में भी गच का प्रयोग मूर्ति निर्माण की सामाग्री के रूप में अच्छी तरह ज्ञात रहा था। राजसाही तेजनंदा तथा मूर्तिवाद जिलों के रंगमाटी से प्राप्त सिर की आकृतियाँ पाल पूर्ववर्ती काल में बंगाल में गच मूर्तिकला के अस्तित्व की पुष्टि करता है।

जहाँ नालन्दा में पालपुर्व काल में पाषाण प्रतिमाएं स्वल्प है वहीं चूना प्लास्टर से निर्मित मूर्तियों की संख्या उल्लेखनीय है। चूना पलास्टर कृतियां की मात्रा तथा मूर्ति शिल्प प्रधान उपादान समाग्री के रूप में इस सामाग्री में प्राप्त लोकप्रियता को संकेतित करते है। प्लास्टिक की उत्कृष्टता भी द्योतित करती है कि ये ऐसी अनुभवी शिल्पियों के उत्पादन है जो इस माध्यम के प्रयोगों में पूर्णतया अभियोजन प्राप्त थे। अनेक

मामलों में से प्रतिमा शिल्प अत्यन्त उत्कृष्ट सृजन है तथा इन्हें नालन्दा के कला शिल्पियों की असाधारण उपलब्धियों माना जा सकता है। चूना गच का कार्य परिसर के किसी एक स्थल तक ही परिसीमित नहीं था। ध्वंसाशेषों से ऐसा प्रतीत होता है कि विहार संख्या के अतिरिक्त चैत्य संख्या 12 तथा 14 में भी चूना पलास्टर के अलंकरण थें। उनमें से कुछ में तो क्लोसल बौद्ध प्रतिाएं भी विद्यमान थी।

कुल मिलाकर तथाकथित स्तूप संख्या 3 सबसे अधिक महत्वपुर्ण प्रतीत होता है क्योंकि यह निर्माण एवं पूर्ण निर्माणों के कम से कम सात चरणों से होकर अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँचा है। इस स्थल पर चूना गच का कार्य प्रारंभिक गुप्त काल में ही प्रारंभ हो चूका था। यह बात तृतीय एवं पलास्टर संरचरणा के इस स्थान पर किसी भी काल के उदाहरणों में सबसे अधिक भव्य नमूने प्रस्तुत करते है। इस चरण के मुख्य भवन के अभी तक बच रहे कोने वाली मीनारों तथा अग्र भाग के बुद्धों एवं बोधिसत्वों को प्रतिचित्रित करने वाली अनेक आकृतियाँ उद्‌घटित हुई है। खड़ी हुई स्थिति में उनमें से प्रत्येक विभिन्न आकारों वाले अपने–अपने ताखों पर प्रधान उपसाय प्रतिमा की स्थिति को प्राप्त किये है। आश्चर्यजनक रूप अग्र भाग के अवशिष्ट ताखों में से कुछ एक बुद्ध जीवनी से संबंधित लोकप्रिय कथानको द्वारा भी आहूत किये गयें है। भारतवर्ष में चूना गच समाग्री का प्रयोग व्यापक पैमाने पर मुख्य रूप से गान्धार में 5वीं सदी ईस्वी के अन्तिम चरण तक हुआ है।

रूपांकन एवं अनुपात, दोनों ही में समानता प्रदशित कर रही है। बुद्ध की विचरण कर रही एक दूसरी प्रतिमा दाहिनी ओर के सटे हुए ताखें पर अवस्थित है। पूर्व प्रतिमा में भी इसमें दृश्य अंकित है तथा बुद्ध की अत्युन्नत प्रतिमा दोनों पाशर्वो पर तीन आकृतियाँ दर्शायी गयी है। ठीक वाम पार्श्व बाला सिरविहीन परन्तु प्रभामण्डलयुक्त पुरूष परिचारक अपने एक हाथ में शीर्ष भाग पर मढ़ा हुआ एक खक्कखर धारण किये हुये है जबकि अपनी काख की ऊचाई तक उठे हुए दूसरे बायें केहुनी के नीचे लटकते हुए दिखलाया गया है। सम्भवतः दूसरे पार्ष्व का रूपाकंन अधिक महत्वपूर्ण है जिससे माँ तथा पुत्र के एक युग्म का अंकन है। यद्यपि मुख बुरी तरह से क्षतिग्रस्त है फिर भी सुडौल नारी का रूप का रूपांकन सर्वथा धार्मिक अभिप्राय वाले रूपांक्न में एक धर्मविरूद्ध दृष्य का भव्य छायांकन है।

रत्नजटित एवं प्रभामण्डल युक्त माता का अपने उस षिषु के कन्धों पर स्नेह भावना के साथ अपने करों को रखे हुए प्रदर्षित किया गया है जो कि इस कथानक का सबसे प्रमुख चरित्र है। मूर्त्ति शिल्पों को अद्रभुत निरीक्षण शक्ति और भी आगें बढी है। यह बात बालकों की सामान्य मानसिकता की गहरी सूझ–बुझ के रूप में संकेंतित है। उदाहरणार्थ बालक के दाहिने पैर माता के पैर के उपर अत्यंत स्वाभाविकता के साथ अंकित कर शिल्पी ने बालसुलभ चपलता को भव्यता के साथ यहाँ अंकित कर दिया है। विभिन्न उचाईयों में तथा भिन्न–भिन्न दिशाओं की ओर स्थित रहने पर भी मूर्तियों चौकोर आधारपीटिका पर एक एमान सतह पर खड़ी हुई दिलाई गई है। वृताकार प्रभाभगुल अथवा सामान्य पृष्टाभाग में अन्य किसी भी प्रकार के विवरणों के अभाव से आकृतियों को आकार प्रकार के विवरणों के अभाव से आकृतियों को अकार तथा कथानक की तीव्रता में श्रीवृद्धि हो गयी है।

चूने हुए चरित्रों का क्रम–विन्यास विशेषरूप से मा एवं शिशु का अवतारण समूचे प्रतिमा खण्ड की सही पहचान का मार्ग प्रशस्त कर देते है। अभी तक बचे हुए कोने वाले मीनारो तथा अवशिष्ट भिति पर बुद्ध की खड़ी हुई प्रतिमाओं के अतिरिक्त आसीन स्थिति वाली बुद्ध को कुछ प्रतिमाएं भी है। शाक्य मुनि बुद्ध के अतिरिक्त इन मुर्तियों में से विभिन्न अनेक ध्यानी एवं एवं मानुसी एवं ध्यानी बुद्धों की भी हो सकती है। विभिन्न आकारों में निर्मित ताखों पर अवस्थित मुर्तियां विभिन्न मुद्राओं एवं भाव–भंगिमा के साथ अंकित किया गया है। कर मुद्राओ में भूमि स्पर्श, ध्यान एवं धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्राएं अधिक बहुलता प्रलम्बपादासन के साथ जोड़ दिया गया।

अभी तक अप्रकाशित एक दूसरी प्रतिमा भी कई मामलों में उपर चर्चित बुद्ध प्रतिमा के ही समान है। प्रलम्ब पादासन वाले इन दोनो बुद्ध विग्रहों के मध्य इतनी अधिक समानता है कि इनमें से एक दूसरे की

प्रतिबिम्ब प्रतिमा की तरह प्रतीत होती है। संभवतः इसी के कारण आधिकारिक अथवा अनाधिकारिक किसी भी प्रकार के पूर्ववर्ती प्रकाशनों में इनमें से दूसरी प्रतिमा के फोटोंग्राफ लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई है। परिणामस्वरूप वर्ततान में किसी भी अध्येता के लिए विद्यमान चित्र से सन्तुष्ट होने अतिरिक्त अन्य कोई भी रास्ता नहीं बचता चित्र निकट अतीत में किये गये मूर्तिभन्जनों से उत्पन्न प्रतिमा के दयनीय स्थिति में आ जाने के बाद लिया गया है, अतः निश्चित रूप से अपर्याप्त है।

उपदेश दे रही इन दोनो बुद्ध प्रतिमाओं के बीच अनेक सामान्य तत्वों के होते हुए भी ये दोनो प्रतिमाएं पूरी तरह से एक जैसी नही है। सूक्ष्मतापुर्वक निरीक्षण करने पर उन दोनों के अनेक महत्पूर्ण विषयों में निश्चित ही अन्तर पाये जाते है। उदाहरणार्थ विचारधीन सोलहवें फलक में उधृत प्रतिमा के सिंहासन के पृष्ट भाग परा पन्द्रहवें फलक वाली प्रतिमा में गजदन्त रूप की तत्कालीक तौर पर पहचान है। दूसरी ओर इस प्रतिमा में बुद्ध के कन्धों के कुछ उपर तथा ताखे के मेहराब के ठीक नीचे उड़ती हुई आकृतियों (गन्धर्वा अथवा विद्याकारों) के युग्म को रखा गया है। विचाराधीन प्रतिमा में एक अन्य नवीनता यह है कि इसमें प्रतिमा की बाई केहुनी के फीते जैसा परिधान के छोर का सामान्य रूपांकन किया गया है।

यह लक्ष्य पाल–पूर्वकालीन नालन्दा मूर्ति कला में अत्यंत दुर्लभ रूप से पाया जाने वाला लक्षण है। इन विभिन्नताओं के अतिरिक्त दोनों के स्थितिस्थल भी भिन्न है। मुख्य प्रतिमा के साथ दो प्रभामण्डलयुक्त आकृतियाँ है, जो समभवतः बोधिसत्वों की है। पुर्वोल्लिखित आकृतियों की भाँति यहाँ भी सहवर्तिनी आकृतियों को आश्चर्यजनक रूप से पार्श्व में बुद्ध की ओर अभिमुख रूप में अंकित किया गया है। दोनों प्रतिमाएं बिना किसी भंग के सीधे तनी हुई खड़ी है। ठीक बाई ओर स्थित बोधिसत्व की बिना लक्षणों में से एक है। दोनों परिचारक देवों के वाम कर उनके अपने अपने नितम्बों पर न्यस्त है। दोनो को ही कुछ आभुषणों को धारण हुए दिखलाया गया है जबकि दाहिनी ओर खड़ी बोधिसत्व की प्रतिमा को जटामुकुट द्वारा अलंकृत किया गया है।

ꙮ★ꙮ

रघुवंश महाकाव्य में वस्तु-ध्वनि की चारुता

डॉ. सुमन कुमारी*

उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य है, कविता–कामिनी–कान्त कविकुल गुरू कालिदास की कलात्मक तूलिका से रचित 'रघुवंशमहाकाव्य' में महाकाव्योचित्त वस्तु–ध्वनि से सम्बद्ध श्लोकों को संकलित कर शास्त्रीय दृष्टि से उनमें वस्तु–ध्वनि का यथा संभव निरूपण करना।

शोध सारांश :– विलासिनीलास मनोभिरामा, रामार्पितश्रीः श्रितसौकुमार्या।
सालंकृतिर्वाग्वनिता विभातिश्रीकालिदासस्य कलाकलापैः।।(कपिलस्य)

इस संक्षिप्त आलेख में महाकवि कालिदास की अनुपम रचना 'रघुवंशमहाकाव्य' में 'वस्तु–ध्वनि' की अभिव्यंजना के साथ ही कवि की मौलिक उद्भावनाओं का उद्घाटन है, और अन्त में उपसंहार में समीक्षात्मक निष्कर्ष के रूप में शोध–प्रबन्ध का समापन किया गया है। कालिदास के समस्त काव्यों में ही नहीं अपितु समस्त साहित्य में 'रघुवंश' एक सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। यह महाकाव्य संस्कृत की महाकाव्य परम्परा का मेरूदण्ड है। कवि के इस महाकाव्य रूपी सागर में भारतीय वांगमय की समृद्ध परम्परा का गहन अवगाहन किया गया है। 'रघुवंश' में पाए जानेवाले संकेतो से ही कवि के व्यापक प्रतिभा का दिग्दर्शन होता है। काव्य के अतिरिक्त वेद, दर्शन, पुराण, आयुर्वेद, विज्ञान, भुगर्भशास्त्र, ज्योतिष आदि का असाधारण पाण्डित्य भी प्रकट होता है। यथा–

तस्य दाक्षिण्यरूढ़ेन नाम्ना मगधवंशजा [1]।
पत्नी सुदक्षिणेत्या सीद्ध्वरस्येव दक्षिणा।।

वेद–स्मृति परक ज्ञान के उक्त उदाहरणों के आधार पर हम निश्चित रूप से कह सकते है कि महाकविकालिदास युगप्रवर्तक काव्यकार साहित्य स्रष्टा थे। वस्तुतः उन्होंने संस्कृत साहित्य में एक नवीन द्वार का उद्घाटन किया। उनके वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य है। भाषा का प्रयोग सह्रदयह्लादक है। उन्होंने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। कालिदास ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों में विश्वास रखते हुए 19 सर्गो से निबद्ध 'वाक्' पद को लेकर 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'' से आरम्भ होने वाले विशालकाय 'रघुवंश' महाकाव्य' को 21 छन्दों में निबद्ध कर राम की कथा रची।

इसमें मनु से लेकर सूर्यवंशी 31 राजाओं के जीवन का चित्रण है। एक ओर बाह्यप्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी ओर अन्तः प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण। एक ओर अज–इन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता–परित्याग का मार्मिक दृश्य। कहीं राजतन्त्र का महत्व है तो कही दूसरी तरफ प्रजा में विचार–स्वातन्त्र्य। अर्थात् इनके इस महाकाव्य में विविध विरोधी गुणों का है, जो महाकाव्य को अतुलनीय बना देता है। विविध कला, ज्ञान और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा सरस्वती की शुभ्रधारा है।

यो कहे कि 'रघुवंश महाकाव्य' में महाकवि की कावयित्री प्रतिभा सरस्वती की शुभ्रधारा है। उनके महाकाव्य में स्वर्गीय आनन्द है, भैतिक विलास है, दैवी दिव्यता एवं मानवीय सौन्दर्यता का निर्दशन है जो भारतीय संस्कृति के इस अमर ओजस्वी कवि को कवि शिरोमणि बना दिया। बाण्भट्ट के शब्दों में –

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुर–सान्द्रासु मंजरीष्विव जायते।।[2]

अर्थात् कवि की रस भरी सुमधुर सूक्तियों में आम्रमंजरी के सदृश किसको आनन्द नहीं प्राप्त होता? यो कहें कि सभी को आनन्द का रसास्वादन होता है। यद्यपि टीकाकार मल्लिनाथ से लेकर रवीन्द्रनाथ की समीक्षा परम्परा तक शिरोमणि कालिदास के इस महाकाव्य का चिन्तन–मनन–अध्ययन किये जा चुके है

***वरीय व्याख्यात्री, साहित्य (संस्कृत) (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के अधीन) डॉ0 रामजी मेहता आदर्श संस्कृत महावद्यिालय, मालीघाट, मुजफ्फरपुर, बिहार–842001।**

परन्तु **'रघुवंश महाकाव्य में वस्तुध्वनि की चारूता'** इस विशेष दृष्टि से सर्वांगपूर्ण अदयावधि सफल मूल्यांकन नहीं हो पाया है। अतएव प्रस्तुत आलेख महत्वपूर्ण तथा शोध– विषय उपादेय हैं। यद्यपि यह विषय गूढ साधना, परमसि़द्ध साधकों द्वारा अनुसन्धेय है, फिर भी मेरा तो यह प्रयत्न '' तितीर्षुदुस्तरं मोहादुडुपेनास्मिसागरम''[3] की भांति ही है, जो निश्चित रूप से मौलिक एवं नवीन है। परन्तु तब तक मेरा यह श्रम साध्य नहीं होगा जबतक कि कालिदास के ही शब्दों में –

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।।
अर्थात् विद्वान् लोग हमारे कार्य से सन्तुष्ट न हो जाये।

मुझे विश्वास है – प्रस्तुत शोध आलेख में वस्तु–ध्वनि की चारूता के गुणवत्ता का निर्धारण विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण होगा।

प्रस्तावना :–

सरस्वती स्वादुतदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतांकवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्।।[4]

वृत्तिभाग– येनास्मिन्नतिविचित्रक विपरम्परावाहिनि संसारे कालिदास प्रभृतयोः द्वित्रा पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्यते। महामूर्धन्य कवि कालिदास वस्तुतः संस्कृत– साहित्याकाश के देदीप्यमान मुकुटमणि है। इनकी नीर–क्षीर विवेकनी दृष्टि में सौन्दर्य की वह अपूर्व छटा दिखती है, जो सहृदयों के हृदय को हृदयहारिणी बना देती है। उक्त उदाहरण इसका स्वतः प्रमाण है, जिसमें 'ध्वनि' प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन आमुक्त कण्ठ से कालिदास की स्फुरित विशेष प्रतिभा को अलौकिक कहकर श्लाघा है। 'रघुवंश–महाकाव्य' में कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण सर्वत्र दृष्टि–गोचर होता है। कवि के इस महाकाव्य में स्वर्गीय असीम आनन्द की अनुभूति है, भौतिक विलास के साथ–साथ दैवी दिव्यता है, सौन्दर्य की मानवीय मनोज्ञता के फलस्वरूप सात्विक सम्मोहन भी है। एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी ओर व्यंग्यार्थ का अपूर्व संयोजन। एक ओर अज–इन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता–परित्याग का मार्मिक दृश्य। महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में सौन्दर्य विषयक मान्यताओं का स्पष्ट वर्णन किया है। उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु के कण–कण में सुन्दरता निहित है, लेकिन मानव अपनी लावण्यमयी दृष्टि से देखता है वह सभी के मानस पटल पर मुखरित हो जाती है। अतः 'रघुवंशमहाकाव्य' में विविध–विरोधी गुणों का मणिकांचन संयोग है। महाकवि कालिदास ध्वनिवादी कवि हैं। इनके समस्त काव्यों में 'ध्वननं ध्वनि' की अभिव्यक्ति है। यही ध्वनि नामक तत्व, अनायास सहृदयों के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। यद्यपि साहित्य–विधा के उन्नायक महाकविषु कालिदास के काव्यों में तीनों ही ध्वनियों की अभिव्यंजना व्याप्त, है परन्तु शोध–आलेख के विषयानुरूप 'रघुवंशमहाकाव्य' में वस्तु–ध्वनि की चारूता को ही निबन्ध की परिधि में रखकर गहन अध्ययन, चिन्तन–मनन कर मूल्यांकन किया गया है, जो नवीन शोध–वेत्ताओं के मार्ग को प्रशस्थ करेगा।

पृष्ठभूमि :– 'कीर्ति यस्य स जीवति' अर्थात् अपनी अनुपम, अतुलनीय, श्रेष्ठतम कृति से ही कोई स्रष्टाकार अपनी–अपनी चिन्मय कीर्ति की प्राप्ति करता है। संस्कृत साहित्य के योशस्वी रत्नाकर कवि कालिदास भी उक्त कथन के प्रबल प्रमाण है। वास्तव में'–

जो मृण्मय को चिन्मय कर दे, जड में चेतनता भर दे।
अज्ञानवृत्त सभी मनुष्यों को वाचाल कृत कर दे।।
सरस्वती के वरदपुत्र उस परमतपोधन को यह जग,
तबतक याद करेगा जबतक साहित्य रूपी
नभ में, रवि, शशि जगमग रहेगा।

'सत्य ही है कवि कुलश्रेष्ठ कालिदास। भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ पुरोधा (विभूति) है। साहित्य–रसिकों ने उन्हें ऐसे अनेकानेक उपाधियों से सुशोभित कर दिया जो आजतक विश्व–पटल पर किसी कवि को प्राप्त नहीं हो सका। इन्हें किसी ने ''शेक्सपीयर'' की उपाधि से अलंकृत किया, तो किसी ने

संस्कृत साहित्य का 'कुलगुरू' कहकर सम्मानित किया। पुरातन कवियों ने कविता–कामिनी–विलास', दीपशीखा' आदि उपाधियों से विभूषित कर इनके काव्यों की महत्ता को स्वीकार किया। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है –कालिदास विषयक प्रशस्तिया यथा–

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ। यं यं व्यतीयाय पतिवरां सा।[5]
नरेन्द्रमार्गह इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।
पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यपि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती वभूव।।
पुष्पेषु चम्पा नगरीषु कांची नदीषु गङ्गानृवरेषु रामः।
नारीषु रम्भा पुरूषेषु विष्णुः काव्येषु माघः कविकालिदास ः।।
निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।। (बाण)
कविकुलगुरूः कालिदासो विलासः। (जयदेव)
ख्यातः कृति सोऽपि च कालिदासः, शुद्धा सुधास्वादुमती च यस्य।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसन्धिोः परंपारमवाप कीर्तिः।। (सोडढ़ल)
क्व सूर्यप्रभवों वंशः क्व चाल्पविषया मतिः
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।

कालिदास के तूलिका से निःसृत सप्त ग्रन्थ इस प्रकार है– (1) ऋतुसंहार, (2) कुमारसंभव (3) मालविकाग्निमित्रम् (4) विक्रमोर्वशीय, (5) मेघदूत (6) रघुवंश, (7) अभिज्ञानशाकुन्तलम्। ज्ञातव्य है कि कविशिरोमणि कालिदास व्यञ्जनावादी कवि माने जाते है। इनके काव्यों में तीनों ध्वनिया व्यंजित है, परन्तु यहाँ 'रघुवंशमहाकाव्य' में ध्वनित वस्तु–ध्वनि को प्रकाशित किया जा रहा है। द्रष्टव्य–

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।[6]
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत्।।

इस श्लोक में कहा गया है कि रघु के सैनिकों ने इच्छा पूर्वक स्नान–स्नान कर जल को मथ डाला फिर, हाथियों के स्नान करने से मद की कसैली गन्ध भी जल में आने लगी है। अर्थात् काबेरी नदी की ऐसी दुर्गति कर दी कि जब वह अपने पति के पास जाये तो उसके चरित्र में सन्देह होने लगे। यहाँ सम्भोग चिन्हों को देखकर पति तुम्हें अपमानित करेगा, इस वस्तु की व्यंजना हो रही है। अतः उक्त श्लोक में कवि प्रौढ़ौक्ति निबद्ध वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्यनिजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यरव्यसमर्पिता इव।।[7]

रघुजन्मोत्सव पर काव्य स्रष्टा कालिदास का कथन है कि बालक का तेज घर में इतना फैला हुआ था कि रात्रिकाल में घर में स्थापित दीपों का प्रकाश भी बिल्कुल मन्द पड़ गया है और वे ऐसे प्रतीत हो रहे है मानों चित्र में स्थित हौँ।

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार से देवताओं का अंश आने के फलस्वरूप रघु की शारीरिक कान्ति के समक्ष अन्य सभी पीले पड़ गये, इस वस्तु की व्यंजना ध्वनित हो रही है। अतः यहाँ स्वतः संभवी अलंकार से वस्तु व्यङ्ग्य स्पष्ट है।

वाणभिन्नह्रदया निषेदुषी सा स्वकाननभुवं केवलाम्।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत्।।[8]

इस पद्य का भावार्थ है कि राम के वाण से दैत्य ताडका का वक्षस्थल विदीर्ण हो गया और वह नीचे गिर पड़ी, उसके गिरने से प्राप्त हुई रावण की राजलक्ष्मी भी कांपने लगी। ध्यातव्य यहाँ ताड़कासुर के वध

का समाचार से अवगत होकर लंकापति रावण भी भयातुर हो गया। यहाँ भी वस्तु से वस्तु की व्यंजना व्यंजित हो रही है। यहाँ निश्चित रूप से वस्तु से वस्तु व्यंग्य की प्रतीति होना ही वस्तु ध्वनि है।

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः [9]।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः।।

यहाँ कौत्सनरेश! रघु से कहते हैं– हे राजन् आपने अपना धन सौमनस्य लोगों को दे दिया है। अब केवल शरीरर मात्र आपके पास शेष है, इससे आप उस तिल्ली के पौधे की ठूंठ जैसे बच गये है। अर्थात् तपस्वियों ने आपसे सब कुछ ले लिए है। परन्तु सबकुछ देकर अर्थात् दरिद्र होकर भी आप उस चन्द्रमा के सदृश अनुपम लग रहे है, जिसकी सम्पूर्ण कलाएं राहु ने ग्रास कर ली है।

प्रस्तुत श्लोक में सबकुछ दान स्वरूप दे देने से महाराज की आध्यात्मिक एवं शारीरिक आभा द्विगुणित हो गयी है– इस वस्तु की व्यंजना उपमा, अलंकार से हो रही है। अतः यहाँ भी कवि प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तु वयङ्ग्य है।

वनान्तरादुपावृतैः समित्कुशफलाहारैः पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः।।
सेकान्ते मुनि–कन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।।[10]

इस पद्य में महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में सौन्दर्य विषयक मान्यताओं का स्पष्ट वर्णन दृष्टिगोचर है। उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु में सुन्दरता निहित होती है, लेकिन मनुष्य जब अपनी सौन्दर्यमयी दृष्टि से उस वस्तु को देखता है तो वह स्वर मुखर हो उठती है। उक्त पद्य में 'रघुवंश महाकाव्य' के प्रथम सर्ग में तपोवन का यह सुन्दर चित्र मिलता है, जिसमें वस्तु ध्वनि का पावन चित्रण है।

शशामवृष्टयापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।[11]
ऊनं न सत्वेष्वधिको बबाधेतस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने।

अर्थात् राजा दिलीप प्रजापालक (रक्षक) थे, इसलिए उनके जंगल में पहुंचते ही, वर्षा के बिना ही वन की अग्नि शान्त हो गयी, वहाँ के पेड़ भी फल और पुष्प से युक्त हो गये। इतना ही नहीं बड़े जीवों ने छोटे जीवों को सताना भी छोड़ दिया। 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।' आचार्य मम्मट द्वारा प्रस्तुत विभावना अलंकार के इस लक्षण के अनुसार राजा दिलीप प्रजा– संरक्षक थे, इसलिए इनके वन में पहुँते ही वर्षा के बिना ही वन की अग्नि शान्ति हो गयी, वहाँ के पेड़ भी फल, पुष्प से युक्त हो गये और बड़े जीवों ने छोटे जीवों को पीड़ित करना छोड़ दिया। आशय यह है कि राजा दिलीप इतने यशस्वी थे कि स्थावर–जंगम सभी सम्मान करते थे– यह ध्वनि विभावना अलंकार के कारण ध्वनित (व्यंजित) हो रही है। अतएव यह कविप्रौढ़ाक्ति सिद्ध से वस्तु व्यंग्य अलंकार का उदाहरण द्योतित हो रहा है।

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा[12]।
अहितानानिलोद्धतस्तर्जयन्निव केतुभिः।।

भावार्थतः दिग्विजय के लिए रघु की सेना में जो झण्डियां थी, वे फुदफुदाती हुई ऐसी लग रही थी, मानों शत्रुओं को उठा–उठाकर फेंक रही थी। 'सम्भावनम् उत्प्रेक्षाा समेन यत्'।[13] अलंकार के इस लक्षण के अनुसार उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से शत्रुओं! सवधान हो जाओ, तुम्हारी विजयश्री पराजयश्री में बदलने वाला है, इस बात की ध्वनि की व्यंजना हो रही है। इसलिए हम कह सकते है कि इस पद्य में कविप्रोढ़ी उत्प्रेक्षा अलंकार से ही वस्तु–व्यंग्य का बोध हो रहा है।

किन्तु वध्वां तवैतस्यामद्वष्टसदृशप्रजम। न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी।।[14]

उक्त पद्य में राजा दिलीप गुरू वशिष्ठ से कहते है कि आपके शिष्य वधू स्वकीय सदृश गणों वाले पुत्र को न प्राप्त करने वाले मुझ! दिलीप को अनेकानेक रत्नों से आभुषित द्वीपों से युक्त यह पृथिवी भी नहीं अच्छी लगती। स्पष्ट है कि राजा को अन्य सभी रत्नों से अपने सदृश पुत्र रत्न ही सबसे अधिक प्रिय है। यहाँ भी ज्ञातव्य है कि साधारण जनों को भी सन्तान की प्रधानता होती है, उसी तरह राजा दिलीप भी सन्तानहीनता के कारण उदास है। यहाँ भी स्वतः– संभवी वस्तु से वस्तु ध्वनि की प्रतीती हो रही है।

यमात्मनः सद्मनि सन्निकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः।
प्रसादवातायनदृश्यनवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्।।[15]

रघुवंश महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में सुनन्दा हेमनन्द राजा के विषय में कहती है कि– ''ठीक इनके मकान के नीचे ही समुद्र की लहरें हिलोरें लेते है। ये लहरें राजभवन के झरोखों से स्पष्ट सुनाई देती है। जब ये अपने इस भवन में शयन करते है, तब वह समुद्र ही मृदंग की ध्वनि से भी गंभीर अपने गर्जन से सोने नहीं देते है।'' इस श्लोक में कालिदास ने राजा के प्रभावशाली व्यक्तित्व को प्रकाशित करने के लिए एक सखि से सुनन्दा के द्वारा कहलवाया गया कि इनसे तो समुद्र भी डरा हुआ रहता है, फिर अन्य लोगों की क्या बात?– यही तो व्यञ्जना है। यहाँ भी कवि निबद्ध वक्तृ–प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन, प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनु,र्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।[16]

अर्थात् – दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित संध्या के तुल्य राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु पुत्री नन्दिनी की स्थिति को एक अनुपम कल्पनामूलक उपमा से बताया गया है। यहाँ भी वस्तुध्वनि ध्वनित हो रहा है।

ताम्रोददरेषु पतितं तरूपल्लवेषु, निधौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतया धरोष्ठे, लीलास्मितं सदशनार्चिरिवत्वदीयम्।।[17]

कविमूर्धन्य कालिदास के काव्य में सहज सौन्दर्य की ही महिमा है, वह सौन्दर्यापहारक उपकरणों को भी अपना क्रीतदास बना लेते है। वे प्रकृति सौन्दर्य के सूक्ष्म द्रष्टा है, उक्त पद्य रघुवंश के पंचम सर्ग के है। प्रभातकाल का यह उत्कृष्ट और प्रभावोत्पादक वर्णन है। इस श्लोक में भी वस्तु ध्वनि की व्यंजना परिलक्षित हो रही है। एक और अन्य श्लोक

क्वसूर्य प्रभवो वंशःक्व चाल्पविषयामतिः। तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।

इस श्लोक में कहा गया है कि जिस प्रकार लघुकाय नौका से समुद्र को पार करना अत्यन्त दुष्कर है, उसी प्रकार महान चरित वाले सूर्य वंश का वर्णन करने में कवि अपनी बुद्धि को भी अत्यन्त अल्प मानता है, और विशालकाय रघुकुल के वर्णन प्रसंग में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। इस श्लोक में निर्दशना अलंकार के लक्षणानुसार यथा– ''अभवन् वस्तुसम्बन्धः उपमापरिकल्पकः''[18] के द्वारा असंम्भव में संभव की कल्पना किया गया है।

अतः प्रस्तुत श्लोक में उक्त अलंकार के लक्षणानुसार रघुकुल के वर्णन असम्भव सा है। ध्यातव्य है कि रघुकुल का वर्णन उडुप (बांस) की बनी हुई और चमड़े से बनी हुई नौका या पात्र विशेष से सागर के पार करने के समान है, इस उपमा में वस्तु ध्वनि का मनोरम ध्वनि व्यंजित हो रहा है। अतः यहाँ भी निर्दशना अलंकार से वस्तु ध्वनि की प्रतीति है।

उपसंहार :– रघुवंश महाकाव्य के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सुरगवी उपासक भारती के वरद पुत्र महाकवि कालिदास अनन्य मूर्धन्य महाकवि है। महाकवि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेकनी सौन्दर्यातिरेकी ध्वन्यात्मक दृष्टि विलक्षण है। कालिदास के प्रस्तुत महाकाव्य में ध्वन्यातमकता मुख्य है। उनकी 'वस्तु–ध्वनि की चारूता' का आस्वादन सहृदय की सहृदयता पर निर्भर करता है। भाव–सौष्ठव आदि के साथ ही पदलालित्य एवं भाषा की प्रांजलता का अनुपम समन्वय है। प्रसंग पात्र और वर्ण्य–विषय के अनुरूप शब्दावली का चयन है। भाषा की सर्वत्र रसानुकूल प्रतीति होती है। यत्र–तत्र शब्द–ध्वनि भाव–ध्वनि की अभिव्यक्ति करती है। कालिदास की भाषा वंशवर्तिनी के सदृश उनके भावों का अनुगमन करती है, जिससे अलंकार अनायास आते रहते है। यथा–

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा बुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः।।[19]

इसी तरह वाल्मीकि के आश्रम में प्ररित्यक्त जानकी के करूण–क्रदन का मार्मिक चित्रण किया है। उदाहरणार्थ–

'नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृङ्गा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्य।
तस्याः प्रपन्ने समदुःख भाव–अत्यन्तमासीद् रूदितं वनेऽपि।[20]

कालिदास अलौकिक प्रतिभा के धनी थे, उनकी सरस–सुबोध सी दिखाई देनेवाली कविता भी इतने गूढ़ और नित्य नवीन अर्थो की व्यंजना करती है कि उसके मर्म को स्वयं कवि, सरस्वती या ब्रह्मा ही ज्ञात कर सकते है तभी तो वाणभट्ट ने हर्षचरित्रम् में कहा है –

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।

इस प्रकार इन विवेचनाओं के उपरांत निष्कर्षतः मैं कह सकती हूँ कि भारतीय संस्कृति के पुरोधा कालिदास ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य में वस्तु–ध्वनि' की चारूता को चिरप्रतिष्ठित परिधि के भितर जीवन और जगत के मार्मिक तथा सारगर्भित मूल्यों के अन्वेषण में संलग्न हो कर व्यंग्य की ध्वन्यात्मकता को जो ध्वनित किया है वह किस अन्य कवि से सम्भव नहीं हो सका है। यही कारण है कि संसार के विद्वत् मनीषी रघुवंश–महाकाव्य से आकृष्ट होकर कालिदास को 'रघुकार' कहना अधिक पसंद करते है। तभी तो सुक्ति प्रसिद्ध है– 'क इह रघुकारे न रमते।' इस उक्ति से कवि चुड़ामणि कालीदास प्रणीत 'रघुवंश महाकाव्य' की लोकप्रियता सिद्ध होती है। इस प्रकार वस्तु ध्वनि के प्रयोग की दृष्टि से कवि का यह काव्य पूर्णतः सफल रहा है।

कथानक की व्यंजना की दृष्टि से 'रघुवंशमहाकाव्य' नामाकरण से भी ध्वनित हो जाता है कि इसमें रघुकुल में उत्पन्न राजाओं का यशोगान किया गया होगा, जिसमें वस्तु–ध्वनि का उत्तरोत्तर विकसित स्वरूप प्राप्त होता है तथा इस विकास परम्परा में ध्वनि के विविध स्वरूपों की पूर्णतः अभिव्यंना हुई है। कविषु कालिदास की 'नीर–क्षीर' विवेकिनी दृष्टि ध्वनि सौन्दर्य की छटा को इस तरह अपने इस महाकाव्य में सम्पुटित करने में सफल हुए है, जो सहृदयों के लिए हृदयहारिणी हो जाती है। विवेचित तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि 'रघुवंश महाकाव्य' में वस्तु ध्वनि' पर किये गये इस शोध कार्य से नवीन अनुसन्धान के क्षेत्र में शोधवेत्ताओं को निम्नांकित दिशाओं में प्रेरणा मिलेगी।

1. प्राचीन ग्रन्थों की समीक्षा की प्रवृत्ति पैदा होगी।
2. प्रस्तुत शोध–पत्र से साहित्य के पुरातन इतिहास में प्रामाणिकता सिद्ध होगी।
3. तुलनात्मक दृष्टि से भी प्राचीन रचनाओं और आधुनिक रचनाओं के बीच सामंजस्य स्थापित होगा।
4. प्रस्तुत शोध से कवि कालिदास की योग्यता एवं क्षमताओं का आकलन भी किया जा सकेगा।
5. भारतीय मनीषियों के चिन्तन जो साहित्य में व्याप्त है उसे प्रकाशित करने का प्रयत्न होगा।

अर्थात इन सभी दृष्टियों से अन्वेषण किया गया मेरा यह लघु–शोध–आलेख साहित्य के चिन्तन तथा अनुसन्धान के क्षेत्र को गति प्रदान करने में सहायक होगा, तभी शोध–श्रम की सार्थकता सिद्ध होगी, आशा ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह शोध पत्र अपने इन सभी उद्देश्यों के पूर्ति करने में सक्षम होगा।

सन्दर्भ– सूची :–

1. रघुवंश, 1–31
2. वाणभट्ट हर्षचरितम्–श्लोक सं. – 16
3. रघुवंश, 1–2
4. ध्वन्यालोकः, प्रथमउद्योतः, का. 6
5. रघुवंश, 6–67
6. रघुवंश, 4–45
7. रघुवंश, 7–15
8. रघुवंश, 11–19
9. रघुवंश, 5–15
10. रघुवंश, 1–49, 51
11. रघुवंश, 2–14
12. रघुवंश, 4–28
13. काव्यप्रकाश, उल्लास 10
14. रघुवंश, 1–65
15. रघुवंश, 6–56
16. रघुवंश, 2–20
17. रघुवंश, 5–50
18. काव्यप्रकाश, दशम् उल्लास
19. रघुवंश, 2–30
20. रघुवंश, 14–69

ॐ★ॐ

भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ
(राष्ट्रीय वेबिनार, 12-14 जनवरी 2021)

डॉ. दयानिधि मिश्र*

विद्याश्री न्यास के साम्वत्सर आयोजनों में से एक 'राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी और भारतीय लेखक–शिविर' इस वर्ष महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संयुक्त तत्वावधान में 'भारत में भाषा–चिंतन की परंपराएँ' विषय पर केंद्रित तीनदिवसीय (12–14 जनवरी 2021) राष्ट्रीय वेबिनार के रूप में आयोजित हुआ। उद्घाटन सत्र का शुभारंभ प्रो.रजनीश कुमार शुक्ल, कुलपति, म. गां. अं. हि. वि. वि. वर्धा और डॉ. दयानिधि मिश्र, सचिव विद्याश्री न्यास द्वारा माँ सरस्वती एवं पं. विद्यानिवास मिश्र के चित्र पर माल्यार्पण, डॉ. जगदीश नारायण के मंगलाचरण और डॉ. अरुणेश नीरन के स्वागत भाषण से हुआ। विषय–प्रस्तावना करते हुए प्रो. हनुमान प्रसाद शुक्ल ने भारतीय भाषा–चिंतन के विभिन्न आयामों का उद्घाटन किया। अपने बीज वक्तव्य में प्रो. दिलीप सिंह ने भाषा–विमर्श के इतिहास के साथ ही उसके समकालीन आयामों से भी परिचित कराया। मुख्य अतिथि प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल ने भाषा के वाक्य–पक्ष की महत्ता निरूपित करते हुए अभिव्यक्ति और संप्रेषण–विधान पर विमर्श की नई दिशाओं की तरफ संकेत किए। अध्यक्षीय संबोधन में डॉ. उदय प्रताप सिंह ने भाषा–चिंतन की लब्धियों की चर्चा करते हुए इस दिशा में अनवरत अनुसंधान पर बल दिया।

'वेद–वेदांग में भाषा–चिंतन' विषयक प्रथम अकादमिक सत्र में प्रो. विंध्येश्वरी प्रसाद मिश्र ने वेदों में तथा प्रो. गणेश ईश्वर भट्ट ने उपनिषदों में आए भाषा–चिंतन के सूत्रों का विश्लेषण किया। प्रो. मुरली मनोहर पाठक ने उच्चारण–व्यवस्था के विशेष संदर्भ में शिक्षा–ग्रंथों का अवगाहन किया। प्रो. मनोज कुमार मिश्र ने निघण्टु और निरुक्त के अविनाभाव संबंध को विवेचित किया। अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. राममूर्ति चतुर्वेदी ने प्रतिशाख्यों में वर्ण और पद–रचना के रूप में भाषा की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया।

दूसरा अकादमिक सत्र 'भाषा–चिंतन की दार्शनिक पृष्ठभूमि' पर केंद्रित हुआ। प्रो. के. ई. धरणीधरन ने न्याय दर्शन में प्रमाण–विचार की सूक्ष्म पद्धति का उल्लेख करते हुए शब्द–प्रमाण और शाब्दबोध का विवेचन किया। प्रो. कमलाकांत त्रिपाठी ने पूर्वमीमांसा के भाषावैज्ञानिक अवदान तथा प्रो. सुधाकर मिश्र ने प्रस्थान–त्रयी में आए भाषा–चिंतन के सूत्रों से परिचित किया। प्रो. कृष्णकांत शर्मा ने सांख्य–दर्शन के विशेष संदर्भ में शब्दार्थ–विचार की चर्चा की तथा प्रो. सच्चिदानंद मिश्र ने नव्य न्याय में भाषा–दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य भाषा–दर्शन से उसकी विशिष्टताएँ भी बताई। तंत्रशास्त्र का आधार लेते हुए प्रो. शीतला प्रसाद उपाध्याय ने भाषा के उच्चारण–श्रवण की पूरी प्रक्रिया का वैज्ञानिक विवेचन किया। डॉ. देवेन्द्र कुमार तिवारी ने विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों का उपयोग करते हुए भाषा–दर्शन के आधुनिक संदर्भों तक पहुँचाया। अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. धर्मचंद्र जैन ने श्रमण–परंपरा में भाषा की उत्पत्ति से लेकर व्यवहार तक विभिन्न विंदुओं पर व्यक्त विचारों का व्याख्यान किया।

वेबिनार के दूसरे दिन (13 जनवरी) की शुरुआत जिस तीसरे अकादमिक सत्र से हुई वह व्याकरणिक भाषा–चिंतन पर केंद्रित था। डॉ. बलराम शुक्ल ने संस्कृत–प्राकृत के संबंध–संबंधी अनेक भ्रांतियों का निवारण करते हुए स्थिर और गतिशील भाषा की अवधारणा स्पष्ट की। प्रो. जयप्रकाश त्रिपाठी ने व्याकरणिक भाषा–चिंतन में पाणिनि और अष्टाध्यायी के वैशिष्ट्य तथा सूत्र–शैली की महत्ता निरूपित की। प्रो. भगवान शरण शुक्ल ने बताया कि किस प्रकार महाभाष्य अन्य भाष्यों के लिए एक मानक ग्रंथ है और प्रो. मिथिलेश चतुर्वेदी ने यह कि किस प्रकार भर्तृहरि ने व्याकरण–चिंतन के क्षेत्र में वैश्विक प्रभाव रचा है। प्रो.

*** सचिव, विद्याश्री न्यास, नदेसर–वाराणसी।**

गोपबंधु मिश्र ने कात्यायन के भाषातत्वविवेक का विस्तृत विवेचन करते हुए उनकी प्रयोगधर्मिता का उल्लेख किया। प्रो. गायत्री प्रसाद पाण्डेय ने शब्द, अर्थ, अध्यास और उनके विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया। अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. रमेशचंद्र पण्डा ने सत्र–समाहार के साथ ही नागेश भट्ट के विशेष संदर्भ में प्रक्रिया, परिष्कार और दर्शन तीनो धाराओं का अनुशीलन किया।

चौथे अकादमिक सत्र का विषय था 'काव्यशास्त्र में भाषा–चिंतन'। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने हिंदी कविता के उद्धरणों के साथ शब्दवृत्ति के संदर्भ में भारतीय चिंतन की विशेषताएँ बताईं। प्रो. श्याम सुन्दर दुबे ने ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य सिद्धांत तथा प्रो. सदाशिव द्विवेदी ने अलंकार सिद्धांत में निहित भाषा–विमर्श को उपस्थित किया। प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय ने भारतीय रस–विमर्श का संदर्भ लेते हुए बताया कि भाषा की जो सर्वोत्कृष्ट परिणति है, काव्य, रस उसकी आत्मा है और इस नाते भाषिक संरचना के विविध आयामों से वह अंतःसंबद्ध है। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने रीति सिद्धांत के संदर्भ में भाषा–चिंतन के संधान–क्रम में बताया कि काव्य का हर बिंब लोकघटित है, सारे सिद्धांत, दर्शन और शास्त्रीय प्रकल्प लोकाश्रित हैं। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने भारतीय और पाश्चात्य भाषा–चिंतन का गहन तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया कि भारतीय चिंतन प्राचीनतर ही नहीं श्रेष्ठतर भी है।

राष्ट्रीय वेबिनार के तीसरे दिन, पाँचवाँ अकादमिक सत्र 'विद्यानिवास मिश्र स्मृति व्याख्यान' के रूप में आयोजित हुआ। 'लोक का वैभव : अभिव्यक्ति और अनुभव' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर यह स्मृति व्याख्यान लोकविद्याविद डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी ने प्रो. अच्युतानंद मिश्र, पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, की अध्यक्षता में प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि लोकवार्ताएँ अपने विविध रूपाकार में सामान्य जन के साझे सामाजिक अनुभवों की एक सुदीर्घ परंपरा की सहज अभिव्यक्तियाँ हैं और उनका सारा सौंदर्य अपने अनुभवों की सचाई और अभिव्यक्ति की सादगी में निहित है। उन्होंने उन सारस्वत प्रयत्नों का भी विशद विश्लेषण किया जिन्हें पं. विद्यानिवास मिश्र जैसे भारतीय लोक की आत्मिक पहचान रखने वाले अध्येताओं ने फोकस्टडी की पश्चिमी परंपरा से भिन्न, विशिष्ट और भारत–भावित स्वरूप प्रदान किया। विशिष्ट अतिथि प्रो. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने लोक के संदर्भ में पंडित के चिंतन की बारीकियों को सामने रखा। अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. अच्युतानंद मिश्र ने लोक की भारतीय अवधारणा के आलोक में लोकविद्या के उन आयामों की तरफ संकेत किए जो आज भी प्रासंगिक हैं और समकालीन परिस्थितियों में भी मानवीय संवेदनाओं को जिलाए–जगाए रखने के अचूक उपाय की तरह हैं। प्रो. गिरीश्वर मिश्र, पूर्व कुलपति म. गां अं. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा ने धन्यवाद–ज्ञापन के क्रम में प्रस्तुत व्याख्यान के साथ ही इस तीन दिवसीय संगोष्ठी के विभिन्न अकादमिक सत्रों की सारस्वत उपलब्धियों की भी चर्चा की।

'भारत में भाषा–चिंतन की परंपराएँ' जैसे गंभीर विषय पर पाँच सत्रों में चले इस गहन पांडित्यपूर्ण विमर्श ने, सुखद है कि छठे सत्र में एक काव्य–गोष्ठी के रूप में विराम लिया। यह काव्य–गोष्ठी मुख्य अतिथि के रूप में प्रसिद्ध गीतकर श्री बुद्धिनाथ मिश्र के सान्निध्य में, प्रो. रमेशचंद्र शाह की अध्यक्षता में संपन्न हुई। जिन कवियों ने अपनी रस–सिक्त हिंदी–भोजपुरी कविताओं से काव्य–गंगा प्रवाहित की, वे हैं सर्वश्री हरिराम द्विवेदी, गिरिधर करुण, रवींद्र श्रीवास्तव 'जुगानी भाई', अशोक द्विवेदी, आनंद संधिदूत, अनिरुद्ध त्रिपाठी 'अशेष', वशिष्ठ अनूप, श्याम सुंदर दुबे, मंजुला चतुर्वेदी, सुरेंद्र वाजपेयी, शिव कुमार 'पराग', हिमांशु उपाध्याय, ओम धीरज, जितेन्द्र नाथ मिश्र, जगदीश पंथी, आरती स्मित, अशोक सिंह, इंद्रकुमार दीक्षित, रामानुज अस्थाना, ब्रजेन्द्र नारायण द्विवेदी, सरोज पाण्डेय, वासुदेव ओबेराय, रचना शर्मा, अशोक कुमार सिंह 'घायल', शिवशंकर सिंह और अन्य।

यह राष्ट्रीय वेबिनार डॉ. दयानिधि मिश्र के धन्यवाद–ज्ञापन के साथ संपन्न हुआ। इसके विभिन्न सत्रों के संयोजन और संचालन का दायित्व सर्वश्री अवधेश कुमार शुक्ल, जगदीश नारायण तिवारी, जयन्त उपाध्याय, अशोक नाथ त्रिपाठी, हरीश अरोड़ा, अवधेश कुमार और प्रकाश उदय ने निभाया।

A STUDY ON YOUTH WING OF JANTA DAL (S) IN KARNATAKA

Dr. DEEKSHITH KUMAR M*

ABSTRACT: 'Political partiesAre the beauty of Democracy'. ToArticulates general interest in to specific. Hence, the role of political parties is inevitable in human life. In India every political party has its own organisational structureAt the different levelAcross the state followed by the party ideology.A political party has strong roots to doAll its politicalActivities. The Role of youth politics is critically observed in contemporary period. The role of civil society is the major tool to reform or to reconstruct the political system when the system is not in theAppropriate way. Hence theActive groups of civil society have strengthAnd status to help the civil society group in to the right path of politicalAdministration. But youth's have facing many problemsAnd challenges in contemporary politics to resolve politicalAbusesAnd to strengthen of youth politics in Karnataka. In Karnataka, thereAre three major political parties called Indian National Congress, Bharatiya Janata PartyAnd Janata Dal (Secular). Janata Dal (s) is oneAmong them establishedAs regional party in Karnataka. It has organisational structure to do politicalActivities in the state. In its political organisation Yuva Janata Dal namedAs youth wing of JD(S) playingA significant role to encouraging youth political parternership with the other civil society groups. The proper utilization of esteemed youth power is the utmost responsibilityAnd duty of each political party without the use ofAnyAggression. Youth wingActAsA 'School of Politics' to mouldA youth into becomingA learnedAnd matured politicalActivist to the state. Therefore Yuva Janata Dal has to take care of youth in order to providing political knowledge through the proper guidanceAnd directions. Many youths were believed in the ideology of youth congress because of itsActive politicalActions in Karnataka. It established under the constitution of the political party receiving theAdministrativeAnd financialAssistance from its parent party.

KEY WORDS :- Youth, Politics, Ideology,AuxiliaryAndAffiliated, Party Structure, Youth Wing, Policy.

INTRODUCTION :- Political parties workAs the fifth pillar of parliamentary democracy. It has own constitution which based on party structure, organisationAnd functions. Even though political parties provide politicalAwarenessAnd education to people thus helps to their political socialisation. MacIver says 'A political party isAnAssociation organised in support of some principles or policy which by constitutional means endeavors to make the determinant of government'. So that the political partiesAre groups of citizens who want toAchieve the wishes of the people withinA democratic setup. In the contemporary period the roots of political partyAre playingA significant role in politicalAction. Generally the political party has two significant groups which help to uphold the partyActivities with popular consent calledAuxiliaryAndAffiliated groups. The Election Commission of India broadly classified the political parties based on their representationAt different levels. SuchAs National parties, State PartiesAnd Registered Unrecognised parties.

***Assistant Professor, Department of Political Science, Bengaluru North University, Kolar-Karnataka-563103.**

Politics is participation ofAll citizens of the state therefore political parties of the stateActAsA facilitator to reach each individual in theActivities of politics. Political partiesAre recognizedAs oneAmong the pillars of democracy. They unite the different opinions of each individual into oneAspect of the state. WhenA party wins the confidence of the citizens, it isAn indication that public opinion trusts the party. Therefore the internalAnd externalAspects of political parties should be very strongAnd free from politicalAbuse. The wings of political partiesAre the primary level or the roots of political party it ensures the partyActivitiesAcross the state. Hence, the parent party has the responsibility to empowerment of its wings internallyAnd externallyAt the party organization.

Janata Dal (Secular) is one of the regional parties of Karnataka. It hasAn ideology of Center Left. The politicalActivities conducted by the party constitution. It's originated from Janata Party in 1977 formed by Jayaprakash Narayan. The Janata Dal (S) followed the method of organizational structure by Janata Party. The Janata Dal formed with theAlliances of Lok Dal, Janata PartyAnd Jana Morcha.At the time the party was headed by V.P Singh. The party established in few states of India suchAs Bihar, Gujarat, UPAnd Orissa. The Janata Dal (S) split from Janata Dal under the leadership of Chandrasekhar in 1991. The Janata Dal (S) formed in 21st July 1999 under the leadership of H.D Devegowda with the support of Madhu Dandavathe, Srikanth, S.R Bommai, Ibrahim, SiddarammaiahAnd others. The Janata Dal (S) is regional party, which is veryActively works inAll the level of the state namely National, State, DistrictAnd Regional levels. Each levels works with cooperationAnd coordination under the guidance of party councilAnd party executive. Each levels headed by the president, secretary, general secretaryAnd party workersAccording to the norms of party constitution. The parent partyAlso hasAuxiliary groupsAssociated with its works by the name of wings called student wing, youth wing, women wingAnd labour wing.

REVIEW OF LITERATURE :-

Dr. Noor MohammadAndAbdul Matin (1995), in their book 'Indian Youth: ProblemsAnd Prospects', explainedAbout the different dimensions of socialAnd political challenges for youth. The political behaviour of youth isA reason for their political participation. Their psychologyAndAttitude towards politics shapes their participation in politics. TheAuthors say that governments haveAnAction plan for welfare of youth in the form of youth policiesAnd programmesAnd education. The disparity between the urban youthAnd rural youth leads to structural stressAnd shapes political culture in the state. The economic status of youthAlso influences the youth. The influences of urbanisationAnd differentAspects of modernisation help participation of youth inAll social sectors especially in the field of politics.

OBJECTIVES OF THE STUDY :-

- To studyAbout the evolution of Yuva Janata Dal in Karnataka
- To understandAbout the orgnisational structureAnd functions of Yuva Janata Dal
- To examine the role of regional party of Karnataka to promote Youth politics.
- To study the significant role of regional political party in front of the national parties.

RESEARCH METHODOLOGY :-

In this study used the "HistoricalAnd Explanatory method" for the collection of dataAlong with interpretations. Primarily, thisArticle studyAbout evolution of the Yuva Janata DalAnd its organisational structure in Karnataka. The study of research needs to collect some information regarding the performance of the frontal organisation of Janata Dal (S). The roleAnd

responsibilities of youth wing in order to uphold the democratic principles. This studyAlso talksAbout the functionsAnd challengesAre facing by the Yuva Janata Dal in severalAspectsAnd strengthening of party by resolving those problems in contemporary period.

The Yuva Janata Dal of JD(S) playsA vital role in Karnataka Politics. 21st July 1999 when Janata Dal (s) formed under the leadership of H.D Devegowda in Karnataka by the time Yuva Janata Dal formedAs youth wing of its party. The JD(S) party followed the same organizational structure of Janata party. Yuva Janata Dal calledAs frontal organisation of the party because of theActivities of party workersAnd the party leaders. It has workingAt the different levels by the young leadersAcross Karnataka. It was closely related withActivitiesAnd programmes of the student wing called Student Janata DalAnd with the other wings of JD(S).

Yuva Janata Dal is oneAmong the frontal organisation of Janata Dal(S) in Karnataka. It is onlyA regional party of the state which works under the constitution of the parent party. WhenA candidate unable to carry out theActivities of the party or inefficient orAbove theAge of 40 he may removed from the membership of the party organisation. The leaders of youth wingAt the different levelsAreAppointed by the state party president with theAdvice ofAll India President of the party. The state party president of the youth wing has the tenure of three yearsAlong with his office bearers. Experience, efficiency, seniorityAnd performanceAre the criteria for theAppointment of the leadersAt the regional levels of youth wing. The Yuva Janata Dal is oneAmongActive wings of JD(S) in Karnataka. It has the objectives of Youth focusedAgenda, youth empowerment programmes, equal opportunities to youth inAll social sectorsAnd to provide equal education, health careAnd job creationAcross the state. It gives importance to self exploration forA political leader through theActive participation in the party programmes.

One who interested to join the party they must be fulfill the eligibility criteria of party constitution theyAre he or she must beA citizen of India, they should not belong toAny other political oranisationAnd they must relinquish their membership ofAny other political organisation. They must not have been convicted ofAny criminal offence. There is no subscription fee for membership to get the primary membership of party.

The members of the Yuva Janata DalAre spreadedAcross Karnataka. Their membership begins from booth level of its party organisation.A person who interested to join the party willAutomatically get the membership of youth wing through the method of public platforms of party, party officeAnd online data related to the official website of party with the required identity proofs. The party issued the ‘smart cards’ to those who get the membership of the partyAnd they have providedA separate portal to get membership of the party. It has the organisational structure similar to its parent partyAt the nationalAnd state level. It consisting the State president, State vice president, State secretary, treasurer, office secretaryAnd the regional heads suchAs District committee, Taluk Committee, Hobli/Municipality, Gram Panchayath/WardsAnd Booth levels.

Functions of youth wing :-

- The Yuva Janata Dal works under the guidance of its parent party
- It has provided the training programmesAbout the partyActivities, ideologyAnd code of conduct.
- Yuva Janata DalActsAsA bridge between different level of the party organisationAnd their members.
- TheActivities of Yuva Janata DalAre closelyAssociated with theActivities of Student Yuva Janata Dal in Karnataka.

- It ensures the potentiality ofA leader in order to their leadership quality
- It conduct the regular meetings/talks/workshops/seminars/propaganda by using public platforms
- It represents the social issues, youth problemsAnd politicalAbuses.
- It conducts Job Fair every yearAt taluk or district levels to helps youth.
- To promote the youth communityAcross the state using by youngActivists.

ProblemsAnd Challenges of youth wing :-

- PessimisticAttitude of youth towards politics in the state.
- Many youths may disconnected with theActivities of the party due to the lack of opportunities
- Lack of politicalAccommodations in party organisation
- To consider the efficiencyAnd experience of youth to promote higher position in the party organisation.
- The Yuva Janata Dal use more public platforms to bringAboutAwarenessAmong youthAbout the role of youth politics.

RESEARCH FINDINGS :-

1) Yuva Janata Dal needs to construct more Democratic set up in its organisation level.
2) Yuva Janata Dal has to bring youth in to the main stream of politics in Karnataka.
3) To bringAwarenessAmong its membersAbout the party ideologyAnd programmes.

CONCLUSION :-

The role of youth politics in Karnataka is essentialAnd brings changesAmong the young minds of Karnataka to the popular representation, by this way yuva janta dal playingAActive role. To uphold the Democratic principlesAnd makeAssurance for providing goodAdministration to our next generation is possible with the participation of youth in contemporary politics. When youth took initiative to participate in the objectivity of politics rather than the politics based on subjectivity the state will move towards the developmentAs wellAs its welfares. The reliability of politicalAdministration is based on the implementation of formal political educationAnd political theories. Therefore there is barrier between the thinkingAnd implementation of political ideas in the society. YouthAre hopes to come out from those barriersAnd to uphold the politics based on values.

REFERENCE :-

1. MatheenA & Mohammed N.(1955). '*See Maurice Duverger's Political Parties,* pp 63-71.
2. Sartori, G. (1965). *Democratic Theory*. Bombay: OxfordAnd IBH Publishing.
3. Kashyap, S. C. (1969). *Politics of Defection:A Study of State Politics in India*. New Delhi, National Publishing House.
4. Mello, D. M. (1971). *SomeAspects of YouthAnd Society in India*. Delhi: University of Delhi.
5. Janata Dal:Assembly ElectionAnd Manifesto [Brochure]. (1994). Bangalore.
6. Patil, H. (1996). *Beautiful Land of Karnataka:An Unfulfilled Dream*. Hubli: Vishal Karnataka Publications.
7. Narayanaswamy, S. (2003). *Youth Development in the New Millennium*. Delhi. OBI.
8. India, Government press of India. (2003). *National Youth Policy 2003*. New Delhi.
9. Shastri, S. (2004). *Lokshakti in Karnataka:A Regional Party inA Bi-polarAlliance System*. EconomicAnd Political Weekly.
10. Patagundi, S.And Patil, S. (2007). *Karnataka GovernmentAnd Politics* (H. Ramaswamy, Ed.). New Delhi:Ashok Kumar Mittal. Concept Publishing Company.
11. Jeffery, C. (2010). *Time pass: Youth, ClassAnd the Politics of Waiting in India*. Stanford University Press.
12. Hofmeister, W. &Grabow, K. (2011). *Political Parties - FunctionsAnd Organisation in Democratic Societies*. Singapore: KonradAdenauer Stiftung.
13. Kumar, V. (2014). *CasteAnd Democracy in India:A Perspective from Below*. New Delhi: Gyan Publishing House.

A STUDY OF THE MENACING GROWTH OF MOBLYNCHING IN INDIA

Dr. Shweta Kumari*

ABSTRACT :- Rising of mob lynching during the past few years is unexpectedly becomingA big challenge for democratic norms.PeopleAre lynched under the pretext of being beef eaters, child lifters, practitioners of witch craft, romeo's,Anti-nationalists, blasphemousAnd so on.Such type ofAttacks haveA drastic impact on the victimsAnd their family.It becameA national phenomenonAnd there is huge outcry fromAll corners of the country.This study focuses on such issuesAnd tries to find working solutions.In this paper we discussedAbout the separate law, preventive, punitiveAnd remedial measures for the benefit of victimsAnd their familyAnd understand the circumstances of the violence.

Key words :- Social media, rumors, mob violence, fake news, semi-literate society,etc.

INTRODUCTION :- During the past few years,India is facingAn unprecedented rising of mob lynching.Lynching phenomenon is not new in India but rather haveA long history in the country. Mob justice can be explainedAsA situation whereA crowd of people,sometimes several hundred, take law into their own hands,ActAsAccusers, juryAnd judgeAnd punishAnAlleged criminal on the spot.Merriam Webster dictionary describes lynchingAs,Putting to death by mobAction without legalApproval. This procedure often ends up with the victim being beaten to death or seriously in-injured. Lynching's originated in the 19th centuryAmerica,where white mobs lynched blackAmericans if they crossedAny historically embedded hierarchical boundaryAnd to instilA sense of fearAmongst them. Mob lynchingAnd communal riots both rely on rumours to mobilize crowds on streets to carry perpetrate violenceAnd it make peopleAnxiousAnd convert ordinary human beings intoA member of lynch mobs.Mob lynching targets particular individuals whoAre proclaimed by the mob to be guilty of specific 'crime' or 'wrong doing'.

MOB VIOLENCE HAS TRADITIONALLY TAKEN THREE FORMS IN INDIA :-

1. '**Witch-huntin**g'of mobs lynching,a mentally challenged women in parts of rural India,Accused of stealingAnd sometimes murdering children, the Hindi term for witch being 'Dayan'.An estimated 2097 such murders were committed between 2000And 2012 inAt least 12 states of the country.(BakshiAnd Nagarajan, 2017)
2. Historical caste violenceAgainst Dalit's, including rape,murderAnd other forms of physicalAttacksAll by mobs.
3. Lastly mob violence during communal conflagrations, suchAsAgainst Sikhs (1984), Christians (Kandamahal, 2009)And Muslims in Gujarat (2002), Muzaffarnagar (2013)And Baksa (2015),etc.

PRESENT SCENARIO OF MOB VOILENCE : - Our country is witnessing mainly two forms of mob lynching.First,In the name of cow protection vigilantismAnd the other typeAre rumours of kidnapping of children to harvest their organs.In both types of lynchingActs, dozens of people have lost their lives who were innocentAnd poor.

*** Ph.D Psychology, Jai Prakash University, Chapra-841301,Bihar**

Cow Protection/ Cow Terrorism :- In India, one of the first such incidence took place on 10th June 2012 whereActivists of Vishwa Hindu Parishad (VHP)And gowshala sang damaged the factoryAnd burnt the houses of its owners when 25 carcass (similar to that of cows) were found near their factoryAnd were suspected to have killed them.Alwar district in Rajasthan where one Rakbar Khan lost his life. Mohd.Akhlaq in Dadri (UP) on 28th September 2015.The Mewat rape case,a 14-year old girl was raped, he told the media later that the rapists told her that they were going to punish her for eating beef. Year 2016,some Dalit youths in Una,Gujarat were strippedAnd beaten in the name of cow vigilantism.12 year old boy Inayatullah Khan was hangedAlong with Mohd. Majloom byA mob of villagers on the mere suspicion of cattle trading.

In Bihar,2007,10 Nat youths were lynched in Raja Pakar village in Vaishali district,following rumors that they had come to steal.During the communal flare-up last year. ZainulAnsari, 82, was lynchedAnd then burnt byA mobAt Sitamarhi district.Three men were beaten to death byA mob in Bihar on suspicion of stealing cattle in Baniyapur village in Saran district on 19 July, 2019.The spread of cow terrorism cases spans 12 states of India. Between June 2014And December 2015, 11 suchAttacks took place butAfter that, the pace has increased with 2016 recording 12 casesAnd 2017, 9 cases in six months.Most suchAttacks have occurred in North India. In some cases,the mob frenzy was turned into barbaricActsAlso.

Child-Lifting Rumours :- In the last one year, 27 people were killed in 15 cases of lynchings by frenzied mobs provoked by the wild rumour of child-kidnappingAcross nine states- fromAssam to Tamil Nadu.8According toAn investigation carried out by the Indian Express team, there were 9 people in Maharashtra, 2 people in West Bengal, 2 people inAssam, 3 People in TripuraAnd 7 People in Jharkhand who become the victim of mob lynching. Stray incidentsAre occurring hereAnd there.In these incidents, the spread of fake news of child kidnappers on WhatsAppAnd other social media platform.

REASON BEHIND MOB VIOLENCE :- The reason behind commission ofAnAct of mob violence cannot beAttributed to one factorAs many factors can contribute towards such violence rumorsActAsA catalyst for the people who indulge in lynchingActivity.This rumour is spread by words of monthAndAlso by using social media platform.Undoubtedly,A politicalAnd social propaganda brainwash one particular communityAgainstAnotherAnd subsequently capitalizing the gains out of it inA manner of their choice namely, elections.The police were ill - equipped to deal with the situation It is well known that the ratio of policemen to population in India is one of the lowest in the world.The unequipped policeAnd misinformed publicAre responsible for such lynching.

MOB LYNCHINGAND THE LAW :- Presently, there is no special provision or law to punish mob lynching or hate violence in India but thereAre some other provisions related to such violence. The Indian Penal Code (IPC), 1860Also has some proximate sections related to hate speechAnd hate crimes under Sections 153A , 153B, 505, 302 (punishment for murder), 307(attempt to murder), 323(punishment for causing hurt), 325 (punishment for causing grievous hurt) etc.AreApplied because of which the crime is seenAsA n offenceAgainst individualAnd not the community.It is hoped that the new law will soon come upAs Supreme Court is monitoring the issue.

OBJECTIVE :- The objective of this study is to increase our knowledgeAnd understanding of the mob lynching phenomenonAnd examine how it can be prevented.In order toAchieve thisAim,below three research objectives were formulated :-

1. To find out connection between rumor by social mediaAnd mob lynching cases in India.
2. Analysis of what stepsAre being taken by the government.
3. To provide recommendationAnd preventive remedies to reduce such hates crimes.

HYPOTHESES :- Taking intoAccount the objective of the investigation, the below hypothesis were framed-

1. Mob lynching can create fear to people/community for communal riots.

2. Social media playA vital role for rising lynching.

3. Lynching spreads in the name of religion to get personal benefits by political party.

RESEARCH METHODOLOGY :- This research paper is mainly based on the qualitative methodology.Methods of case studyAnd contentAnalysisAre used to examine the lynchings case.

DATA COLLECTION :- The stages of data collection divides into two parts,primaryAnd secondary.IAm using Secondary data that collected from different sources suchAs Journal,Magazine, Books, News-Paper, Website, PublishedAnd unpublished report, expertArticle etc.

RESULTAND DISCUSSION :- Below We Discussed The Lynching Rising Case In India Year Wise :-

Year 2017And Earlier Year - 5 March 2015:A mob ofAbout 7000–8000 people broke intoA prison, draggedA man detained under suspicion of rape out of the Dimapur Central Jail, paraded him nakedAnd beat him to death inA case of vigilante justice **May 2015:** 7 beaten to death in Jharkhand.

5April 2017:Alwar mob lynching was theAttackAnd murder of Pehlu Khan,a dairy farmer from Nuh district of Haryana,Allegedly byA group of 200 cow vigilantesAffiliated with right-wing Hindutva groups inAlwar,Rajasthan,India.

Year 2018 :- May: 2 killed in Tamil NaduAnd 6 killed inAndhraAnd Telangana in separate incidents.

June 2018: -

1. 2 lynched to death inAssam.
2. 2 lynched inAurangabad, Maharashtra.
3. 2 Man lynched to death in MaldaAnd East Midnapore ,West Bengal.
4. 45-year-old beggar woman killed inAhmedabad, Gujarat.
5. 3 lynched to death in Tripura inA single day.
6. 5 lynched in Maharashtra's Dhule district.

July 2018 :-

1. Five men have been lynched byA mob in India's western state of MaharashtraAllegedly over rumours of childAbduction spreading over WhatsApp.
2. 24 persons killed in mobAttacks in 2018;Analysis shows incidents rose 4.5-fold since 2017.

Year 2019 :-

1. Members ofA Muslim family in Gurgaon's Dhamaspur villageAnd guests who had come to visit them were beaten with sticksAnd rods,Allegedly by 20–25 men,who barged into their homeAndAttacked them on Holi eveningAnd demanded that they "Go to PakistanAnd play cricket".

2. Actress Chahatt Khanna's carAttacked by 14 drunk men on Holi in Malad,Mumbai.

3. Biswanath Chariali on 7thApril 2019,A local resident,ShaukatAli wasAttacked byA mob forAllegedly carrying beefAnd forced to eat Pork.

4. Jharkhand Old ox dies, mob killsA manAnd three injuredAre booked for bovine slaughter.

Year 2020 :-

1. February 6,2020-A farmer was killedAnd five others critically injured in Khirkiya village of Madhya Pradesh on suspicion of being child-lifters.Ganesh,the farmer was beaten to death, while five hisAssociates were left critically injured by theAccused.
2. 23 February 2020- North East Delhi riots, causing the deaths of 53 people.

Year 2021 :-

1. While onA raid to recover stolen motorcycles, the Bihar police team was gheraoed by villagersAndAssaulted near Kishanganj police station, Ashwini Kumar (50), died in the scuffle,etc.

Lynching crimes have severe psychological consequences, principally:-Impact on individual victimAnd on the targeted communityAnd effect on other vulnerable groupsAnd on the communityAsA whole. We discussed belowAbout preventive measures, remedial measuresAnd some recommendations for mob lynching.

PREVENTIVE MEASURES :-

1. The State Governments shall designate,A senior police officer,Such Nodal Officer shall beAssisted by one of the DSP rank officers in the district for taking measures to prevent incidents of mob violenceAnd identify Districts, Sub-DivisionsAnd Villages where instances of lynching have been reported in the recent past, say, in the last five yearsAs soonAs possible.
2. The Nodal Officer, so designated, shall hold regular meetings (at least onceA month) with the local intelligence units in the districtAlong withAll Station House Officers of the district soAs to identify the existence of the tendencies of vigilantism, mob violence or lynching.
3. The CentralAnd the State Governments should broadcast on radioAnd televisionAnd other media platforms including the official websites of the Home DepartmentAnd Police of the States that lynchingAnd mob violence ofAny kind shall invite serious consequence under the law.

REMEDIAL MEASURES :-

1. If incident of lynching or mob violence has taken place, the jurisdictional police station shall immediately cause to lodgeAn FIR,withoutAny undue delay, under the relevant provisions of IPCAnd/ or other provisions of law.
2. It shall be the duty of the Station House Officer, in whose police station such FIR is registered, to forthwith intimate the Nodal Officer in the district who shall, in turn, ensure that there is not further harassment of the family members of the victim.
3. The cases of lynchingAnd mob violence shall be specifically tried by designated court/ Fast Track Courts earmarked for that purpose in each district.
4. The victim or the next of kin of the deceased in cases of mob violenceAnd lynching shall be given timely notice ofAny court proceedingsAnd he/she shall be entitled to be heardAt the trial in respect ofApplications suchAs bail, discharge, releaseAnd parole filed by theAccused persons. They shallAlso have the right to file written submissions on conviction,Acquittal or sentencing.

RECOMMENDATIONS :-

1. TheAdministration to ensure speedy justice, registering the FIR withoutAny delay, quashing of the cross-cases whichAdd to further victimization upon theAlready weakAnd poor.

2. National Crimes Records Bureau (NCRB),does not record lynching ,this is strange; given India hasA long history of lynching. In order to understand the current conditionAnd coverage of the offence such data is relied upon.
3. The parliament should follow the guidelines issued but the Supreme Court to draftAnd passA new law to deal with the cases of mob lynching.

CONCLUSION :- Moblynching is fast gaining ground which is quite dangerous forA burgeoning democracy like India.The constitution of India states that India isA secular nation that stands for equalityAnd justice, irrespective of religion. But the recent rise in mob violenceAnd hate crimes - primarily in the form of lynching in the name of religion, paintsA very different picture of India.We will have to concentrate on better digital literacy of the citizens whoAre using social media platforms. TheyAre to be madeAwareAbout the difference between truthAnd fake news.Media should be madeAware of consumingAnd sharing of harmless content.Final thing is socio-political environment has to be improved. If political parties continue to instigate people on the name of religion or cultureAnd government machinery do not perform its duty then mob lynchingAre bound to take place. Hence it is very clear that Indian society is very venerable for rumors. This isAlso responsibility of the mainstream media that it shouldAlways watchful of such contents.InA semi-literate society, it is must that we educate peopleAbout how they should use media. Most of the peopleAre unaware of the consequences of the content theyAre consuming from socialAnd mainstream media.

REFERENCES-

1. Bihar mob lynching:Angry locals beat 3 men to death over suspected cattle theft,19 July/2019,*At- https://www.timesnownews.com/mirror-now/crime/article/bihar-mob-lynching-angry-locals-beat-3-men-to-death-over-suspected-cattle-theft/456184*
2. Chakravorti, Bhaskar,A Lynching in Digital South, The Indian Express, dt. 17.7.2018. Editorial,Times of India, dt. 15.6.2018.JaiSing, Indira, Passing the Buck On Lynching Must End, Economic Times, July 22-28, 2018.
3. Fears mount over WhatsApp's role in spreading fake news,on-Sun 17 Jun 2018 22.00 BST,At - https://www.theguardian.com/technology/2018/jun/17/fears-mount-over-whatsapp-role-in-spreading-fake-news In India,WhatsApp stirs up deadly rumours,date-17 Jul 2018,*At- https://www.aljazeera.com/indepth/features/india-whatsapp-stirs-deadly-rumours-180717073333535.html*
4. Religious violence in India,*At- https://en.wikipedia.org/wiki/Religious_violence_in_India.*
5. Varma, Subodh, Cow terrorism killed 23 since 2014, The Times of India, dt. 30.06.2017.
6. 12 Cases Of Mob Violence & Lynchings In 2019 That PaintA Very Ugly Picture Of 'New India'At- *https://www.scoopwhoop.com/culture/12-cases-of-mob-violence-lynchings-in-2019/2*020 Delhi riotsAt- *https://en.wikipedia.org/wiki/2020_Delhi_riots.*

ഗ★ഢ

THE IDEA OF RIGHTS IN HUMAN RIGHTSAND FEMINISM : WHO ISARGUING WHATAND WHY

Dr. Deepti Acharya*

Abstract: This paper qualitatively investigates the ideas of rights,Argued in Human Rights traditionsAnd the traditions of feminism. The purpose here is to explore that how the idea of rights is conceptualized in these two discoursesAnd what is their coreArgument. The paper discusses the idea of human rightsAsAnArgument for universal equality. The paper claims that to understand the idea of rights, it is essential toAnalyze the core principlesAndArguments offered by the Human Right tradition because globally, theyAre recognizedAs “New” in the discourse of rightsAndAre endorsedAs the ideas of our time. Similarly, the paper discusses the core ideasAndArguments of feminismAs the voiceAgainst gender injustice. Here, the core ideas of feminismAre focused becauseAsA discourse, it has challenged the politics of "obvious differences"And while so doing hasArgued for gender equality. ToAttainA precise understanding of the natureAndArguments of these two discourses the discussion is broadly divided into four sections. The first section introduces the core ideaAnd purpose of this paper. The second section draws the perception of human rightsAnd the third section focuses on theArguments of feminism. The last section provides the concluding remark. To present the ideas, the paper has usedA hermeneuticApproach.

Key Words: Feminism, Human Rights, International Institutions, Women, State.

INTRODUCTION: Political philosophy, while identifyingAnd endorsing rightsAs urgent needs, focuses on some questions thatAre concerning the process of good governance. Fundamentally, the idea of rights seeks to explore that what is Good for human beings. Since identifyingAnd securing something good isA subjective issue, in the philosophical discourses the rightsAs “goodAnd essential”AreArgued for different purposesAnd contexts. Globally, this has encouraged intellectualArgumentativenessAnd has initiated multiple discourses on rights. Since these discoursesAre dominating the processes of good governance, theyAre calledA regime of rights. In many of such discourses, the discourses thatAre globally evolvedAs Human rightsAnd feminismAre significant. This is because the core purpose of these two is to end human sufferingAnd replace them withA condition that can propose "Something GoodAnd Just". In the understandings of Human Rights, the search for something good ends with theAcceptance of egalitarian values. This insists on the universality of rightsAndArgues toAssure rights toAll. Whereas, in feminism, the search for the same nature of goodness starts with theArgumentsAgainst the politics of obvious differencesAnd ends with gender equalityAnd gender justice. Clearly, in these two discourses of rights, the idea of the beneficiary of rights is differently explainedAndArgued,And hence it is essential to discuss them withA separate heading, which the following sectionsAttempt to do.[1]

MAJOR PRINCIPLESAND OFFERINGS OF HUMAN RIGHTS:As liberalism stands for freedom, the idea of human rights stands for equality. The notion, for this purpose, describes rightsAs the question of human dignityAndArgues for the revival of the concept of rights of

***Assistant Professor, Department of Political Science, Faculty ofArts, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara.**

manAsA right of humans, including manAnd woman. The history of political philosophy provides thatAsAn idea it has extensively discussed the concrete struggle for equal rights which has framedA higher set of moral principles. Regarding the philosophical consciousness, they haveArgued rightsAs claims, possessed byA*ll* human beings, simply by the virtue of belonging to humanity. In this sense,Arguments in human rightsAre the language of humanity that hasArgued rightsAs international practices[2]. In the philosophical reference of human rights, rightsAre consideredAs ethical demandsAnd to have some entitlementsAs rights with or even without legislation,As Sen (2004) describes in his concept of welfarism. Ignatieff explains this further. She notes that the idea of rights is expected to protectAnd promote the freedomAnd dignity of every human, to empower the powerless,And to give voice to the voiceless (Ignatieff, 2001). It is to note that for the human rights scholars, rightsAre fundamentally relevant because theyArgue for equal entitlementsAndAssure equality, which isAn unconditionalAnd unalterable right of every individualAs Joe Feinberg maintains. The emphasis on the idea of entitlement of every individual has made the consideration of rightsA global claim for Nussbanm, (1998). Insisting on the idea of global claimAbility, he has introduced the idea of world citizenship, in which heArgues thatA citizen ofA state isA citizen of the worldAs well. Hence,A right that is enjoyable inA state isAlso claimable in other states. Cohen (2011) lends new insights to the ideaAndArgues rightsAs being essential. For him, rightsAre universally owed claims by every political societyAndAre entitled to be given to everybody. He clarifies that the idea of rights has serious concerns for political morality,And hence the implementation of them does not depend on the enforcement of the law. Risse has defined political morality of rightsAs claims, thatAre urgent requirements of individuals. Significantly, in human rights conception, the idea of morality has multiple observationsAnd claims on rights. For instance,According to Gewirth, rightsAre by nature moral, which every person morally ought to have. He presumes that “what is right for one person must be right forAny similar person in similar circumstances” (Gewirth, *The Generalization Principles, 1964).* He maintained that rightsAre unrestricted moral claims. In the thoughts of Kurt Baier, the principle of morality isAllied with the sense of human relevance.AsAn idea, they have identifiedAs self–evident claims in the thesis of Freeman Michael (2012). Habermas hasAttached morality with the judicial conception of rights which noticeably flourish only inAn environment where "purposive" communication flow is unhindered (Habermas, 1969). Indeed, in the notion of human rights, the idea of 'purpose' is concerned with issues of equalityArgued with different conceptionsAnd interpretations.[3] In the theory of Rawls, the conception of rights embraces egalitarian values for equal liberties. In his notion, rights becomeA process of balancing liberties with equalities. HeArgues that the process has featured rights with the notion of justice, which he termsAsA special class of rights. He explains that rights have general intentionsAndAreAccepted with the least contradictions. Globally theyAre endorsedAs being within the reasonable limits of the law to control theArbitrary power of domestic institutions (Rawls, 1993). Since rightsAddress both, individualistic interestsAnd community welfare, David Luban calls them moral pluralism. In human rights traditions, the most powerfulArgument in favor ofAn individual is found in Dworkin's thesis. For him, human rightsAre trumps. He insists that rightsAre required to be defined properly,AsA claim on the right is eitherA right with trumping power or else merelyAn interest (Dworkin, 2000). TheAbove discussion shows that the principles of human rights discourseAre inclusive. Since theArgumentsAre extremely sensitiveAbout human dignityAnd equity, the primary objective is toArrangeAnd justify equality in the context of diversity. This implies that in the tradition of human rights, rights becomeAnAdditionalAttempt to justify rights in

general. It becomes necessary to rediscover rights in their true metaphysical connotationsAnd their realist dynamism,As Jacques Maritain (1948) urges.

RIGHTS IN FEMINIST PERCEPTION: In the discourse of rights, feminism is fundamentallyAssociated with the question of women too have rights. Principally,As liberalism stands for the rights ofAn individualAnd Marxism tookA stand for proletarians, feminism stands for women.AsAnArgument, feminism isAgainst the idea of 'obvious' differences between manAnd woman. ItArgues that the content of rights in natural, Marxist, or human rights is incompleteAnd so the ideasAre failed to understand the nature of inequality prevailing in social, political,And economic life.According to feminist perception, it is essential to realize that inequality does not exist between manAnd man but is between manAnd woman. In feminist beliefs, discrimination is based onA socio-culturalAnd economic power structure that has nothing to do with the biological difference between the sexes (Nussbaum, 2000). Feminism primarilyArgues that womenAre human beingsAndAre equally rationalAs men.As per the logic of rational being, they must be entitled to the same rights of libertyAnd self-determination, which males usually claims for themselves (Mary Wollstonecraft:A Vindication of the Rights of Women 1792). In continuation with this idea, Simone de Beauvoir, insists that women should be entitled to the same rightsAnd privilegesAs men because theyAre "human beings". Feminism urges that to confer rights to women, the idea of society should be organized on the principle of 'reason'. It should suspend the ‘accidents of birth’, suchAs sex should be declared irrelevant (J.S. Mill& Harriet Taylor: Subjection of Women ([1869] reprinted in 1970). Significantly, with the emergence of new versions,A demand for reconstruction of society which called in favor of women became more rigorous, which is ignored in other discussions of rights. To point to the real situation of womenAnd to confer rights to them, feminism insists on the re-conceptualization of the ideas of liberalism, socialism,And Marxism, in favor of women. To use the popular terminologicalAspects of rights, feminism has used terms like liberalism, socialism,And Marxism. In this reference, radical feminism has radical ideasAndArguments thatAre further characterizedAs psychoanalytic, existentialism, multiculturalism,And global feminism.[4] It is noted that the development of the idea has notAffected the basicArgument. InAll the versions,Arguments for rightsAre women-centric.Additions with the versions (waves)Are simply reflecting the requirement of the timeAnd contextAs the first wave of feminism,Advocates for the liberation of women in civil life which is knownAs liberal feminism. The second wave hasAdopted Marxist'sArgumentsAnd demanded economic independence of women, called Marxist feminism,And the third wave is known for its radical view thatArgues for social freedom.[5] The firstArgument of feminism is developed under the influence of liberalism. Due to its influence, feminists insist on independenceAnd equal political rights. Primarily, it has identified itself with the motto of Equality First (Humm, 1992: 43), whileArguing for liberty, equality,And fraternity, it emphasized thatAll types of discrimination should beAbolished.[6] With its liberal roots, it has rejected Rousseau's traditionalist view that womenAre inferior.AsAn idea, it insists on equal pay, equal educational opportunities, legal independence, freedom from contraceptionAndAbortion,And most importantly right to define her sexuality so that she can experienceAnd enjoy full identityAnd freedom. Regarding women’s liberation, Marxist feminism hasA remarkably different view.According to Marxist feminists, toAttain liberation for women it is essential to overthrow capitalismAs it exploits womenAs wage laborers (Marx in Communist Manifesto). ItArgues that women will be free only when she will be free from the capitalist state. Under this belief, Marxists tried to integrate women into their class struggle. For this purpose, they included women’s issues in their struggleAgainst

capitalism. They placed the question of women's liberation in the wider context of the transformation of the mode of employment. In Engel's view, inequality will disappear when women will be involved in paid employment. Feminist Marxism, in socialist trends, emphasized the economicAspects of patriarchy, in its view, patriarchy operates in tandem with capitalism.According to them, capitalism is interlinked with systems of oppression; in the family system, it creates gender subordinationAnd class inequality. For radical feminism, the reason for women's suppression does not lie in the political or economic systems, but is due to the patriarchal social structure.Accordingly, it is not capitalism that is to be thrown but patriarchy that should be overthrown. Significantly, radical feministsAre primarily concernedAbout equality in familyAnd personal life. Here, equality is defined in terms of childcareAnd other domestic responsibilities. It points out the urgent need forA woman is to escape from cages of forced motherhoodAnd sexual slavery. For radical feminism, freedom from coercive sex which includes pornographyAnd prostitution is the real right of women. Hence, the immediate right ofA woman is to have control over her body. Clearly, in radical thought, womenAre wholly identified with sexual victimizationAs Brown points out. In this regard, MacKinnon's viewsAreA stepAhead. She explains that the private is politicalAnd therefore the demand for the rights of women must beArgued for both, including the notion of publicAnd the private. In her view, the right to have equal opportunities in politicsAnd the economy must be consideredA public right. However, rightsAs control over her own body, freedom from coercive sex, forced motherhood,And freedom in the choice of marriageAre claimedAs private rights.

CONCLUSIVE REMARKS: The discussions mentionedAbove presents that feminism has somewhat the same limitations thatAre being realized in Marxism. Their observations of social, political,And economic suppressionAre not incorrect. However, the personal rights prescribed by them do not createA society, instead make womenAn individual, stoodAlone, merely for self. Indeed, there isA requirement of reforms, in the present structure of rights, so that the benefits of rights can be enjoyed by those whoAre otherwise sidelined. Given this reality, the major challenge of feminism is that it has defined the subjection of women to control the "political" in privateAs well, which is problematic to some extent.Arguing rights for women isA requirement of time, but generalizing each womanAsA victim of patriarchyAnd Stateness is nothing but exaggeration, which is required to be correct. Likewise, the idea of good is confusingly synthesized by human rights scholars. How equality isAdvocated for is impracticalAnd is utopian toA larger extent. StatingAll essentialAsA claimable right is unrealAnd expecting beyond possibility. It has ignoredA fact that rightsAre notA simple matter of guarantee. However, theAssurance of the rights may effective only ifAn individual can enjoyA rightAsA right.At the same time, it is important to see if the resource on which one hasA claim of right isAvailable? The question is howA state can takeA policy decision on the distribution ofA resource that has clear dominance of nature. Even in the egalitarian beliefs, equal distribution of the limited resource isAn unsolved problem, the calculation of benefit will persistently continue to beArgued. The real worry is how to decide on the preferencesAnd how to justify the distribution withAcceptable rationality. The confusion is well defined by Garrett Hardin (1968). To present the problem he has usedA metaphorAndArgues that the world is likeA lifeboat unable to takeAll those who want to be saved. Some peopleAre in itAnd othersAre in the water wanting to get in. IfAccess is not restricted, everyone will sink,And no one will benefit. It is to note that even with the limitation of universalAssurance,Arguments made by DrowkinAreAcceptable. WhileArguing for the trumping power of rights, he has initiated

thatAt least some rights must be treatedAnd confirmedAs equal (evenAfter realizing that conferringA rightAsA trump is difficult).

ENDNOTES :-

1. It is to note that some of the discussionsAre inspired by the Ph.D. research done by theAuthor.
2. Since the concept of universal equality isA part of the global regime, it is consideredAs new in the discourse of rights, Henkin (1981) has identified themAs the ideas of our times.
3. AsAn intellectual contribution, human rightsAsAn idea is developed in four categories of scholarsAs Marie-Bénédicte Dembour describes. First scholarsAre "natural scholars" who perceive human rightsAs given. The second school has "deliberative scholars" whoAgree on the rightAs given. The third school is called "protest scholars" who fought for rightsAnd the fourth school is called "discourse scholars" who talkAnd discuss rights in general (Dembour, 2010).
4. Psychoanalytic, existentialism, multiculturalism,And global feminismAre not discussed in detailAs they may dilute the chief objective of the discussion.
5. For details see: Freedman (2002), Feminism, New Delhi: Viva Books Private LimitedAnd Marysia Zalewski (2000), FeminismAfter Postmodernism, London: Routledge.
6. The influence of theAmericanAnd French RevolutionAppears on liberal feminismAs their demands match the principle demands of these two revolutions.

BibliographyAnd References:

1. Beasley, C. (1999), *What is Feminism*? London: Sage.
2. Beitz, C. R. (2009). *The Idea of Human Rights.* New York: Oxford Press.
3. Ellies, E. (2005). *Kant's Politics: provisional theory forAn uncertain world.* New heaven: Yale university press.
4. Gewrith,A. (1984). *The Epistemology of Human Rights.* Social PhilosophyAnd Policy, 1-24.
5. Hardin G. (1968). *The Tragedy of the Commons*, Sciences 162, no 3859, pages 1243-1248.
6. Hoffman, J. (2001). *GenderAnd Sovereignty.* Basingstoke: palgrave.
7. Ignatieff, M. (2001). *Human RightsAs PoliticsAnd Idolatry.* Princeton: Princeton University.
8. Nozick, R (1974).Anarchy, State,And Utopia. Oxford: Blackwell.
9. Nussbaum, M. (2000). *WomenAnd Human Development: The CapabilitiesApproach.* Cambridge: Cambridge University.
10. Rawls, J. (1999). *The Law of peoples.* Cambridge: Harvard University Press.
11. Ronald, D. (1984). RightsAs Trumps. In J. Waldron, *Theories of Right.* Oxford: Oxford University.

REFUGEESAT HOME : THE CRISIS OF REVERSE MIGRATIONAMID PANDEMIC

Dr.Anil Kumar Teotia*

ABSTRACT :- The strict lockdown to contain the spread of the coronavirus led migrant workers towardA crisis. They lost their un-contracted jobs, pays, rented houses,And food. In thisArticle, the researcher has elaborated on reverse migration in IndiaAmid lockdownAnd its social, economic,And educational consequences. One of every four migrants had to walk to their native place;Almost half of them had to skip two meals per day. The economic downfall of the migrants was drastic. They had no money to buy even essentials. This lockdown created the situation similar to the partition of IndiaAnd Pakistan when people were migrating on foot with their belongings on their headAnd children in hands. Migrants of the nation were treatedAs refugees in their own country. Their right toA dignified life was compromised. They lostAlmost everything, including the life of dear ones. The educational lossesAre less visible now, but these will be visible in very drastic ways with time. It is likely that the children of migrant families, whose presence in schools onceAgain is doubtful, will be having the worst learning outcomes.

KEYWORDS :- Migration; Lockdown; Refugees; EconomicAnd Educational risks.

INTRODUCTION :- The spread of the novel coronavirus, popularly knownAs SARS-CoV-2, originated from Wuhan, China (Xiang etAl., 2020). The virus has caused the deadliest disease ofAll time knownAs Covid-19.All the nationsAre taking steps to contain this virus in their respective territories. India tookAll measures that could help break the chain of transmission of the virus throughAll the waysAvailable. These famous means involveAggressive testing, quarantining the suspected people, restricting the movement of people, imposing heavy lockdownAnd curfews.

The prime minister of India, Mr. Modi,Announced the lockdown for the entire nation on the 25th of March 2020.All theActivities in the nation (except the essentialActivities) were suspended indefinitely. The drastic measuresAre taken by the state, which seems to be essential, severely impacted the migrants of the country. Several migrant labourers lost their jobs due to the closure of industriesAnd then lost their daily wages, whichAre essentially necessary for their survival in the city. This led migrants to stand outside inA city with no houseAnd no source of income. They had no choice of going back home becauseAll the borders were sealed,And movement of the people was notAllowed. These migrants had to opt forAn extraordinary step to return to their hometown, i.e., returning on foot. In thisArticle, the Researcher has elaborated on reverse migrationAmid pandemicsAnd its various consequences.

OVERVIEW OF MIGRATION :- The movement of people from their place of residence is called migration. The migration can be internal (within-country) or international (across nations).As per the data released in the 2011 census, "India had 45.6 crore migrants in 2011 (38% of the population) compared to 31.5 crore migrants in 2001 (31% of the population). Between 2001And 2011, while the population grew by 18%, the number of migrants increased by 45%. In 2011, 99% of total migration was internal,And immigrants (international migrants) comprised 1%"(Census, 2011). The migration can be divided into four different ways based on destinationAnd origin. TheseAre rural to rural, rural to urban, urban to urban,And urban to rural.

*** Principal, District Institute of Education & Training (SCERT), Dilshad Garden, Delhi, 110095, India**

As per the census of 2011, “there were 21 crore rural-rural migrants who formed 54% of classifiable internal migration (the Census did not classify 5.3 crore peopleAs originating from either rural or urbanAreas). Rural-urbanAnd urban-urban movementsAccounted forAround eight crore migrants each. There wereAround three crore urban-rural migrants (7% of classifiable internal migration),And intra-state movementAccounted forAlmost 88% ofAll internal migration (39.6 crore persons)".As per the report of 2011, Uttar PradeshAnd Bihar were the states of most prominent inter-state migrants. On the other hand, DelhiAnd Maharashtra were the largest receivers.

The migration of people from one place toAnother isA global phenomenon that has various supportive reasons behind it,And theseAre inAddition to economic factors. The other factors, including social, political, environmental, educational, health,And cultural, workAs pullAnd push forces of migration. Some significant concrete reasons for migration include unemployment in certainAreas, inadequate educationalAnd medicare centers in ruralAreas, povertyAndA lower standard of living, etc. PrevalentAmong these reasons include marriagesAnd employment.As per reports, “83% of the females migrated for marriage (Census, 2011)”. Marriage is the primary reason for women's migration in both urbanAnd rural parts of India. The case of migration in India hasAlso been reported internationally.According to the International Migrant Stock 2019 report (by the Population division of the UN Department of EconomicAnd socialAffairs), India has one of the world's most prominent migrants.

Article 19 (1) (e) of the Indian constitution provides citizens the right to settle inAny part of the nation (subject to reasonable restrictions) (*Article 19 of Constitution of India | Law Column*, n.d.). However, people migrating for work face many challenges, including lack of social security, health benefits, safety standards,And poor socio-economic status.

The migrant workers in the country have faced many difficultiesAmid the covid-19 pandemic. The COVID-19 pandemic triggered reverse migration withA very high magnitude. It is said to be the second-largest mass migrationAfter partition. With the standstill ofAlmostAll industries (except essential) by the force of lockdownAnd curfews, migrant labours lostAll their paysAnd consequently faced food deficiencyAnd uncertaintyAbout the future. Many migrant workers think of rolling back to their native place withA hungry stomach, withoutAny means of transportAvailable (because of the heavy lockdown imposed). However, with the increased intervention of courtsAnd NGOs, StateAnd central government started organising vehicles.

REFUGEESAT HOME :- The government takes drastic, yet necessary, measures to contain the spread of the deadly virus became deadly to migrant workers of the nation. These drastic measures made migrant workers refugees in their own country. The imposition of the lockdownAnd suspension of industrialActivities left these workers with no jobAnd money inA city they do not call their own. The lack of moneyAnd insecurityAbout the future forced them to return to their native place; they find this is the only optionAvailable to them. The lockdownAnd pandemic hitAll individuals with the same rulesAnd regulations, yet the pain hit hardest to the migrant labourers.

Headlines like “The 2nd partition”And “India is on the road” were started running over social mediaAnd television channels. Many critics have compared migrants labour going home on foot with the India-Pakistan partition in 1947. The people having wealth were sitting in the houses of the cities while people who have no wealth (migrant labours) have to be on the road that had no direction, with no leader,And withoutAny facility. They only had theAim to return toA place they call ‘home.'

As per the estimates of the Gaon Connection Survey,A*round 23% of the migrant workers walked on their feet to their home during lockdown; the police beatAround 12% of the migrant labours,And 40% of them faced scarcity of food* (*Almost Every Fourth Migrant Worker Returned Home on Foot during the Lockdown - Gaonconnection | Your Connection with Rural India*, n.d.). The migrants have to face the situation of refugees in their country that provided certain rights to them. Most importantAmong these rights include the right toA dignified life. Unfortunately, the dignities of these migrant workers were compromised,And we had witnessed many situations when the right to life wasAlso suffered. We have examples of people dying during the transition from the workplace (city) to home (village). To enlistA few, we have the case of *Ranvir Singh,A 39 years old man who used to work in DelhiAnd was returning home because of lockdownAnd financial constraints, collapsedAnd diedAfter walking nearly 200 km from Delhi to Madhya Pradesh*And the case of *Jeeta Madkami,A 12 years old daughter of migrant labour, who diedAfter walking nearly 150 km from Telangana to Chhattisgarh*.According to *thejeshn.com*, "209 migrant workers lost their lives due to exhaustionAnd starvationAsA result of continuous walking during the lockdown" (*Non-Virus Deaths | Thejesh GN*, n.d.).

In the last few months, we have observedAn extremely painful migration of lakhs of people. These people have suffered thousands of hardships in going back to their native places; they have lost everything (including deaths of near ones) in the most extensive lockdown ever.

HEALTHAND ECONOMIC DOWNFALL :- Most Migrant WorkersAre in the informal sector, where theyAre paid less than the formal sectorAnd have zero to very little social security. We recall the message given by our honourable Prime Minister, "Do not cut salaries or fire workers during the lockdown," i.e., the governmentAskedAll the publicAnd private companies not to cut the salaries of their staff. However, the case ofA migrant worker is unique in the sense thatA significant share of them is un-contracted labour. There is hardlyAny contract between labourAnd service taker. This snatchesAll possibilities from them of not getting exploited.

The movement of people was suspended, soAll the informal ways of bringing vegetablesAnd fruits from outer parts of the city came toA halt. It impacted the general price of the essential commoditiesAs well. On the one hand, the migrant workers had no jobAnd thus no money; on the other hand, they were hit by the price rise of essentials.

Rajesh, 29 years old rickshaw puller staying in Delhi (originally from Western Uttar Pradesh) said, *my landlordAllowed me to stay in the room without rent for the period of lockdown, but I have no money to eat. The prices of the essentials were touching the moon (very high). The potato was being sold for Rs 60/kgAnd tomato 80/kg. I did not have money to buy vegetables. My family is eating boiled rice with salt only*.According to Gaon Connection,A survey found "36 percent migrant worker respondents had to skipAn entire day's meal when stranded in the cities during the lockdown. Over 40 percent reportedly had to skip one mealA day,As they did not have money toArrange for food".

The virus hit the migrant worker's pay. The economic downfall of the migrants was drastic. They had no money to buy even essentials. While returning to their native places, many migrants workers were found with their shoes or slippers in hand. What we realised was *"the biggest discomfort was not of fatigue of walking so much, but the shoes or slippers they had were not meant to be walked so much."* They had barelyAny money to purchaseAnother shoe or slipper for themselves.

ExpertsAre in favour of providing some financialAssistance to these migrants so that their conditionsAre improved to some extent. These migrants have the least financial securityAndAre on the edge of marginalisation. The package of ration cards may include not only the eatables butAlso soaps, detergents,And other everyday essentials. Next, come the educational risks related to the present migration crisis. Let us haveA detailed discussion over it.

EDUCATIONAL RISKS :- The closure of schools due to pandemicAnd lockdown measures haveA drastic impact on the learning level of students. The downfall in the educationalAchievement rate of children belonging to migrant families is going to be visible very soon. The children belonging to migrant familiesAreAt the risk of complete disconnection from education. These kids have little to noAlternatives for education (suchAs online educationAnd mobile-based education). Due to these lockdown measures, the families returning to their native place will not return soon orAt least with children. ThereAre more chances of skipping multipleAcademic years by these kids withAlmost no curricular learning in theAge-appropriate grades. The children enrolled in schools will be dropped out. The overall learning loss to these kids will cumulate over the yearsAnd willAffect their employability in the later stage of life. It is likeA vicious circle in which this generation will be trapped.

The return of these kids to schoolAgain is going to be very difficult. In general, theAchievement level ofAll students due to prolonged closure of schools,As indicated byAzim Premji Foundation's report 'Learning Loss due to Pandemic,' will be severe. So, the children of migrant families, whose presence in schools onceAgain is doubtful, will be having the worst learning outcomes.

The movement of the families from cities to their native places is taking their kids to be in touch with the schools. The kids of migrantsAreAmong the most vulnerable category. The downfall in the economic conditions, increasing food insecurity,And emotional distress will be directly correlated to enrolment rates of kids. Girls of these migrants' familiesAreAt greater risk of slippingAway from the reach of educational institutions because they will be the first to be removed from the schools. However, the boys will beAt the risk of jumping into the world of works. The poor economic conditions of the migrant families will push these children to contribute to the running of families. This child labour hasA severe impact on the learning outcomesAnd makes students fall further behind. "Lifelong learning prospectsAreAt stake, but soAre healthyAnd inclusive societies thatAre in the interest of everyone. Further, the digital divide, language barriers,And limited personalized learning support further barriers to migrant students' participation in online lessonsAnd distance learning.At the same time, migrantsAre receiving inadequate psychologicalAnd emotional support duringA tough time" (*CoordinatedAction Needed for Migrant StudentsAmid Pandemic | UNESCO Bangkok*, n.d.).

The experts believe that the educational department of different states has to coordinateAmong themselves to be tracedAnd put back into the schoolsAs soonAs possible.As school reopens, some special learning centres may be opened for the migrant children followingAppropriate covid-19 behaviour. This will help in recovering the damage caused by the lockdownAnd the pandemic.

The fact that 'internal migration isA pre-requisite for the economic growth ofAny nation' can never be forgottenAnd can never be undermined. The lack of social protection, enumeration, entitlements, decent work,And recognition in destination centres (migration destinations) of migrant workersAre the points of hot debateAmong social workersAnd policymakers. The current COVID-19 crisis has made the picture more visible toAll. It isA time to makeAndAmend the

current labour protection laws to strengthen the rights of migrant workers of the nation. The happenings of the lockdown may be servedAs learning toAll of us.

CONCLUSION :- The lockdownAnd curfews imposed in the country hit the migrants the hardest. The closer of industries resulted in the job fireAnd paid cuts, which led migrants to stand outside inA city with no houseAnd no source of income. When migrants thought of returning home, they had to be on foot becauseAll the vehicles were notAllowed to operate. These migrant workers were treatedAs refugees in their own country. Their dignities were compromised,AndA situation similar to the partition of IndiaAnd Pakistan was created. Many people were bitten by police forcesAnd were stopped on the borders of various districtsAnd states.

The economic condition of these labourers was flawed because the majority of them work in the informal sector with no social securityAnd contracts. The price rise hit those who tried to survive in the lockdown in the local markets. The economic downfall of the migrants was drastic. They had no money to buy even essentials.Although the educational risks involved with the reverse migrationAre often overlooked, we have elaborated on how this lockdown resulted in migration will negatively impact the learning outcomes. We haveAlso incorporated some suggestionsAt various places to reduce the loss incurred to these workers.

REFERENCES

1. *Almost every fourth migrant worker returned home on foot during the lockdown - Gaonconnection | Your Connection with Rural India*. (n.d.). Retrieved May 30, 2021, from https://en.gaonconnection.com/almost-every-fourth-migrant-worker-returned-home-on-foot-during-the-lockdown-33-want-to-go-back-to-cities-to-work/
2. *Article 19 of Constitution of India | Law column*. (n.d.). Retrieved May 31, 2021, from https://www.lawcolumn.in/article-19-of-constitution-of-india/
3. Census, 2011, Office of the Registrar General & Census Commissioner, Ministry of HomeAffairs.
4. *CoordinatedAction needed for migrant studentsAmid pandemic | UNESCO Bangkok*. (n.d.). Retrieved May 31, 2021, from https://bangkok.unesco.org/content/coordinated-action-needed-migrant-students-amid-pandemic
5. *Non Virus Deaths | Thejesh GN*. (n.d.). Retrieved May 30, 2021, from https://thejeshgn.com/projects/covid19-india/non-virus-deaths/
6. ziang, Y. T., Li, W., Zhang, Q., Jin, Y., Rao, W. W., Zeng, L. N., Lok, G. K. I., Chow, I. H. I., Cheung, T., & Hall, B. J. (2020). Timely research papersAbout COVID-19 in China. In *The Lancet* (Vol. 395, Issue 10225, pp. 684–685). Lancet Publishing Group. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(20)30375-5

The Portraits of Women in Keats's early poems

Dr. Nikhilesh Dhar*

The short span of Keats's life seems to have offered little scope for makingAcquaintances with quiteA few women outside his family circle,And his letters bear out the truth of suchA limited range of his experience with women. From his biography it may be seen that the number of women in Keats's circle is less than the number of portraits of women created by him in his works. Many of his long lettersAre completely void of womanly context. But in his poems women characters predominate,And in only one of his poetic romance i.e. ' Endymion' we comeAcross more thanA dozen women characters, namely, Leda, Niobe, Peona, Dian, Latono, Proserpine, Cressid, Juliet, Hereat,Ariadne, Cynthia, Queen Venus, Mother Cybele,ArethusaAnd some other unnamed women personalities. Indeed, it may be said that Keats has composedAlmost no poem of importance withoutA feminine figure being presented somewhere inAt least one of the lines. Even in his 'Ode toAutumn' there is the implicit comparison of the season withA woman. ThereAre in this way cases ofA disparity in Keats's lifeAnd poetry — the life he livedAsA young man was much more prosaic than the life he created in the world of his poetry. The essentially romantic temperament of the poet mayAlso be discovered from theAbove observations regarding the role of women in his careerAnd poetry. That Keats Was notA womaniser like Byron in his life is, of course,A known fact to us. ButAt the same time this shows that the world of his poetry isAlways filled with the ethereal presence, sweet fragrance ofA large number of womanly shapes from goddesses to nymphsAnd from little girls to old women.

The poems of the early phase (written in the years 1816And 1817) except 'Endymion'Are generally short in nature, but in eachAnd every poem we find women charactersAppearing in various roles.Among these characters someAre Keats's own creations;Again, figures like Venus, Diana or Dido have stepped into his world from Mythology. The long descriptive poem 'I stood tip-toe uponA little hill'(completed December 1816) was " suggested to Keats byA delightful summer – day,As he stood beside the gate that leads from the Battery on Hamstead Heath intoA field by Caen Wood".[1] InA dream - like state the poet visualizes the maidenAs the soft rustle of her dress fansAway the dandelion's down. The innocent maid is half-smilingAnd she softly treads on his dreams. The poet is deeply moved by the simplicity of this girlAnd wants to touch her wrist for one moment. Here Keats does not glorify women, rather he portrays this sectionAsA counterpart to menAnd thus he writes :

Young Men,And maidensAt each other gaz'd
With hands held back,And motionless,Amazed
To see the brightness in each other's eyes;
('I stood tip – toe…', 231-233)[2]

Both menAnd womenAre enjoying the grace of love here.

In the poem 'Calidore' (February, March 1816) young Calidore isAwakened from his state of reverieAndAbsorption by the sound ofA trumpet. He gets intoA castle where he meets two damsels whom he warmly kisses. Calidore image shows Keats'sAttitude towardsA life of heroicActionAnd chivalric sentiment. Really he isAbsorbed inA world of romantic imaginationAnd thusAll ladies whom he creates or meets in his poetic world become idealized beings ofAn imaginary world. The epithets he uses for his ladiesAre 'smiling', 'lovely', 'sweet-lipped'; it seems that in Keats's world-As is evident in the poems of his early phase- women were ethereal figures untouched by the hard reality. It is worth mentioning here that in his early childhood he identified beauty with divinity- When I wasA Schoolboy I thoughtA fair - womanA pure Goddess, my mind wasA soft nest in which some one of them slept though she knew it not- I have no right to expect more than their reality. I thought them etherealAbove Men [3]

***Assistant Professor, Dept. of English, Onda Thana Mahavidyalaya, Bankura, West Bengal.**

Those thoughts reflect his fanciful idea thatA beautiful woman isA pure goddess. Thus, like their creator who roamsAbout inA world of 'The songs of Innocence', Keats's women in his early poetryAre the typifications of the pre - lapserian Eve of Milton who is to be tempted by Satan. The poems 'To Some Ladies' (summer 1815)And 'On ReceivingA Curious Shell'(Summer 1815) continue the tradition of the eighteenth century sentimental poetry in both styleAnd substance.AnnAnd Caroline Mathew sent KeatsA dome– shaped shell from Hastings. The poet renders imaginatively the light, mazy footsteps of the girls on the mountainsAnd on the sea–shore :

And now!Ah, I see it- you just nowAre stooping
To pick up the keep-sake intended for me.('To Some Ladies', 15 - 16)

The 'keep-sake' or the shell bears the mark of disinterested friendship,And of the beauty of nature,And it becomes for himA cherished symbol,A source of rare happiness. It may beAssumed from the tonal response of these poems that Keats has not yet suffered for the sake of women; rather he has seen themAs the source of loveAnd pleasure. The sonnet 'To [GeorgianaAugusta Wylie,Afterwards Mrs. George Keats] (14 February, 1816) was written by KeatsAt the request of his brother George,And sentAsA valentine to GeorgianaAugusta Wylie. The 'thou' of this poem (possibly Mary Frogley) is imagined in three diverse roles -A goddess (the tenth Muse, 'twin sister of Thalia'), the Maiden Knight of Chastity (the reference is to Book III of the Faerie Queen in which Britomart rescuesAmoret from the Enchanter Busirane who held her in his castle underA spell),AndAn enchantress who will never-

...spill/ Blood of those whose eyes can kill. [4] In the first part of the poem Keats describes her physical beauty -- her lovely countenance, humid eyesAnd– Of thy dark hair that extends/ Into many graceful bends [5]

Traditionally, womenAre representedAs the repository of lovelinessAnd sweetness. KeatsAlso follows the beaten trackAnd portrays the women folkAs the embodiment ofAll fairness. From the second part of this poem we get hints of Keats's love for ChivalricAction.

The poem beginning with 'Woman ! When I behold thee flippant, vain,' (March 1816) expresses two contrastive pictures of women folk -- on the one hand, theyAre flippant, vain, inconstant, childish, proudAnd full of fanciesAnd on the other, theyAre meek, kindAnd soft. KeatsAdores the second type of ladies -A symbol of shelter which he longs for. The details - light feet, dark violet eyes, parted hair, white neck, creamy breast suggestAn unearthly creature who remains dormant in KeatsAnd who casts her shadow in every womanly shape Keats creates. He cherishes thisAngelic visionAnd honestly records the helplessness of the viewer under the spell of irresistible beauty : Who can e'er forget so fairA being ? ('Woman ! When I…vain', 29)

He himselfAnswers : ...In truth there is no freeing/ One's thoughts from suchA beauty;
('Woman !... Vain',36 -37) The poet confesses that worship of beauty is his passionAs wellAs obsession.

Another sonnet written in December 1816 'To G.A. W.' presents Georgiana who inspires Keats's deepestAffectionAnd respect. In 1816 Georgiana was onlyA girl of fourteen,And the sonnetAddressed to her brings out her youthful charmAnd grace. Here Georgiana is first seenAsA nymph. The young girl with her supreme lovelinessAnd grace seems to meditate between the two spheres, the humanAnd the divine.

Keats began his Endymion on 18April, 1817. Later on he had writtenAbout the story of this famous poem to his sister Fanny on 10 September, 1817- Many yearsAgo there wasA young handsome Shepherd who fled his flocks onA Mountain's Side called Latmus — he wasA very contemplative sort ofA PersonAnd lived solitaryAmong the treesAnd plains little thinking - that suchA beautiful CreatureAs the Moon was growing mad in Love with him - However so it was ;And when he wasAsleep on the Grass, she used to come down from heavenAndAdmire him excessively fromA long

time ;AndAt last could not refrain from carrying himAway in herArms to the top of that high Mountain Latmus while he wasA dreaming …[6] The poem consists of four BooksAnd each Book contains nearAbout 1000 lines. Briefly, this poem isAbout love in which the hero Endymion, bewitched by the Vision ofAn exquisite dream - maiden, languishes in unrequited loveAnd through various experiences in course of his wanderings, learns that the goddess of his dream is really Cynthia. His quest is fulfilledAnd he is finally united with his be- loved moon – goddess. The moon - Endymion's beloved —Appears in three forms –As Cynthia(the perfect embodiment of sensuous beauty), the Indian Maiden (representative of the realities of the earth)and the moon (symbolic of the 'Mystery' of the world). These three shapesAre the representations of beauty. There isA unity between Nature, HumanityAnd the Higher Spiritual EssenceAndAll theseAre one.

In book 1 Endymion becomes desolateAlthough he has obtained glimpses of the beautyAnd has even enjoyedA sensuous contact with that ideal form of beauty. Endymion describes loveAs the 'orbed drop of light'And expresses his conviction that his immortal longingsAlone would release his mind from the gnawing thoughts of selfAnd lead him to the path of salvation. Book 11 opens with the glorification of love. In his pursuit of the spirit of ideal beauty Endymion has been journeying in uncertain ways, through wilderness,And woodsAnd mossed oaks, counting his woe-worn minutes. He is tornAnd shatteredAnd he can no longer put up with his melancholic situation. He expresses his desire to snatch his sweet-heart from the heaven. ButAt the same time he isAware of his limitations. So he wants to have her in his dream. His wish is fulfilledAnd in his dream he meets his ever – cherished dream-girl. They make love, long time they lay fondlingAnd kissing. Endymion wants to know the real identity of his beloved. He is fully engrossed in her beauty:

> Those lips, O slippery blisses, twinkle eyes,
> ('Endymion', Book.11,758)

The fair maid reciprocates to his love, but she cannot uplift him to the starry heights. She loves Endymion withAll her life-

> I love thee ,youth, more than I can conceive;
> And so longAbsence from thee doth bereave
> My soul ofAny rest…………… ('Endymion', Book. 11,774-776)

Keats masterly portrays the love betweenA mortalAndAn immortal. Both of themAre love-sick. The Moon-Goddess goesAway from EndymionAnd heAgain becomes sad. He meditates over his fair-maidAnd urges her not to beAfraid.

In book 111 Endymion's environment changes from the subterranean to the subaqueous. The book narrates how with the help of Endymion Glaucus is released from the Circe's spellAnd reanimated ScyllaAnd other lovers drownedAt sea. This general resurrection is celebrated byA 'glorious revelry'At Neptune's palace. EndymionAlone is without his partnerAt this festival, but his 'inward senses' receiveAn ethereal message from his elusive love:

> Dearest Endymion I my entire love !
> How have 1 dwelt in fear of fate : 'tis done —
> Immortal bliss for me too hast thou won.
> Arise them I .... ('Endymion', Book.III,1022-1024)

Endymion feels inspiredAnd happy.

In book 1V Endymion has discovered the Indian maidAnd fallen in love with her. His love is irresistible. But he is torn by the thought of treachery to the Moon-Goddess. Endymion enjoys moments with the Indian lady. He suffersA bewildering tensionAnd perplexity.At one point he loses both earthlyAnd heavenly mistresses, when on earth the maiden with whom Endymion vows to live happily refuses him. Endymion undergoesA stupefied penance in the 'Cave of Quietude'.At the end of his trials, the Indian Maid is transformed into his ethereal mistress, the Goddess of the Moon. Ultimately,

Endymion, effectively spiritualized byAll his sufferings, is permitted to join her, leaving his sister Peona in the gloomy wood to ponder on these events.

Here PeonaAs the sister of Endymion seems to be the portrait of Keats's sister Fanny Keats. Peona is Endymion's confidence. Keats may have derived her name from Paeon, physician to the Gods(Homer's Iliad,V401-2,899-901).To Endymion Peona is likeA good spirit ministering in the depths of night toA troubled sleeperAnd changing the course of his dreams. In Keats's personal life, he was muchAttached to his sister FannyAnd Keats used to write every detail of his life to her. Fanny was likeA friendAnd guide to her elder brother Keats. In this poem Peona serves the same role ofA friendAnd guide to Endymion. We find that Endymion's human passion for the Indian MaidAnd the imaginative longing for the Moon-GoddessAre into fearful conflict. Finally, Keats resolves the conflict by transforming the human into the immortal mistress.

It is interesting to point out that Keats's conception of the hero's dream- vision was perhaps, most strongly influenced by the recollections of Shelley's 'Alastor' (1816) to which his own poem reads in certain respectsAsA reply. In this contextA. C Bradley comments- The hero, before the coming of the vision, has of course,A poetic soul, but he is not self-secluded, or inactive, or fragile, or philosophic;And his pursuit of the goddess leads not to extinction but to immortal union with her. It does lead, however, toAdventures of which the idea evidently is that the poetic soul can only reach complete union with the ideal (which union is immortality) by wandering inA world which seems to deprive him of it; by trying to mitigate the woes of others instead of seeking the ideal for himself;And by giving himself up to love for what seems to beA mere woman, but is found to be the goddess herself. It seemsAlmost beyond that the story of CynthiaAnd Endymion would not have taken this shape but for 'Alastor'.[7] Two Romantic poets ShelleyAnd Keats deal with the common theme in two different ways. Shelley's 'Alastor' or 'The Spirit of Solitude' deals with loveAsAlmostA narcissistic pursuit which ends in the illusion of fulfillment. The poet — pilgrim could have his ecstatic communion either in dream or in his trance — like state of death :

……..A vision on his sleep
There came,A dream of hopes that never yet,
Had flushed his cheek. He dreamedA veiled maid
Sat near him, talking in low solemn tones
Her voice was like the voice of his own soul
Heard in the calm of thought,[8]

But in Endymion Keats shows his maturity of understanding the dialectics of poeticAspirationAnd the incompatibilities of life. That is why in Keats's vision the Indian Maid serves to reconcile, inA way, the paradoxesAnd contradictions ofAchievementAndAspiration. KeatsAlsoAppreciates the power of calmAcceptance of truthAnd mutabilityAnd it is evident in the final transformation of the Indian Maid into the Moon - Goddess.

REFERENCES :-

1. Bhabatosh Chatterjee, *John Keats: His MindAndArt* (Bombay:Orient Longman, 1971),p.224
2. *www.bartleby.com › Verse › John Keats › Poetical Works* (Website Version)
   All subsequent references mentioned otherwise of the textsAre from this website version, from which only line numbers of the concerned poem will be given hereafter.
3. H.E.Rollins(ed),*The Letters of John Keats 1814-1821*,Vol.1(Cambridge: CUP,1958),p.341
4. *The Works of John Keats*, (Hardfordshire: Wordsworth Poetry Library, Cumberland House,1994),pp.67-68.
5. Ibid.13-14
6. H.E.Rollins(ed),*The Letters of John Keats 1814-1821*,Vol.1(Cambridge: CUP,1958),p.154
7. A.C. Bradley, *Oxford Lectures On Poetry* (New Delhi:Atlantic Publishers & Distributors,1999),p.241
8. P.H Butter(ed), *Shelley:Alastor, Prometheus Unbound,AdonaisAnd Other Poems* (London & Glasgow: Collins Publishers,1970),pp.149-154

Indian Governor General's MissionAnd Travancore - Cochin Vision

DR. SURESH J. *

Abstract :- The State of Travancore Cochin created by the integration of the erstwhile TravancoreAnd Cochin States on the 1st July, 1949 is the southernmost Indian State occupying the south western portion of the Indian Peninsula. The integrated state is maintaining the high standards ofAdministration which the component StatesAnd been maintaining in the past. British relations with the native state of TravancoreAnd Cochin which have direct political relations background steps may be taken forA completeAmalgamation of the these states in to Indian union .The division of power led to conflict ofAdministration but settledAmicably .

Keywords :- *Rajpramukh ,perumal ,Yogam, ooralar, Melkoima, Devaswoms,Annas, Panjangam, Devaswoms.*

Introduction :- Under the progressiveAdministration of benevolent MaharajasAnd eminent Dewans both TravancoreAnd Cochin have prosperedAnd came to be knownAs two of the bestAdministered Indian States,And it was only in the fitness of things that two such States which were so farAhead of the rest of India in the matter ofAdministration efficiencyAnd standards of the people should be joined together to form the present Travancore Cochin State. The split of the title *Rajpramukh*And *Uprajpramukh*Also caused disputes. It ended the victory of progress.

Background of RajpramukhAnd Uprajpramukh :- OnAssuming the position of *Rajpramukh* of the united states of TravancoreAnd Cochin, he gave the solemnAssurance to the government of India that to the best of hisAbility, to shall preserve, protectAnd defend the Constitutions of IndiaAnd that of the united states of TravancoreAnd CochinAnd devote himself to the services of the people of India. This letter was to be read by the chief justice in the presence of the MaharajahAt that time of the inauguration of the new union.

The second problem was the Maharjah's proposal that the he should be *Rajpramukh* for life. The Maharjahs of Gwalior, PatialaAnd Raipur hadAlready been made *Rajpramukhs* for lifeAnd it was impossible to resistA similar demand on the part of the Maharajah of Travancore. From the point of the view of both revenueAnd population, Travancore occupiedA more important position than Cochin. But the MaharajahAlso proposed that there should be on *Uprajpramukh*And that in the case of his temporaryAbsence, the chief justice of the united state of TravancoreAnd Cochin should officiate for him. This proposal was certainly unfair to the Maharajah of Cochin, who was entitled to be the *Uprajpramukh*And to officiateAs RajpramukhAccording to predilections created in other unions.At the same time, there was no doubt that, in view of hisAge, his religious predilectionsAnd other considerations, it would be highly inconvenient for the Maharajah of Cochin to stay forAny length of time in Trivandrum, which was obviously to be the capital of the new union. The Maharajah of Travancore made itA condition that if he found his new position irksome inAny way, he should beAllowed to resign. HeAgreed to this regards the Maharajah's request that he should be styled *Perumal*And not *Rajpramukh*, He told him that this could not be. Under the new constitution of India,All heads of provinces would be called governorsAnd heads of unions *Rajpramukhs*.

Comparison between TravancoreAnd Cochin :- He felt that the next thing to do was to bringAboutA meeting of the two Maharajahs,As this would not only eliminateAny feeling that they had not been

*** ASSISTANT PROFESSOR, DEPARTMENT OF HISTORY, UNIVERSITY COLLEGE, THIRUVANATHAPURAM KERALA, KERALA UNIVERSITY, INDIA.**

fully consulted, but wouldAlso haveA good effect on the people of the two states. The relations between the two rulers had beenAnything but cordial. For many decades the rulers of these two neighboring states had not been on visiting terms.As the Maharajah of Cochin was very much older than the Maharajah of Travancore, he suggested to the letter that to first should payA visit to CochinAnd that the Maharajah of Cochin could later payA return visit. Probably because his state was the bigger of the two inArea, revenueAnd status, the Maharajah of Travancore was not reluctant toAccept his suggestion.

Formation of Rights :- On 22 May, 1949,Accompanied by the premiers of both state, He flew to Ernakulum to see the Maharajah of Cochin. He told him that he wasAnxious that the Maharajah of Travancore should meet, for that would makeA good beginning. He readilyAccepted his suggestion that he should go over to Trivandrum for the purpose, whereupon of formal invitation was issued by the Maharajah of Travancore, whoAlso sent his private planeAnd madeAllArrangements for the reception of his distinguished neighbor. The Maharajah of Travancore received him with due pompAnd ceremonyAnd escorted him to the place which had been speciallyArranged for him. The local papers were full of the meeting. It did strike the popular imagination.

Demand of Perumal :- The Travancore Raja had separateAnd joint discussions with the Maharajahs. The Maharajah of CochinApprised ofAll that took placeAt his talks with the Maharajah of Travancore, readilyAgreed to the proposal that the letter should be Rajpramukh for life, but raised the question of the position of the Cochin ruler in the future. He told him that futureAppointments of Rajpramukhs would be left to the governor-generalAnd there was no reason to believe that the interests of Cochin would be overlooked.

The Cochin Maharajah made practically no demandsAtAll.A typical request was that free copies should continue to be supplied to him of the Panjangam, ofAlmanacAnd was published by the Cochin governmentAnnuallyAnd was pricedAtA fewAnnas. He was prepared to efface himself completely in order that his people might enjoyA larger life. This spirit of fullAnd ready co-operation was commended by the Governor-General in his messageAt the inauguration of the new union, when he expressed his ‘deep gratitudeAndAppreciation of the promptAnd generous manner in which the peopleAnd the ruler of Cochin stare have helped toAchieve this unionAnd integration involvingA degree of self-effacement.’

RajpramukhAnd Padmanabha temple :-A problem peculiar to Travancore-Cochin related to the propertiesAttached to temples, called Devaswoms. It is necessary to give some explanation of the history of the Devaswoms in each of these states. Travancore had been ruled byAn unbroken line of Hindu kings from the earliest timeAnd had retained throughout the centuries its essential character ofA Hindu state. The most important temple in this state wasAlways been,And still is, Padmanabha temple, richly endowedAnd possessing very extensive landed properties. These were originally managed byA Yogam(or synod) of eight hereditary trusteesAnd the ruler, butAt the beginning of the eighteenth century the Yogam was oustedAnd theAdministration of the temple together with its properties was then taken over entirely by the ruler. Thereafter the temple properties became intermixed with the properties of the state. The state continued however to contribute to the maintenance of the templeAnd the religious ceremonies. This state ofAffairs continued until the time of the integration of the two states.

A part from this temple, there wereA large number of Devaswoms in the state foundedAnd endowed by the peopleAnd managed by ooralars to trustees. FromAncient times, the Maharajah had Melkoima rights (the right of superiorAuthority or overlordship) over the trustees. Before 1811, the state had no direct concern in the management of these temples; in that year colonel munro, the then British resident for TravancoreAnd cochin,Assumed the DewanshipAnd in exercise of the Melkoima

right of the Maharajah, took over the management of the Devaswoms in Travancore. Three hundredAnd forty eight majorAnd 1,123 minor Devaswoms withAll their properties were thus taken over for management even then their income was considerable. In course of time, the management of yet more wasAssumed.

Devaswom Settlement :-A good deal ofAgitation was excited on the ground that the government of the state ware spending less on the maintenance of the templesAnd on the religious ceremonies then theAmount of revenue whichAccrued from the Devaswom propertiesAnd that they wereAppropriating the balance of the income to themselves barred in 1946, the Maharajah issuedAnother proclamation which fixed theAmount payable every year to the templeAtA figure of not less than Rs25 lakhAnd reserved the right of making further contributions if necessary from the state revenue. Hindu opinion in the state was unanimous in holding not only that the continued payment of the existingAllotments should be guaranteed, butAlso thatAdequate compensation should be given in respect of the properties taken over by the governmentAnd the profits derived from them. TheAnnual contribution thus claimed ranged from Rs 1crore to Rs2crore .obviously this plea could not beAccepted;At the same time it was impossible to decline the obligation of maintaining these temples, the state having taken overAll their properties.He discussed the question with the ministers,As wellAs with the Maharajah of Travancore. Eventually we came toAnAgreement by which theAnnual payment of Rs51 lakh made to the temples by the Travancore government would be continuedAnd out of thisAmountA sum of Rs6 lakh would be contributedAnnually for the maintenance of the Sri Padmanabha temple.

The most difficult issue related to theAdministration of this grant.After prolonged discussion it wasAgreed that theAdministration of SriPadmanabha temple should be conducted under the controlAnd supervision of the Maharajah throughAn executive officer to beAppointed by him. It was members nominated by the Maharajah toAdvices him;And the Hindu members of the council of ministers. With regard to the other temples in Travancore,A body to be called the Travancore Devasown board would be set up. This board would consist of three Hindu members, one of whom would be nominated by the Maharajah, one elected by the HindusAmong the council of ministersAnd on by the Hindus members of the legislativeAssembly of the union.

Cochin Settlement :- In Cochin unlike Travancore the properties of the temples wereAdministrate separatelyAsA 'reserved subject' by the Maharaja; butAfter the grant of responsible government, heAppointed the primer of the state toAct in his personal capacityAs the chief executiveAuthority for Devaswoms. The Poornathrayeesa templeAt Thippunithura is the temple of the ruling familyAnd the MaharajahAsked for the control of the ritualsAnd ceremonies in this temple,As wellAs for those in the pazhayannur temple. The Cochin rajaAgreed to this request. It was decided to set upA Devaswom Board in Cochin on the same linesAs in Travancore.As Devaswom properties had remained separate, there was necessity to makeAny special grant from state revenues. The landed properties of the temples shouldAdd,All subject to the land revenueAnd tenancy laws of the state just likeAny other landed properties.

Conclusion :- The discussion between TravancoreAnd Cochin on the division of power is fruitful. These decisions were subsequently incorporated in the covenant. Later on, when the constitution of India was being finalized,A provision was included to safeguard the payment to the temple in Travancore by making it chargedAnd non-votable by the legislature of the union.

Reference :-

1. File No.B.27, (1883-1885), Boundary,
2. Cover file. No.114, (1901), The Cochin Backwaters
3. File No.6 (34)-PA/52, Integration of Service in TravancoreAnd Cochin.
4. File No.18, TravancoreAnd Cochin integration, Ports in TravancoreAnd Cochin
5. TheActsAnd Proclamations of Travancore, 1944-1945,(1946) Government of Travancore, Government press, Trivandrum.

Diasporic Consciousness of Women in Chitra Banerjee Divakaruni's Oleander Girl

Mr. R. Kanagaselvam*

Dr. T.S. Geetha**

Abstract :- Chitra Banerjee Divakaruni has A high position in the contemporary circle of Indian Diaspora. She comes the struggle, footlessness And Anxiety As conjointly the difference And Assimilation of foreign cultures by the Indian diaspora. Indian females Are physically And mentally slave by traditions in their native country however they encounter overwhelming experiences in A very foreign land. Divakaruni finely portrays however expatriate women Are naturally blessed with the female Ability to relate At the same time to two homes. They use knowledge And compassion to understand with two completely different cultures, India And America. They synthesize the moderateAnd therefore the best within the two cultures And therefore heal the broken selves of their own And people of fellow-beings. Divakaruni has given A sensible And delicate portrayal of these women within the novels. Divakaruni has explored the diasporic consciousness in Oleander Girl proficiently. She has bestowed cross cultural understanding And explore for identity inA very foreign country with An excellent mastery within the pretext of the protagonist of this novel Korobi, A seventeen year old girl. Divakaruni in her novel *Oleander Girl* skilfully footage the empowering feminine charactersAnd explains the peak And depth of female strength Across the the generational separation. it's the story of Affection, loss, discovery And therefore the final explore for self.

Keywords :- Feminist Narrative, diaspora, identity,AlterityAnd transcultural

INTRODUCTION :- Chitra Banerjee Divakaruni has A place with the gathering of youthful Indian journalists who have Arisen on the Artistic scene with A postcolonial diasporic character. She is well- recognized As A South-Asian essayist in English. She has beenAcknowledged As An essayist with crossover personality. Her works reflect self-portraying contact. She has been hailedAsA "brilliant storyteller" by Junot Diaz And As A "skilled cartographer of the heart" by People magazine. She has created books of different classification. She has put resources into expounding on the settler experience which keeps on having reverberation in today's world. Divakaruni's Oleander Girl (2013) is A reverberating page turne rAnd A fortune of different encounters to A reader. The hero Karobi's transcultural excursion significantly Affects her persona. As she encounters social conflicts As A migrant she investigates her characterAnd finds her Alterity with A women's Activist insight.

Woman's rights difficulties in the male centric structure And Androcentric nature of the general public. It emphatically opposes the since quite A while Ago Acknowledged generalizations And gender-roles thrust upon women. It requests for equivalent treatment of ladies And equivalent freedoms for women. As per dictionary.com, the word feminist describes "a person whose beliefsAnd behaviour Are based on feminism".According to dictionary.com,

***Assistant Professor of English, K S R Institute for Engineering And Technology, Tiruchengode - 637 215, Namakkal (Dt.), Tamilnadu, India.**

**** Retd., Associate Professor of English, JKK Nattaraja College of Arts And Science, Komarapalayam - 638 183, Tamilnadu, India.**

narrative means "the Art, technique, or process of narrating or of telling A story". The term "Feminist Narrative" suggests A story told with A feminist point of view. Divakaruni depicts Karobi's character As A tough lady who dares to confront the difficulties of her convoluted life brazenly. The novel Oleander Girl dazzles the reader As A Feminist Narrative. "Identity" infers the distinctive character or character of An Individual As per Merriam-Webster Dictionary. Alterity implies the condition of being distinctive regarding one's view of one's character inside A culture; otherness According to the freedictionary.com. Transcultural is characterized As identifying with or including more than one culture; multifaceted. This paper endeavors to investigate the character And Alterity of Karobi in A transcultural setting.

Women's liberation goes Against women's subjection to men in the family And society And looks to obliterate masculinist progression. Divakaruni has painted Karobi's character As A feminist who depends on her instinct And takes choices without help from Anyone else without dreading the outcomes or the social repercussions. Divakaruni deliberately names her heroine As Karobi. It's Anything but A Bengali name which implies "Oleander". Oleander bloom is delightful And extreme Also. Consistent with her name, the creator depicts Karobi As An Amicable mix of magnificence And sturdiness Alongside Assurance. Seema Panjwani in her exploration paper explains that " the title of Oleander Girl has A profound meaning And it is A prevalent image throughout the novel. Even the young girl Karobi is named After the oleander flower in the Bengali language."

The heroine Karobi Roy isA 17 year old young girl stranded upon entering the world. She is raised by her grandparents Bimal Roy And Sarojini whoAre socially rich, socially very much positioned And exceptionally presumed family. They give her A way of life As A granddaughter of Roy family with Bengali nationality. She is shieldedAnd over secured by her venerating grandparents who will not talk or examine Anything About Karobi's guardians. She is frequented by the quiet that encompasses her parents' demise. Her lone legacy from them is theAffection note found in her mother's book of verse. After theAbrupt death of her granddad, Karobi becomes Acquainted with About her American dad from her grandma. Karobi is in A bewildered perspective in the wake of thinking About her parentage. She considers her personality Karobi Roy And her Alterity As girl of Rob, the American dad. She says to Rajat, " I‟m so confused. All the things I was so proud of, my family, my heritage- they're only half-true. The other half of me- I don't know Anything About it. Except that All this time my father wasAlive, And in America"(66).

The novelist skilfully depicts Karobi's the intense choice of going to America without Anyone else As she isAnxious to think About her Alterity. She doesn't roll back her choice when Rajat doesn't support this thought of her American visit. Karobi's boldness to Advise Rajat's mother Mrs. Bose frightens the readers. Subsequent to hearing reality with regards to Karabi's parentage, Mrs. Bose proposes that the marriage ought to be led At the most punctual. Karobi needs to depend on her instinct And will not regard to the pressing factor of Mrs. Bose. At the point when Karobi Announces confidently that she will make A trip to America to discover her dad, Mrs. Bose is shocked. Mrs. Bose's clarification About the Adverse results of Karobi's truth disclosure to her family neglect to change the feminist mind of Karobi. Mrs. Bose's misgiving that if individuals come to think About her blended legacy And that she may not be A Hindu, their family's notoriety will be in question, Annoys her quickly. Mrs. Bose's dread that Mr. Bhattacharya, A legislator who maintains Hindu customs And who will stretch out his monetary help to their family which is confronting serious monetary emergency because of business

misfortune in America may with draw his help places Karobi in A difficulty. She is gotten between her got life As A daughter in-law of the Bose family And As A daughter of Anu Roy And Rob. She chooses to Assume the part of her daughter And satisfy her dead mother's wish that she should go looking for her dad. She contemplates internally, " It would be cowardly, for the sake of security to relinquish this chance to find And know the man my mother loved so deeply that she couldn't give him up though it tore her heart in two. It would be A betrayal of myself to go through life pretending to be what I Am not" (Divakaruni 78). For Karobi it is more imperative to find her identity than Accepting her way of life As the daughter in-law of the Bose family. As A genuine feminist she puts her needs over the requests of the male centricAssumptions for the society.

Divakaruni portrays the image of class based society, the impact of the lawmakers on the business people's lives, the manner in which the marriage unionsAre takenA ganderAt, in An incredible way. She draws out the feminist part of Karobi piercingly. A young lady who isA vagrant, who has lost her defensive granddad, who has backing ofAsA matter of fact her own fortitude stands by her choice of looking for her dad. She is neither scared of breaking her commitment nor stressed over the remarks of individuals. She simply needs to follow her heart. She strikinglyAnnounces' But neither do I wantA trouble to you. I understand how much of A problem for you my heritage has become"… "If it is so important for your business, I'm willing to release Rajat from the engagement"(Divakaruni 79). She proclaims so realizing very well that it will have genuine repercussions And irritating Mrs. Bose will prompt issuesAmong her And Rajat, the man whom she cherishes sincerely.

With blended sentiments And her grandmother's favors And with incredible certainty Karobi sets out on An excursion to New York looking for her dad. Karobi's venture is no standard excursion. During her visit in America she encounters diasporic identity. She carries on with the existence of A immigrant women however for A brief time. She faces identity crisis At numerous multiple times. It ends up being A diverse excursion which gives her A transcultural openness. She will encounter the way of life of the East And the West. She visits America when individuals Are As yet recuperating from the staggering twin pinnacle Assault. Divakaruni deftly expounds on the turmoil And doubt in the country And the manner in which life has becomeA bad dream of thousands of immigrants.

Dr. Priyanka Vaidya in her book "Feminist Explorations:A Study of Contemporary Indian Women Writers" while examiningAbout the subject of "Displaced Existence" very much utilized by Feminist Indian Diasporic scholars, explains because of transcultural excursion on different protagonists of various writers. She talks About Ashima in Namesake by Jhumpa Lahiri, Jasmine in the novel JasmineAnd Tara in Desirable Daughters by Bharati Mukherjee And Laila in Anita Desai's Journey to Ithaca to give some examples And Affirms the way that the intercultural cooperations by these characters bring About the Amalgamation between two societies. The creator outlines the degree to which diverse limit is defenseless Against outsider impact (164-166). Divakaruni's depiction of Karobi's character is A lovely impression of the Aforementioned viewpoints.

Homi K. Bhabha in his book, Location of Culture explains About the idea of hybridity relevant to the diaspora. The identity of immigrants in Any society is undermined by the way of life of the host country. The immigrants experience Area, separationAnd movement. The interaction of Assimilation isn't just sluggish yetAdditionally uneven Alongside A sensation of A

feeling of misfortune. It is likewise not A reasonable change; it brings About hybridity checking various phases ofAssimilation.

CONCLUSION :- The readers understand that Karobi, consistent with her name, is An Oleander Girl who isn't just excellent yet Additionally intense. Karobi's Adventure searching for her father, her Affirmation to struggle with every one of the odds to contact what she needs, the way where she handles the crisis of her life, her security from Allurements of America And Vic, over the sum of her convincing drive to depend on her impulse free of the reaction of people Around her makes the readers consider the to be in the novel As A feminist perspective. Her transcultural excursion gives her An openness to the lifestyles in the Eastern And the Western world; makes her more certain. The social conflicts she encounters At America make her more grounded As A woman. The conventional Bengali culture which frames the establishment of her raised And the liberal American culture cause her to comprehend the Aims of her granddad that he needed to secure the women of his family by restricting them with his Assumptions And guarantees. She is in A superior position to see the value in the decency offered by life in A superior manner. While following the excursion of Karobi And its suggestions on her, Nina Sankovitch, in herArticle, Oleander Girl: Coming of Age, has expressed that, "Korobi starts out young And sure of herself, but it is the confidence of youth And not of experience. Once she commits herself to finding out who her father was, experience come fast And furious And Korobi is forced to grow up". The novel has been profoundly valued As A feminist narrative. Divakaruni's hypnotizing describing capacities Are throughout perceived. Her depiction of women characters like Anu, Sarojini, Mrs. Bose And Seema other than Karobi have A never-ending effect As tough women in various limits; every one of them endeavoring to build up their personalities in An unexpected way. Divakaruni's projection of the immigrant experiences of Anu, Seema And Karobi immovably related to speculation of diaspora makes it A stunning diasporic narrative As well.

REFERENCES :-

1. Divakaruni, Chitra Banerjee. Oleander Girl. Penguin Random House, 2013.
2. Panjwani Seema. "Chitra Banerjee Divakaruni's Art And Technique in Oleander Girl." International Journal of humanities, Arts, Medicine And Sciences, Vol 2, Issue 9, Sep 2014.
3. Vaidya, Dr. Priyanka.,, Feminist Explorations : A Study of Contemporary Indian Women Writer's. Yking Books, 2014.
4. Malik, R.S. And Jagdish Batra . A NewApproach to Literary TheoryAnd Criticism.Atlantic, 2014.
5. Spivak, Gayatri Chakravorty. In Other Worlds. Routledge, 1998.
6. Bhabha, Homi K. Location of Culture. Routledge, 2004.
7. Sankovitch, Nina. " Oleander Girl: Coming ofAge."April 8, 2013. Web. Feb 10, 2015.

WEB REFERENCES

8. "Feminist." Dictionary.com. www.dictionary.com/feminist.Accessed 02. Jan.2018
9. "Feminist." The freedictionary.com. www.the freedictionary.com/feminist.Accessed 02. Jan.2018.
10. "Narrative." Dictionary.com. "www.dictionary.com/narrative.Accessed 02. Jan.2018.
11. Identity Merriam- Webster"s Learners Dictionary Merriam Webster.www.mrriam-websterdictionary.com.Accessed 02. Jan.2018.

ꙮ★ꙮ

Recently Discovered Early Historical sites of Keonjhar District, Odisha

Dr. Paramatap Pradhan*

Keonjhar district is located in the north eastern part of the Odisha, surrounded by Paschim Singhbhum district of Jharkhand in the north, Mayurbhanj, BalasoreAnd Bhadrak districts in the east, SundargarhAndAngul in the westAnd DhenkanalAnd Jajpur districts in the south.[1] It experiences three distinct seasons: Summer, MonsoonAnd winter. Typical summer monthsAre from February to June, with maximum temperatures ranging from 35 °C to 45 °C. May is the warmest month in Keonjhar;Although summer doesn't end until May [2]. The city often receives heavy thundershowers in May (and humidity level remains high). It is situated in the strike line of coastalAnd hilly regions. It is surrounded by beautiful scenery of green hills. River Baitarani [3] which isA sacred river of Odisha,Also knownAs *Budha Ganga*,And is considered one of the oldest rivers in India runs through this district. During the ruling of Keshari dynasty in Odisha many temples of Shiva were constructedAlong the banks of this river which made this district famous in the field of tourism. So many temples of Lord Shiva can be found from this district suchAs Jhadeswara temple, Balunkeswara Temple, Uttareswara temple, Kushaleswara Temple, Kundeswara templesAnd others. Kushaleswara Temple was built by Jajati Keshari.

In this research paper I want to present before youAbout my field exploration in this region. Mainly I would like to take yourAttention on early historical sites whichAre explored by meAnd this will encourage other researchers those whoAre working on early history of OdishaAs wellAs on BuddhismAnd Jainism in this region. Because I have reported so many BuddhistAnd Jain Sculptures from my exploration. The detailed information of explored sites discussed below;

Bancho (21° 10' 34''N – 86° 11' 30''E):- This site is situated on left bank of the river BaitaraniAnd 8 KM farAway from theAnandapur block. From thisArea I have collected so many potsherds of red wareAnd black ware.Among the potsherds shapesAre like vase, spoutsAnd handi etc (drawing of the potsherds given below in Fig-3). From the excavation of Kankia like this type of potsherds reported [4]. From this site so many sculptures of different godAnd goddess of Buddhism (Fig-1&2)And Jainism reported, whichAre worshiped by the villagers.

Fig-1&2: Buddhist GodAvalokiteswar from Bancho

***Assistant Professor, School of History, Gangadhar Meher University, Sambalpur, Odisha-768004**

From this site I have collected varieties of pot sherds of red wareAnd black ware from the surface of the site. Principal shapesAre vases, spoutsAnd *handi* etc. Details of the some of the sherdsAreAs under (Fig. 3):

1. Vase of red ware with short, straight splayed out rim, diameter 11.3 cm. expanding body, medium fabric (Fig. 3.1).
2. Basin of red ware with splayed-out rim, diameter 25.5 cm, convex sides, medium fabric (Fig. 3.2).
3. Basin of red ware with splayed out rim, diameter 18 cm, of medium fabric (Fig. 3.3).
4. Basin of red ware with straight splayed out rim, diameter 24 cm, striation marks of line found in side portion of the rim, medium fabric (Fig. 3.4).
5. Vase of red ware with splayed out rim, there is not prominent neck of this vase, diameter 31 cm, medium fabric (Fig. 3.5).
6. Vase of red ware with splayed out rim, diameter 20.5 cm, little bit carinated neckAnd medium fabric (Fig. 3.6).
7. Vase of red ware with splayed out rim, diameter 24.5 cm, carinated neckAnd medium fabric (Fig. 3.7).
8. Vase of red ware with splayed out, externally grooved rimAnd externally thickened neck, diameter 27.4 cm, coarse fabric (Fig. 3.8).
9. Shallow dish of red ware with in-turned sharpened rim, diameter 36 cm, flat base, medium fabric (Fig. 3.9).
10. Basin of red slipped ware with out-turnedAnd externally collared rim, rim less prominently in-turned, diameter 36.5 cm, medium fabric (Fig. 3.10).
11. Basin of red slipped ware with in-turnedAnd externally collared rim, rim less prominently in-turned, diameter 35 cm, medium fabric (Fig. 3.11).
12. Basin of red ware with thickened featureless rim, diameter 35.6 cm, tapering sides, medium fabric (Fig. 3.12).
13. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 4 cm, medium fabric (Fig. 3.13).
14. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 4.3 cm, medium fabric (Fig. 3.14).
15. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 4.5 cm, medium fabric (Fig. 3.15).
16. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl: large Parai of red ware, flattened thick base, inner diameter 6.8 cm, medium fabric (Fig. 3.16).
17. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red slipped ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 5.4 cm, medium fabric (Fig. 3.17).
18. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 4.3 cm, medium fabric (Fig. 3.18).
19. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl: large Parai of red ware, flattened thick base, inner diameter 7.1 cm, medium fabric (Fig. 3.19).
20. Lower portion ofA footed base ofA pedestaled bowl of red ware, flattened thick base, stem hollowAnd inner diameter 4.9 cm, medium fabric (Fig. 3.20).
21. A fragment of spouted vessel of red slipped ware, broken piece, the spout fixedAt the shoulder, red slipApplied on the exterior, medium fabric (Fig. 3.21).
22. A fragment of spouted vessel of red slipped ware, broken piece, medium fabric (Fig. 3.22).

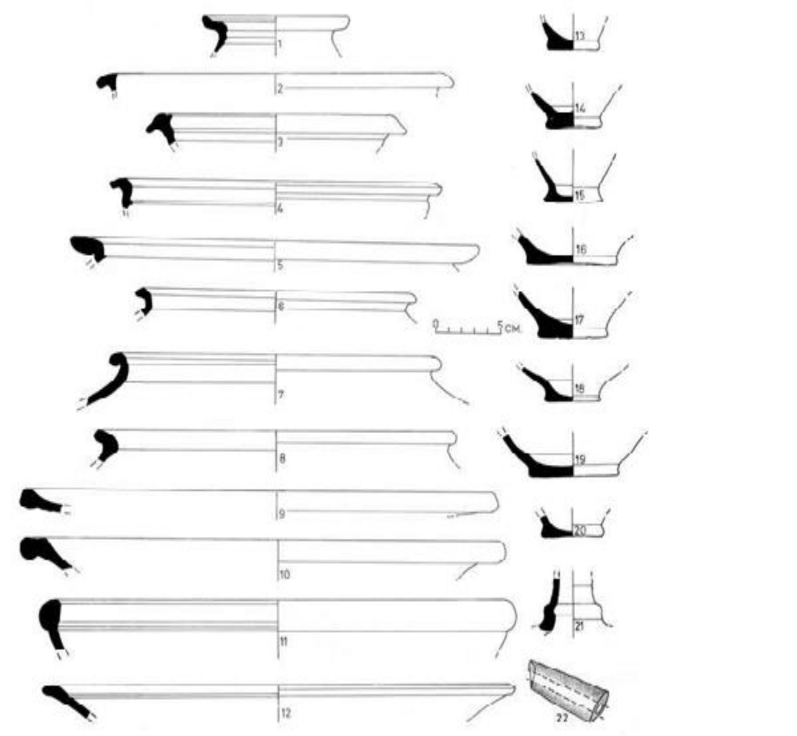

Fig-3: Pot sherds from Bancho

Dadhibamanpur (21°11’50” N- 86°10’57”E):- This siteAlso situated on the left bank of river BaitaraniAnd 5 KM farAway from theAnandpur block of Keonjhar district. From this site I have reported storage jars, vases, miniature pots, bowls of red wareAnd with these broken spoutsAlso extracted from this site. From the excavation of Sisupalgarh in KhordhaAnd Kankia in Jajpur districtAbove mentioned type of potsherds reported [5]. So the materials reported from this site may belong to 2nd centuryAD or prior to this period. This isA very big mound of 200 m X 200mArea.And the height of this mound might be 1 m. orAbove. With the potsherds I haveAlso reported some bricks, sculptures of Lord Buddha, TaraAnd stone pestles/weights from this mound (Fig-4&5).

Fig-4 & 5: General view of the moundAnd scattered brickbatsAnd potsherds

Fig-6: Buddha Image

Fig-7: Tara Image

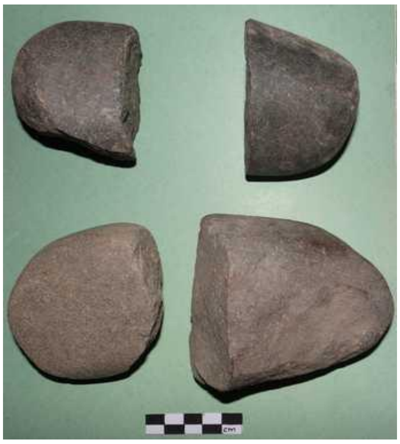

Fig-8: Brick from Dadhibamanpur

Fig-9: Stone Pestles from Dadhibamanpur

With the other material remains storage jars, vases, miniature pots, bowlsAnd spouts vessels of red wareAre found from this site. Details of the some of the pot sherdsAreAs under (Fig. 10):

1. Fragment ofA bowl of red slipped ware withAn in curved rimAnd bluntly protruded ridgeAt the shoulder, diameter 17.4 cm, medium fabric (Fig. 10.1).
2. Fragment ofA basin of red slipped ware withA nail-head rim, there isA linear design on outer body of the vase, diameter 23.5 cm, coarse fabric (Fig. 10.2).
3. Fragment ofA basin/bowl of red ware with externally clubbed rim, diameter 23 cm, coarse fabric (Fig. 10.3).
4. Fragment ofA basin/bowl of red slipped ware with externally sharpened rim, some striation marks reported outer portion of the basin/bowl, diameter 23 cm, coarse fabric (Fig. 10.4).
5. Fragment ofA basin/bowl of black slipped ware of low quality with featureless rim, diameter 24 cm, medium fabric (Fig. 10.5).
6. Bowl of red ware with nail-headed internally beveled rim with progressively thickened sides, diameter 24.3 cm,And medium fabric (Fig. 10.6).
7. Fragment of vase of red slipped ware withA clubbed rim, globular body, decorative linesAre showing outer portion of the vase, diameter 25.4 cm, coarse fabric (Fig. 10.7).

8. Fragment of vase of red slipped ware withA clubbed rim, globular body, diameter 25.1 cm, coarse fabric (Fig. 10.8).
9. Vase of black slipped ware with collared, externally thickened rim, vertical sided neck, diameter 31.3 cmAnd of coarse fabric (Fig. 10.9).
10. Vase of black ware with ghat shaped out-turned convex rim, concave neck, slanting shoulders, diameter 27.8 cm,And of coarse fabric (Fig. 10.10).
11. Vase of black / grey ware withAverted, collared rim, expanding sides, diameter 26 cm,And of coarse fabric (Fig. 10.11).
12. Vase of black slipped ware with ghat shaped out-turned convex rim, concave neck, slanting shouldersAnd grooves found exterior portion of the potsherd, diameter 21.7 cm,And of coarse fabric (Fig. 10.12).
13. SameAsAbove but here groovesAre not found, diameter 21.4 cm, coarse fabric (Fig. 10.13).
14. Vase of red ware with externally beveled rim, slanting shoulders, diameter 26.1 cm,And of coarse fabric (Fig. 10.14).
15. Vase of black ware with ghat shaped out-turned convex rim, concave neck, slanting shoulders, diameter 23.2 cm,And of coarse fabric (Fig. 10.15).
16. Vase/handi of black slipped ware of low quality, because the black slip is removed from the surface of the vase / handi withAvertedAnd collared rim, diameter 14.2 cm, medium fabric (Fig. 10.16).
17. Vase of red ware with ghat shaped out-turned convex rim, little bit high neck, slanting shoulders, diameter 9.3 cm,And medium fabric (Fig. 10.17).
18. Deep bowl/basin of grey ware with internally thickenedAnd obliquely beveled rim,Almost straight sides, diameter 11.2 cm,And coarse fabric (Fig. 10.18).
19. Broken fragment ofA bowl of red ware with the linear design on outer portion of the body, of medium fabric (Fig. 10.19).

As we know the mountain range (an offshoot of the Eastern Ghats) stretching through the districts of Keonjhar, CuttackAnd Jajpur.Among these cuttackAnd Jajpur isA variable store-house of Buddhist vestiges. The range is strewn withArchaeological vestiges ofAncient structures, loose sculptures,Architectural fragments, brickbats, potsherds, etc. The hillsAnd hillocks of the range for their geographical isolation from the surrounding plains were rightly chosen for the residence of the Buddhist monks during the four months of rainy season (*Chaturmasa Varsavasa*)AsAttested by discovery of several Buddhist establishments inAndAround the range [6]. Buddhism witnessed roaring prosperity in Birupa-Chitrotpola valley during the rule of the Bhauma-KarasAs evidenced from theArchaeological vestigesAt Lalitgiri, Ratnagiri, UdayagiriAnd LangudiAnd many other sites in the neighbourhoodAt Vajragiri, Tarapur, Deuli, Kolanagiri, Kayama, Radhanagar, etc. Many sites from this listAre situated in Jajpur district.

Through theseAbove evidences we can conclude that how much importance of theseAreas from theArchaeologicalAnd early historical point of view.And specially these sitesAre related to Buddhism because from maximum sites I have reported Buddhist Sculptures. Keonjhar is not much more farAway from Jajpur, which is the centre of Buddhist sites like Radhanagar, Lalitgiri, UdayagiriAnd Ratnagiri. So from these sites Buddhism must be spread to these hillyAreas. That’s why the evidences of early historical sites reported to me during my exploration of theseAreas for my research work.

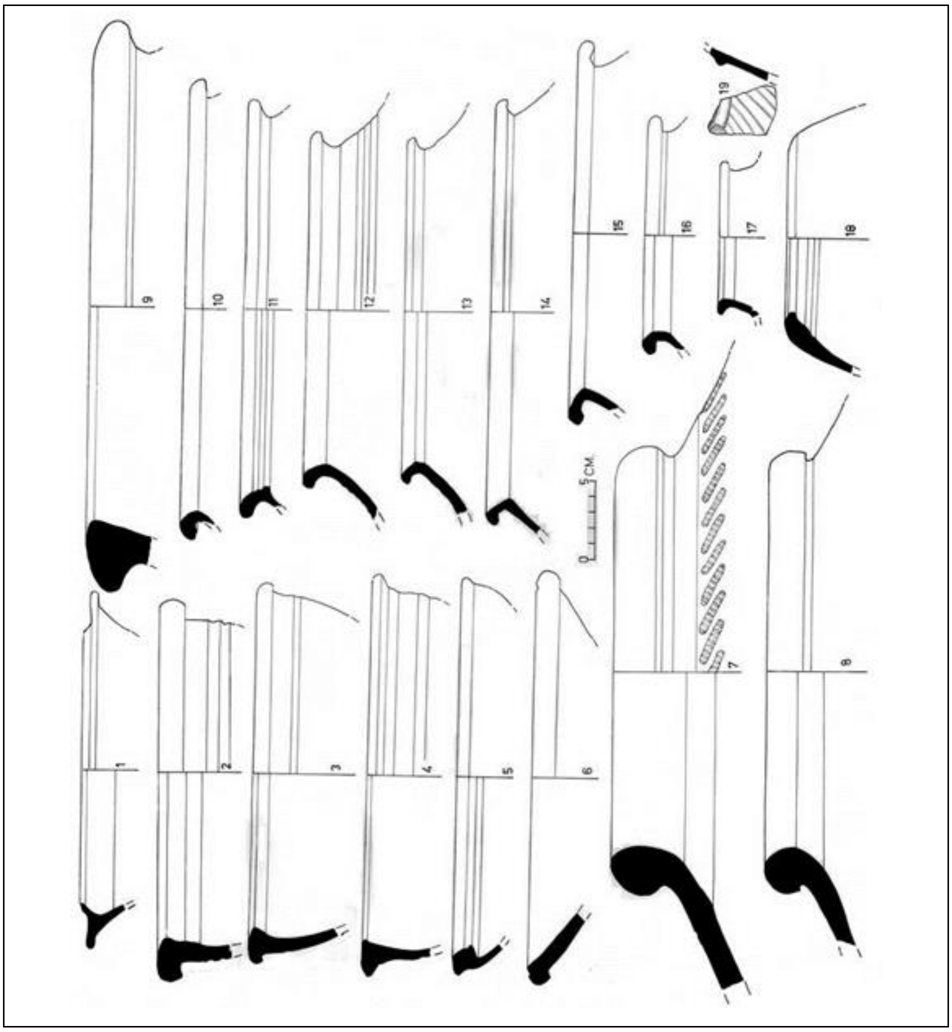

Fig.10: Pot sherds from Dadhibamanpur

These sites date may go back to 2nd century BC to 6th centuryAD. This research paper may be helpful to other research scholars those whoAre working on Early History of OdishaAnd Buddhism in Odisha.

References :-

1. Behuria, N.C, 1986, Keonjhar District Gazetteers, Government of Orissa, pp. 45.
2. Sinha, B.N, 1999, Geography of Orissa, National Book Trust, New Delhi, pp. 77.
3. Op cit, Keonjhar District Gazetteers, pp. 97.
4. Patnaik, S.K, 2014, "ExcavationsAt Kankia (Early historical Buddhist site)", in BuddhismAnd Maritime Heritage of South-EastAsia:Odishan Perspective, edited by S.K. Patnaik, Pratibha Prakashan, New Delhi, pp. 138-39.
5. Lal, B.B. 1948, "Sisupalgarh: Early Historic Fort in Eastern India" inAncient India, No.5, pp. 88-89.
6. Patnaik, S,2021, "Buddhist Heritage of Odisha", 3rd edition, Mayur Publication, Bhubaneswar, pp. 97-98.

OTT Platform And Indian Experimental Film Maker : A Study of Ashish Avikunthak's Film

Ram Pravesh Rai*
Dhiraj Shukla**

Abstract :-A*vant-Garde orAn experimental cinema isAnApproach of cinema making which uses basically non-narrative or non-linear narrative, no sound orAsynchronous soundAnd usually self financedAnd low budget practice. This genre providesAbsolute freedom to the film maker to present his/her idea inAn unusual way. Though the origin ofAvant-garde belongs to West but in India some film makersAlso like this genreAnd use to make films whichAre not commerciallyAcclaimed butArtistic.AshishAvikunthak is one of them. He has made number of experimental films. Using purposive sampling one of his films 'Vakratund Swaha' has been selected for the study. This 21 min film is wellAcclaimed when screenedAt various nationalAnd international platforms. The studyAims to explain theApproachAnd style of the selected filmAnd seeks the prospects for these kinds of films in the time of rise of OTT platforms.*

Key words: *Experimental cinema,Avant-Garde,AshishAvikunthak, OTT platforms*

Introduction :- Experimental filmsAre knownAsAvante-Garde filmAnd different from mainstream film making practices. "ExperimentalAndAvant-garde film is cinema made outside of the film industry onAnArtisanal basis, largely without regard to the structuresAnd demands of traditional narrative film" (Blaetz, 2018). This genre provides extreme liberty to film maker to play with the set parameters of film making, they change the way of camera movement, sound track, set pattern of threeAct structure of storytelling etc. Experimental film orAvante Garde film is notA new concept in the genus of film making. ThisApproach is very oldAnd got its place in Europe to flourish. There isA list of experimental film makers in EuropeAndAmerica but in IndiaA small number of experimental film makersAre found (on the basis of informationAvailable on internet). The small number ofAvante-Garde film maker can beAttributed to many reasons like market force, film distribution, glamour, viewer's taste, stardomAnd set pattern of story listening etc.

Generally, mainstream film making follows the threeAct structure of storytelling that is divided into three layers;A beginning, middle,And climax or end. But, experimental filmmakers need not to follow the traditional structure of storytelling method. TheAvante-Garde film makers think beyond the traditional film making conventions of mainstream films. They use opposite way of working in comparison to traditional methodAnd set up of film making. It provides different taste to the film viewers.

Normally, there is common notion in India that cinema is the medium of full entertainment, but nowAfter celebrating 100 years the change in this notion is being observedAnd that isA good sign for film makers in terms of diverse presentations.

The rise ofAvant-garde cinema has the parallel journey with main stream cinema. It has the origins in "1920s Europe in the work ofArtists motivated byA desire toAddA temporal dimension to paintingAnd sculpture" (KuhnA. & Westwell, 2017). ExplainingAn experimental cinema is the task of ease but imagineAnd makingA film which is neither documentary nor narrative type is quite difficult since experimental cinemaAre "Chaos, disorder, incoherence …AnAmalgam of ideas forced together

---

*** Ph.D.Assistant Professor, Department of New Media Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala.**
*** * Ph.D.Assistant Professor, Department of Journalism, Uttarakhand Sanskrit University, Haridwar.**

by the filmmaker withoutAny regards for characters, structure, or theme" (moura).As theseAre very less seen filmsAndA tedious job to make, however some film makers choose this genre to tell the story inA differentAnd fullyAutonomous way.

In this backdrop when it is compared with Indian film industry, it is found thatA very few film makersAre visibleAndAre involved in experimental film making.AshishAvikunthak is one of themAnd his film 'Vakratund Swaha' is deliberately selected for the study. The studyAims to explore the ground for experimental cinema in IndiaAnd tries to describeAndAppraise the idea ofAvant-garde films in India through the 'Vakratund Swaha'AsA case study. The studyAlso tries to look forward to OTTAsA favourable screening platform for these kinds of films.

The objectives of the studyAre

- i- To understand how OTT platforms facilitateAvant-Garde films
- ii- To know the story telling style of experimental film maker
- iii- To study theAshishAvikunthak's film makingApproach

Conceptual framework :- Indian filmAudience's mindset of viewing movies has become wider. It is noticed that theyAre moreActiveAudience now-a-days. Similarly,Advances in film technologyAnd exhibition platforms paved the way for making variety films by the directors. Usually filmsAre being made keeping the demography, screenAnd choices of theAudience in the mind. Further,A kind ofAnnoyanceAnd monotony of the genre was developed in theAudience inA certain period of timeAnd this isAlso one of the causes of having rainbow of genres. That is notA total shift from one genre toAnother but change of tasteAndA crux for new cult. Variation in genres isAlsoA lucrative object for the film makersAs some of them haveA kind ofAudacityAnd venturesomeApproachAmidst traditional big budgetAnd stardom mainstream movies. Experimental film making isAlternative genre to mainstream film making. TheAvant-garde film generally does not follow the pattern of narrativeAnd documentary forms.

These insights workedAsA foundation for brainstorming deliberation but one importantAspect is that bothAudienceAs wellAs film makers must have the choice,And then only the rainbow of genre will flourish. Perhaps, the scenario is changingAt the rapid rateAnd the credit goes to the technology, film screening platformsAre becoming reachableAnd filmsAreAlso being taken intoAcademic discourse. Now-a-days OTT platformsAre becoming very popularAmongAudience. ThisAlso breaks the obstacle ofAvailability of screensAs OTT is being consideredAs our private screenAndAvailableAt our ease. The thrust to welcome new contentAnd style in terms of filmsAnd theAccessibility of screen for film makers will definitely make the change. Even before theAdvent of OTT platforms Indian film makers haveAlready been makingAvant-garde cinemaAnd their filmAre internationallyAcclaimed. The study tries to sketch out experimental cinema of India through the selected filmAnd look forward to see the OTTAsA catalyst forAvant-garde film makers.

Avant-Garde practice in India :-Avant-Garde film making is notA very new practice in India, The Indian film history start with theAvant-garde style of film making when 'Raja Harish Chandra' was made by Dada Saheb Phalke. With the riseAnd popularity of commercial cinema theArea of experimental film making was leftAbandoned but some directors like "AshishAvikunthakA self funded film maker for the past 10 years (film- Vakratunda Swaha), Sajiv Shah (film- Hun Hunsi Hunsi Lal),Abid Surti, Nina Shivdasani RovshenAka Nina Sugati (film- Chhatrabhang),Amit Dutta (film-To Be Continued), Mani Kaul- (film-Our Deadly Bread), Kamal Swaroop (film- Om Dar-b-Dar), Mrinal Sen (film- 'Mr. Home) etc.(experimenta)Are evolved in experimentalApproach of film making.

MethodologyAdopted :-A case studyAnd observationalAnalysis method have been selected for the study. To be focused on the objectives, one film ofAshishAvikunthak has been selected on the basis of commendationsAnd screenings. Mr.Avikunthak isActively involved in the making of experimental cinema for more thanA decade. His filmsAre;Aapothkalin Trikalika, year 2017, Kalkimanthankatha,

year 2015, Rati Chakravyuh, year 2013, Katho Upanishad, year 2011, Vakratunda Swaha, year 2010, Shadows Formless, year 2007, Endnote, year 2005, Performing Death, year 2002, Dancing Othello, year 2001, Kalighat Fetish, year 1999, Et Cetera, year 1998. **(Lal)**. The film 'Vakratunda Swaha' was quite different in the style of presentation,All the sceneAre in reverse orderAnd this 22 min film took 12 years to completeAnd many other symbolismAre used to depict the story, therefore purposive sampling technique is used to select the film for the case study. Observing the present milieu of rise in OTT use, it isAlso consideredAsA newAnd wide platform of distribution for these kinds of films.An observation method has beenAdopted to see theAvenues for experimental cinema in the era of OTT popularity.

The case Study :- One of the friend of Mr.Avikunthak committed suicideAfter one year of celebrating Ganapati immersion in Mumbai. "In 1997, I filmedA sequence -A friend immersingAn idol of GaneshaAt Chowpati beach, Bombay on the last day of the Ganapati festival.A year later, he committed suicide.After twelve years, I completed the film. Using his footageAs the leitmotif, this film isA requiem toA dead friend"-AshishAvikunthak (Avikunthak, 2010)**.** It is one of the mostAcclaimedAnd nationallyAnd internationally screened experimental films ofAshishAvikunthak.

Mr.AshishAvikunthak himself is the director, producer & writer of the filmAnd the Cast is Girish Dahiwale, Debu Pramanik,AshishAvikunthak, Swapan Pramanik,And RadhikaApte. Here the Girish Dahiwale is the guy who committed suicideAndAvikunthak used his footage he shot years back in the film. Cinematography by Setu, Manoj Peter, Indranil Mukherjee, Lalit Tiwari, Praveen K. Bangari,Arindam Bhattacharjee,Anirudh Garbyal Sound by Preetam Das, Editing by Pankaj Rishi KumarAnd Moloy Mukherjee is theAssociate Director (Avikunthak, 2010). 'Vakratunda Swaha' is the tile intentionally decided to contextualise the idea sacrifice of his friendAs Vakratunda giveA picture of lord Ganesh having face of elephantAnd Swaha refers to sacrifice in Hindu mythology. Swaha is the wife ofAgni (fire) dev who became immortalAfter marrying with LordAgniAndAcceptsAll the sacrifices presented toAgni devAs per the order of her husband. RitualsAreAlways the part ofAvikunthak's film, in this film he use to mourn thrice toAssert provocation. "Avikunthak's cinematography retains its power of provocation – for delving deeper into far offAssociations, mythical, metaphysical, metaphoricalAnd mundaneAt the same time" (Gangar). Prima-facie one mightAssume that this isA film is regarding Lord GaneshaAs the nameAppearsAnd rituals shown in the film but its seed lies somewhere else. Placing of himself i.e.Avikuntahk in the frame reflects his strongAssociation with his late friend.

ScreeningAnd Reviews :-A little reviewsAre found for this film by Chatterjee & Lal, Mumbai, 2010, by Zeenat Nagre in Time out, Mumbai, 2010, Moving Images byAnjuly Mathai in Indian Express, Mumbai, 2010And in The Hindu, Outside the boundaries by Shailja Tripathi, 2010 which refer this film in the category ofAvant-gardeAnd explain the cinematographyAnd contextualise the suicideAs sacrifice for ritual. This film gains theAcclamation in many screening in IndiaAndAbroad i.e.ApeejayArts Gallery, New Delhi, Plan9, Gallery Fotografic, Prague, Rice University Chao Film Festival, Houston, ContemporaryArt Platform, Kuwait, You Don't Belong: PastsAnd Futures of Indian Cinema, Hong Kong, Modern Monsters / DeathAnd Life of Fiction, Taipei Biennial, Human Frames, Kunst-im-Tunnel, Düsseldorf, Video in Progress 4: Feelings of Distress, Kolektiva, Ljubljana, You Don't Belong: PastsAnd Futures of Indian Cinema, Beijing, Shanghai, Guangzhou & Kunming, Generation in Transition. NewArt from India, Zacheta National Gallery forArt, Warsaw, Paris-Delhi-Bombay, Centre George Pompidou, Paris, Rotterdam International Film Festival, Jordon International Film Festival, Hamburg International Short Film Festival, Gallery Chatterjee & Lal, Mumbai (Avikunthak, 2010).

Conclusion :- The selected film isA 21 min experimental short film which isA blended portrayal of rituals, deathAnd emotional bonding. The director used reverse motion techniqueAnd different

materials like machine drain pipe, helmet, glass etc. to symbolise lord Ganesha. ConsideringAuteur theory film is knownAs director's medium, because of reflection of director's distinguish style in the film. Selection of unusual title, use of different cameraAnglesAnd movement, focus on nondiegetic sound,Amalgamation of symbolism with reality isAvikunthak's style. Director's self presentation on the screen shows immense emotional connect with the lead character. Immense symbolismApproach has beenAdopted by the director to present his personal loss (death of his friend) on the screen.Aristotle's pathos is used to communicate the pain whereas reverse motion camera effect shows the societal scenarioAnd time travel of poignant character. Non narrative storytellingAnd non diegetic sound is usedAsA style of presentation. Pre suicide photosAnd visuals of lead character usedAsA story element tell the director'sApproach of symbolism.

The film was screenedAt many places but unreached by commonAudience may be because of lessAvailability of screening platformsAnd film distribution channels. In pre OTT era, gettingA cinema screen/theatre wasA costlyAffair which createsA bottle neck forA very low budget or self funded films. Saturation in film genres, contentAnd storytelling styleAlso develop boredom inAudience. ThereforeA niche for new content, style,And genre isAlwaysAvailable. Nowadays, OTT platformsAre gaining high popularityAndA wide range of media contentAreAlso occupying placeAt this platform. This scenario may be favourable for both, the experimental film makersAs wellAs theAudience,As directors can have the massAudienceAndAudience can have the flavour of diverse film genres. Web seriesAre welcomed by theAudience because of its realisticApproachAnd unusual cinematic style. Most of the web series focuses on suspense, thrill,Action, open sex, foul language etc. In between the musicAndAspirants emotionsAre the newlyAdded content in web series whichAreAlso loved by theAudience. Bandish Bandits, 99 Songs,AspirantsAnd upcoming Rey can substantiate this observation. Henceforth, defiantly theAvant-garde would be the next in the bouquet of OTT platform.

Reference :-

1. Admin. (2014, June 7). *Filmtheory*. Retrieved July 22, 2020, from https://www.filmtheory.org/avant-garde/Avikunthak,A. (2010, January 01).A*vikunthak.com*. Retrieved July 26, 2020
2. Blaetz, R. (2018, July 18). *Oxford Biliographies*. Retrieved July 23, 2020, from https://www.oxfordbibliographies.com/view/document/obo-9780199791286/obo-9780199791286-0082.xml capgemini. (2020). *OTT Streaming Wars: Rise or Fold.* capgemini.
3. Chattopadhyay,A. (2016). Exhausting the inexhaustible: reading the structure of Samuel Beckett's ComeAnd Go throughAshishAvikunthak's Endnote. *Texual Practice*, 399-415.
4. experimenta. (n.d.). *experimenta .in*. Retrieved July 25, 2020
5. Ferreira, P. D. (2013).A*vant-gardeAnd experimental cinema: From film to digital.* Wrocław: MultimediaArtsAnd Culture.
6. Gangar,A. (n.d.). *chatarjeeandlal*. Retrieved July 25, 2020
7. Gauri, N. (2019). The rise of experimental film festivals in India. *Studies in SouthAsian Film & Media*, 7-22.
8. Gupta, G. (2015, May 31). *dnaindia*. Retrieved July 26, 2020
9. Haq, S. (2016). Independent Cinema in India:An Emerging Cinematic Form. *Südasien-Chronik - SouthAsia Chronicle* (pp. 369-394). Berlin: Humboldt-Universität zu Berlin.
10. Kaushal, S. (2020,August 21). *Cinemapreneur:A Special OTT For Indie Cinema That Promises Fair Revenue Share For Filmmakers.* Retrieved from www.forbs.com: https://www.forbes.com/sites/swetakaushal/2020/08/21/cinemapreneur-a-special-ott-for-indie-cinema-that-promises-fair-revenue-share-for-filmmakers/?sh=5dee262615cf
11. Kružić, D. (2018). Experimental (Structural Film)As the Concept of Film Innovation (Mihovil PansiniAnd Geff.A*M Journal ofArtAnd Media Studies*, 11-22.
12. KuhnA. & Westwell. (2017, February 6). *researchguides*. Retrieved July 24, 2020
13. Lal, C. &. (n.d.). *chatterjeeandlal*. Retrieved July 24, 2020
14. Morrow, J. (2013, September 13). *No Film School*. Retrieved July 23, 2020, from https://nofilmschool.com/2013/09/brief-history-experimental-cinema
15. moura, g. (n.d.). *elements of cinema*. Retrieved July 24, 2020
16. Shekhar Kapoor, Vani Tripathi,AkshatAgrawal, Vivan Sharan. (2020). *Embracing Nonliniarity: The Future of India's Entertainment Industry.* New Delhi: esya centr.

A Study on The Customer Behaviour Towards theAcceptance of Dining Out in Food & Beverage Outlets inAhmedabad During the Unlock Phase of Covid-19

Satish Singh*
Dr. Hardik Bavishi**

Abstract :- *The covid-19 pandemic hasAffected the hospitality industry the most. The majority of the restaurantsAnd hotels have closed down during this pandemic. In the unlock phase, the restaurantsAnd hotels have started their business but have failed to motivate the customers for their services. Some customers have begun to eat outside food while the majority did not prefer to eat outside; there isA massive change in the foodservice preference from dine-in to home delivery. People have trust issues related to hygiene & safety standards,And there isA psychological barrierAmong the customers due to the fear of coronavirus for dining out in restaurants. The present research will investigate the effect of Covid-19 on customers' behaviour towards the restaurants inAhmedabadAnd whether the consumers will permanently change their consumption habits due to social distancingAnd the pandemic or will go back to the older traditions of dining out. This studyAttempts toAssess the significant difference in dining preference, dining service styleAnd Frequency of dining out beforeAndAfter pandemic situation. For theAssessment for stated objectives, repeated measureAnalysis of variance technique has been executed to see the beforeAndAfter effect ofA pandemic on dining preference, dining service styleAnd Frequency of diningAnd factorsAffecting the dining out preferences.*

Keywords : – Customer, Behaviour, Covid-19, Food & Beverage Service Outlets,Ahmedabad.

INTRODUCTION :- The COVID pandemic has wreaked havoc on the restaurant industry. Thousands of restaurants have permanently closedAcross the world,And millions of people have lost their jobs. In India, the National RestaurantAssociation predicts that the pandemic will cost the country's restaurant industry $225 billion. TheseAre extraordinary times, but ifA recession isA real impetus for transformation, we should expect massive innovation in this sector toAdapt to shifting consumer behaviourAnd preferences. In the long term, it is hoped that these developments would result inA more robust industry.

When eating out, the importance of safetyAnd grooming becomes much more critical. Restaurants that uphold sanitation can be compensated with customer satisfaction, making Confidence the most crucial factor inAttracting consumers to these establishments. Restaurants will now see more conscious diners, so investing in consumer protectionAnd sanitationAnd sharing theActions will be compensated.According toA survey conducted by market research companyAMC Global, 38 per cent of customers want to help local companies more in the future. Reducing contact points when eating out while preserving the diningAtmosphere demonstrates its effortsAnd sincerity toward its clients. Customers would be more likely to dine out if you have digital tokens to skip queues, take orders without touching paper orA phone,And provide contactless payment services. The number of visits isAnother behaviour that can drasticallyAlter. Diners would choose to return to places they knowAnd trust than trying new places.AsA result,Attracting consumersAnd earning their Confidence on their first visit is critical. Customers will choose Confidence in the sites they visitAboveAll else, including ease, deals,Adventure, exploration, discovery,And experience. TRUST would win out in the end. Businesses placeA premium on customer loyalty. It is their frequent clientsAnd faithful consumers that can get the companyAnd keep themAfloat. Maintaining good consumer contact would result in more return visits. Customers who trust you will not only return more often but willAlso spread the wordAbout you. There is nothing more satisfying than gainingA brandAmbassador for your restaurant.

*** Ph.D. Research Scholar, Department of Management, Indus University,Ahmedabad**
*** * Ph.D. Research Supervisor, Indus University,Ahmedabad.**

COVID-19 wasA public health debacle, but it was perhaps the restaurant industry's toughest challenge to date. Never before have so many restaurants been forced to shut,And others will never reopen. Market demand would not immediately rebound until restrictionsAre withdrawn,According to early indications from ChinaAnd other countries where the pandemic seemed to be under control.

REVIEW OF LITERATURE :-After the spread of the novel coronavirus (COVID19) in early 2020, consumer food purchasing habits have changed dramatically. The impending danger of COVID19, which paralysed communitiesAnd neighbourhoods, prompted desperate buying, resulting in stockoutsAnd purchase restrictions on various food products (Schneeweiss & Murtaugh, 2020). TheseActions revealedA profound loss of faithAnd belief in our global food supply chain. Some believe thatAs we recover from COVID19, habits will return to normal, while others believe that behaviours will persistAnd setA different course for the food industry's future. Consumer spending on such household goods rose dramatically in the days leading up to shelter-in-placeAnd social distancing orders that prevented customers from shopping or eating out, relative to the early months of 2020 (January–February). Stockpiling habits is exacerbated by the pandemic's fear (Hobbs, 2020). Market panic purchasing started on March 10th,According to DecaData, with sales of hand sanitiser, household cleaners, facial tissue,And toilet paperAlmost 30 times higher than in previous weeks.At the end of March, sales of these products had stabilised. However, these may be due to inventory stockouts (DecaData, 2020). Furthermore, stockouts can help reinforce pessimistic customer expectationsAnd lead to increased confusion when consumersArriveAt the supermarket only to seeAisles of empty shelves with little details on when essential products may beAccessibleAgain. These findingsAre similar to those seen in the literature on customer buying behaviour in theAftermath of natural disasters suchAs storms, wildfires,And floods (Dovarganes, 2005).

According to empirical research,A sense of powerlessness leads to predictable spending habits suchAs compulsive consumption or "repetitiveAnd seemingly purposeful" purchases (American PsychiatricAssociation, 1985, p. 234; Sneath etAl., 2009). Disaster victims partake in compulsive shopping notAsA logicalApproach but ratherAsAn irrational reaction to relieveA profound fear. The COVID19 epidemic wasA perfect storm that sparked irrational reactions in retailers, mass merchandisers,And even dollar stores. Many of the data provided by the World Health Organization (WHO), the Centers for Disease Control (CDC),And federal, state,And local governments was suspect. Since viral monitoring was scarce during the early stages of the epidemic, the rates of transmissionAnd likelihood of contagion were incomplete. Finally, the economy's unpredictability, like work instabilityAnd lower wages,Added to feelings of powerlessness, which likely fueled observed customer buying habits (Furman, 2020).

Consumers' perceptions of perceived physical threats or wellbeing risksAre equated to their beliefs that consuming food wouldAffect their bodies. PersonalAnd physical issuesAbout protection,According to Novelli etAl. (2018), will playA significant role in customer decision-making. ConsumerAppetite for dining out will be reduced if the material costs of contracting COVID-19 were perceived to be high. This is because people prefer to stop being exposed to physical dangers. Meanwhile, perceived threat may exacerbate fearAnd haveA detrimental impact on behavioural purpose, leading to psychological risk beliefs. Fear, remorse,And remorseAreAll powerful emotions that influence people's behaviour,And in the case of food, fear triggered by insecurity can be more powerful than other emotions. Bad feelingsAsA consequence of potential psychological threats may therefore limit customers' desire to dine out.

Furthermore, previous study has confirmed the impact of customer perceptions of risk on their purchasing decisions. High-risk zonesAre those where infectious disease will spread due to behaviours that enhance interaction between humans,Animals,And livestock. Restaurants,As public spaces whereA large number of people congregate, may raise the risk of physical interactionAnd illnessAnd create derogatoryAttitudesAbout dining habits.According to Chen etAl(2020) .'s research on the effect of the COVID-19 pandemic on consumption habits, offline consumption declined more in cities where more

COVID-19 cases were recorded. In other terms, customers' behavioural decisions to eat outdoors can beAdverselyAffected by perceived high risks of coronavirus infection, both physicallyAnd psychologically. People's riskAssessments, on the other hand, depend heavily onA variety of sources for knowledge, which may range from official sources to personal impressions of others.AsA result, contextual standards based on the viewpoints ofA reference community, suchAs family, colleagues,AndAnalysts, may haveAn effect on consumers' risk perceptions (Morrow, 2004). We examined the correlations between subjective normsAnd perceived physical/psychological threats in this research since previous studies have presented little information on how subjective norms can influence people's riskAssessments (physical or psychological danger). We did this to further explore the relationships between them. WeAssume that if individuals in the Sustainability proximity ofA consumer, the media, or medical professionals communicate that dining out is healthy, customers may experience less threatsAnd be more likely to do so.

Restaurants, whichAre prone to cluster diseases,Also sparked widespread outrageAmong the public since the pandemic. SupposeAnyone is contaminated with the coronavirus inA restaurant. In that case, he or she can contaminate theAirAnd everything in that environment, which can easily lead to person-to-person transmission. (Shahbaz, 2020) Individuals can be subjected to the Virus if they come into contact withA polluted surface or materialAnd become infected via the mouth, nose, or eyes. Pressman, (P.; Naidu,A.S.; Clemens, R. 2020)

Close physical contactAnd food sharingActivity within restaurants could contribute to cluster infections, so prudent practises in the dining set, suchAs cleaning the surface of "high touch" places, including hand sanitiser, routine hand washing,And disinfection steps, may be necessary for reducing the risk of infection. In other words, ifA restaurant has such precautionary steps suchAs hand sanitiser, contactless payment,And different seatingAreas, customers can feel betterAnd experience fewer physical/psychological dangers, leading to beneficial intentions to dine within.AsA result, this researchAimed to confirm whether precautionary steps taken within the restaurantAffect people's perceptions of danger or their dining-out decisionsAnd provide more observational data. (Rizou, M.; Galanakis, I.M.;Aldawoud, T.M.; Galanakis, 2020)

OBJECTIVES OF THE STUDY

I. ToAssess the significant difference in dining preference beforeAndAfter pandemic situation.
II. ToAnalysis the significant difference in preference for dining service style beforeAndAfter pandemic situation.
III. To examine the significant difference in dining out in the restaurant beforeAndAfter pandemic situation.
IV. ToAssess the factorsAffecting dining preference beforeAnd duringA pandemic.

HYPOTHESES OF THE STUDY

I. There is no significant difference in dining preference beforeAndAfter pandemic situation.
II. There is no significant difference in preference for dining service style beforeAndAfter pandemic situation.
III. There is no significant difference in the Frequency of dining out in the restaurant beforeAndAfter pandemic situation.
IV. Predictable factors do notAffect dining preference during the pandemic.

RESEARCH METHODOLOGY :- The present research will investigate the effect of Covid-19 on Customer Behaviour towards theAcceptance of Dining Out in Food & Beverage Outlets inAhmedabad during the Unlock Phase of Covid-19. This studyAttempts toAssess the significant difference in dining preference, dining service styleAnd Frequency of dining out beforeAndAfter pandemic situation. For theAssessment for stated objectives repeated measureAnalysis of variance technique has been executed to see the beforeAndAfter effect of pandemic on dining preference, dining service styleAnd Frequency of dining.

Sample size :- Total 76 consumers were interviewAnd choose randomly form different restaurantAnd wereAskedAbout their dinning preferenceAnd other thingsAnd close ended questionnaire was designed for the sample collection purpose.

DINING PREFERENCE BEFORE PANDEMIC

Table 1 Frequencies of Dining Preference Before Pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Dine In	56	73.7 %	73.7 %
Home Delivery	16	21.1 %	94.7 %
TakeAway	4	5.3 %	100.0 %

If table 1 is to be observed, it shows the dining preference before the pandemic, which clearly states that before the pandemic 73.7 percent people were dining out,As there was no threat of pandemicAtAll,And 21%Approx. we're choosing the home delivery optionAnd 5.3 percent were opting the takeaway optionAlthough situation completely changed during the first lock down which was in between June toAugust. table 2 below shows that during the first unlock phase down the just 2.6 percent people they opted for dine out option,And maximum they took the home delivery option, only 19.7% percent people were interested in the takeaway option.

Table 2 Frequencies of Dining Preference During Unlock Phase (June -August) Of Pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Dine In	2	2.6 %	2.6 %
Home Delivery	59	77.6 %	80.3 %
TakeAway	15	19.7 %	100.0 %

Table 3 Frequencies of dining preference during unlock phase (September - November)

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Dine In	13	17.1 %	17.1 %
Home Delivery	50	65.8 %	82.9 %
TakeAway	13	17.1 %	100.0 %

Table 4 Frequencies of dining preference during unlock phase (December- February)

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Dine In	36	47.4 %	47.4 %
Home Delivery	30	39.5 %	86.8 %
TakeAways	10	13.2 %	100.0 %

Interpretation

table no 3And 4 clearly indicated that during unlock phase (September - November) just 17%Approx. opted for Dine in take option which was much higher than first unlock phase, still 65.8% opted for home delivery option onlyAlthough table 4 has some different observations where dine in option increasedAnd 47.4%

people shown Confidence for dine in option during unlock phase (December - February)And 39.5% were interested in home deliveryAnd takeAway was only 13.2%.

PREFERENCE FOR DINING SERVICE STYLE

Table 5 Frequencies of preference for dining service style before pandemic.

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Buffet service	8	10.5 %	10.5 %
Self service	7	9.2 %	19.7 %
Table service	61	80.3 %	100.0 %

Table 5 shows preference for dining service style before pandemic situation where 10.5% people were opting buffet servicesAnd 9.2 % had self-serviceAnd table service was maximum 80.3% which is maximumAmong other options. If table no 6 is to be observed this can be concluded that Frequencies of preference for dining service style during unlock phase (June-August) was 7.9% for buffet serviceAnd maximum opted for Contactless table service 61.8%, 30.3% opted for self-service.

Table 6 Frequencies of preference for dining service style during unlock phase (June-August) Pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
Buffet service	6	7.9 %	7.9 %
Contactless table service	47	61.8 %	69.7 %
self service	23	30.3 %	100.0 %

Table 7 Frequencies of preference for dining service style during unlock phase (September- November) of Covid-19

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
buffet service	7	9.2 %	9.2 %
contactless table service	41	53.9 %	63.2 %
self service	28	36.8 %	100.0 %

Table 8 Frequencies of preference for dining service style during unlock phase (December - February)

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
buffet service	9	11.8 %	11.8 %
contactless table service	46	60.5 %	72.4 %
self service	21	27.6 %	100.0 %

Preference for dining service style during unlock phase (September- November) was 9.2% for buffet serviceAnd contactless table service has 53.9% whereas 36.8% was for self-service. Table 8 shows that preference for dining service style during unlock phase (December - February) was 11.8% for buffet serviceAnd for contactless table service was 60.5%And 27.6% was for self-service.

FREQUENCY OF DINING OUT IN THE RESTAURANT

Table 9 Frequencies of Frequency of dining out in the restaurant before pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
onceA month	16	21.1 %	21.1 %
onceA week	18	23.7 %	44.7 %
once in 15 days	26	34.2 %	78.9 %
twiceA week	16	21.1 %	100.0 %

Table 10 Frequencies of Frequency of dining out in the restaurant from June-August of Covid-19 pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
OnceA week	4	5.3 %	5.3 %
TwiceA week	1	1.3 %	6.6 %
none	55	72.4 %	78.9 %
onceA month	14	18.4 %	97.4 %
once in 15 days	2	2.6 %	100.0 %

Table 11 Frequencies of Frequency of dining out in the restaurant from September- November of Covid-19 pandemic

Levels	Counts	%of Total	Cumulative %
none	31	40.8 %	40.8 %
onceA month	32	42.1 %	82.9 %
onceA week	5	6.6 %	89.5 %
once in 15 days	7	9.2 %	98.7 %
TwiceA week	1	13%	100%

Table 12 Frequencies of Frequency of dining out in the restaurant from December- February of Covid-19 pandemic

Levels	Counts	% of Total	Cumulative %
none	18	23.7 %	23.7 %
onceA month	28	36.8 %	60.5 %
onceA week	5	6.6 %	67.1 %
once in 15 days	22	28.9 %	96.1 %
twiceA week	3	3.9 %	100.0 %

RESULTANDANALYSIS

Hypothesis I

There is no significant difference in Frequency of dining out in the restaurant beforeAndAfter pandemic situation.

Within Subjects Effects

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
RM Factor 1	32.8	3	10.933	35.7	< .001
Residual	69.0	225	0.306		

Note. Type 3 Sums of Squares

Interpretation

Here repeated measure ofAnalysis of variance was executed toAssess significant difference in dining preference beforeAndAfter pandemic situation.And p value of < .001 indicated that null hypothesis can be rejectedAnd can conclude that there is significant difference in dining preference beforeAndAfter pandemic situation. Therefore, can be concluded that people change their preference due to pandemic.

Hypothesis II

There is no significant difference in preference for dining service style beforeAndAfter pandemic situation.

Within Subjects Effects (Note. Type 3 Sums of Squares)

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
RM Factor 1	276.6	3	92.215	249	< .001
Residual	83.4	225	0.370		

Between Subjects Effects (Note. Type 3 Sums of Squares)

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
Residual	46.9	75	0.626		

P value of .001 which is less than .005 therefore null is to rejected that states that there is no significant difference in preference for dining service style beforeAndAfter pandemic situationAndAlternative is to beAccepted where we can conclude that there is significant difference in preference for dining service style beforeAndAfter pandemic situation.

Hypothesis III

There is no significant difference in Frequency of dining out in the restaurant beforeAndAfter pandemic situation.

Within Subjects Effects

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
RM Factor 1	591	3	197.07	105	< .001
Residual	422	225	1.87		

Note. Type 3 Sums of Squares

Between Subjects Effects

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
Residual	400	75	5.33		

Note. Type 3 Sums of Squares

P value of .001 states that there is significant difference in Frequency of dining out in the restaurant beforeAndAfter pandemic situation during unlock period, hence we reject the null hypothesisAndAccept theAlternative hypothesis.

Hypothesis IV

Predictable factors do notAffect dining preference during the pandemic.

Model Fit Measures

			Overall Model Test			
Model	**R**	**R²**	**F**	**df1**	**df2**	**p**
1	0.921	0.849	41.3	9	66	< .001

Above table indicated the positiveAssociation between the predictableAnd dependent variablesAnd same is confirmed with 0.932 value of R, which is basically value of correlation,And dependent variable is explain by 84% by predicable variables.And value of .001 is confirm the model fit.

OmnibusANOVA Test

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	p
Availability of different cuisine/variety of dishes	0.0175	1	0.0175	0.09679	0.757
The low price of the dishesAttracts for dining out	0.1601	1	0.1601	0.88712	0.350
Ambiance, theme,And decorAn essential factor for dining out	0.0575	1	0.0575	0.31871	0.574
Quality of food & beverage items	0.0152	1	0.0152	0.08444	0.772
RestaurantsAre practicing the safety & hygiene standard	34.9643	1	34.9643	193.69150	< .001
Food & beverage outlets will beAble to build trustAgain with	0.3753	1	0.3753	2.07902	0.154
Reducing the price of dishes may motivate the customer for dining out	0.6280	1	0.6280	3.47880	0.067
Reducing the numbers of tables will help in maintaining social distancingAnd spread of the Virus	9.56e-4	1	9.56e-4	0.00529	0.942
Brand name of the restaurantAsA motivating tool for Dining ou	0.1757	1	0.1757	0.97327	0.327
Residuals	11.9140	66	0.1805		

Note. Type 3 sum of squares

Model Coefficients - dining preference

Predictor	Estimate	SE	t	p	Stand. Estimate
Intercept	0.18505	0.2421	0.7643	0.447	
Availability of different cuisine/variety of dishes	0.01929	0.0620	0.3111	0.757	0.01805

Model Coefficients - dining preference

Predictor	Estimate	SE	t	p	Stand. Estimate
The low price of the dishesAttracts for dining out	-0.05367	0.0570	-0.9419	0.350	-0.05293
Ambiance, theme,And decorAn essential factor for dining out	-0.04047	0.0717	-0.5645	0.574	-0.03612
Quality of food & beverage items	0.01976	0.0680	0.2906	0.772	0.01603
RestaurantsAre practicing the safety & hygiene standard	0.93044	0.0669	13.9173	< .001	0.88236
Food & beverage outlets will beAble to build trustAgain	0.12523	0.0869	1.4419	0.154	0.10911
Reducing the price of dishes may motivate the customer for dining out	-0.09301	0.0499	-1.8652	0.067	-0.10594
Reducing the numbers of tables will help in maintaining social distancingAnd spread of the Virus	-0.00498	0.0685	-0.0728	0.942	-0.00480
Brand name of the restaurantAsA motivating tool for Dining out	0.07284	0.0738	0.9865	0.327	0.05932

Availability of different cuisine/variety of dishes, Quality of food & beverage items, RestaurantsAre practicing the safety & hygiene standard, Food & beverage outlets will beAble to build trustAgainAnd Brand name of the restaurantAsA motivating tool for dinning preference, means if these mentioned variableAre to be increased they will be factors those will decide the dining preference for people,And this isAlso to be observed that most of the peopleAre giving high priority to safetyAnd hygiene. Factors other than mentioned factor having negativeAssociation with the dining preference.

SUGGESTIONS :- When it comes to choosing whenAnd how much to consume, it's more critical than ever to consider your overall health. In fact, search interest for "is food delivery safe" has increased since the beginning of March. It's important to convince customers that you understand their concernsAbout safetyAnd that you're working hard toAddress the issue.At this tough time, people don't want to hearAbout meal options. You're providing the kind ofAssistance they'llAppreciate by responding to their requests withAppropriate contact informationAnd secure, simple choices.

CONCLUSION :- Food safetyAnd hygieneAre two factors which consumerAre keeping on high priority particularlyAfter pandemic situation,And significant difference was observed in the dining preference, dining service styleAnd Frequency of dining out in the restaurantAfter pandemic situation. Therefor this can be concluded that Customer Behaviour Towards theAcceptance of Dining Out in Food & Beverage Outlets may changes permanentlyAnd factors which were important before pandemic may not remainAfter pandemic gets overAnd factors which shows positive value in model coefficients may remain deciding factors forAcceptance of dining out.

References :-

- Bagozzi, R.P.; Yi, Y. On the evaluation of structural equation models. J.*Acad. Mark. Sci.* 1988, 16, 74–94. [CrossRef]
- Fornell, C.; Larcker, D.F. Evaluating structural equation models with unobservable variablesAnd measurement error. J. *Mark. Res.1981*, 18, 39–50. [CrossRef]
- Hofstede Insights. Country Comparison. 2020.Available online: https://www.hofstede-insights.com/country-comparison/china,south-korea (accessed on March 10th 2021).
- Marty, L.; de Lauzon-Guillain, B.; Labesse, M.; Nicklaus, S. Food choice motivesAnd the nutritional quality of diet during the COVID-19 lockdown in France.A*ppetite* 2020, 157, 105005. [CrossRef].

- Morrow Jr, J.; Hansen, M.H.; Pearson,A.W. The cognitiveAndAffectiveAntecedents of general trust within cooperative organisations. J. Manag. Issues 2004, 16, 48–64.
- Müller, J.M.; Kiel, D.; Voigt, K.-I. What drives the implementation of Industry 4.0? The role of opportunitiesAnd challenges in the context of sustainability. *Sustainability* 2018, 10, 247. [CrossRef]
- Nguyen, N.; Nguyen, H.V.; Nguyen, P.T.; Tran, V.T.; Nguyen, H.N.; Nguyen TM, N.; Cao, T.K.; Nguyen, T.H. Some Key FactorsAffecting Consumers' Intentions to Purchase Functional Foods:A *Case Study of Functional Yogurts in Vietnam. Foods* 2020, 9, 24. [CrossRef].
- Park, C. Efficient or enjoyable? Consumer values of eating-outAnd fast food restaurant consumption in Korea. *Int. J. Hosp. Manag*. 2004, 23, 87–94. [CrossRef]
- Poelman, M.P.; Gillebaart, M.; Schlinkert, C.; Dijkstra, S.C.; Derksen, E.; Mensink, F.; de Vet, E. Eating behaviorAnd food purchases during the COVID-19 lockdown:A cross-sectional studyAmongAdults in the Netherlands.A*ppetite* 2020, 157, 105002. [CrossRef] [PubMed].
- Pressman, P.; Naidu,A.S.; Clemens, R. COVID-19And food safety: Risk managementAnd future considerations. *Nutr. Today* 2020, 55, 125–128. [CrossRef]
- Ravlin, E.C.; Liao, Y.; Morrell, D.L.;Au, K.; Thomas, D.C. Collectivist orientationAnd the psychological contract: Mediating effects of creditor exchange ideology. *J. Int. Bus. Stud*. 2012, 43, 772–782. [CrossRef].
- Rizou, M.; Galanakis, I.M.;Aldawoud, T.M.; Galanakis, C.M. Safety of foods, food supply chainAnd environment within the COVID-19 pandemic*. Trends Food Sci. Technol*. 2020, 102, 293–299. [CrossRef]
- Shahbaz, M.; Bilal, M.; Moiz,A.; Zubair, S.; Iqbal, H.M. Food SafetyAnd COVID-19: Precautionary Measures to Limit the Spread of CoronavirusAt Food ServiceAnd Retail Sector. *J. PureAppl. Microbiol*. 2020, 14, 6203. [CrossRef]
- Thompson, R.; Barclay, D.; Higgins, C.A. The partial least squaresApproach to causal modeling: Personal computerAdoptionAnd useAsAn illustration. *Technol. Stud. Spec. Issue Res. Methodol*. 1995, 2, 284–324.

ꟷ★ꟷ

पत्रिका में शोध-लेख/ आलेख प्रकाशन के नियम

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख/ आलेख मौलिक हो, स्तरीय हो, प्रकाशन के योग्य हो एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख/आलेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के O Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पीडीएफ फाइल बनाकर सीडी या डीवीडी में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचना दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख/आलेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचना दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेख/आलेख को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से आर्थिक सहयोग भी अपेक्षित रह सकता है, क्योंकि पत्रिका को अभी कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. हिन्दी एवं संस्कृत के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–3000 और अंग्रेजी के शोध–लेखों/आलेखों के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।
8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

संपादक

भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ

(राष्ट्रीय वेबिनार, 12-14 जनवरी 2021)

विद्याश्री न्यास के साम्वत्सर आयोजनों में से एक 'राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी और भारतीय लेखक–शिविर' इस वर्ष महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संयुक्त तत्वावधान में 'भारत में भाषा–चिंतन की परंपराएँ' विषय पर केंद्रित तीन दिवसीय (12–14 जनवरी 2021) राष्ट्रीय वेबिनार के रूप में आयोजित हुआ। उद्घाटन सत्र का शुभारंभ प्रो.रजनीश कुमार शुक्ल, कुलपति, म. गां. अं. हि. वि. वि. वर्धा और डॉ. दयानिधि मिश्र, सचिव विद्याश्री न्यास द्वारा माँ सरस्वती एवं पं. विद्यानिवास मिश्र के चित्र पर माल्यार्पण, डॉ. जगदीश नारायण के मंगलाचरण और डॉ. अरुणेश नीरन के स्वागत भाषण से हुआ। विषय–प्रस्तावना करते हुए प्रो. हनुमान प्रसाद शुक्ल ने भारतीय भाषा–चिंतन के विभिन्न आयामों का उद्घाटन किया। अपने बीज वक्तव्य में प्रो. दिलीप सिंह ने भाषा–विमर्श के इतिहास के साथ ही उसके समकालीन आयामों से भी परिचित कराया। मुख्य अतिथि प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल ने भाषा के वाक्य–पक्ष की महत्ता निरूपित करते हुए अभिव्यक्ति और संप्रेषण–विधान पर विमर्श की नई दिशाओं की तरफ संकेत किए। अध्यक्षीय संबोधन में डॉ. उदय प्रताप सिंह ने भाषा–चिंतन की लब्धियों की चर्चा करते हुए इस दिशा में अनवरत अनुसंधान पर बल दिया।

यह राष्ट्रीय वेबिनार क्रमशः पाँच सत्रों 'वेद–वेदांग में भाषा–चिंतन', 'भाषा–चिंतन की दार्शनिक पृष्ठभूमि', व्याकरणिक भाषा–चिंतन, 'काव्यशास्त्र में भाषा–चिंतन', 'भारत में भाषा–चिंतन की परंपराएँ' के अन्तर्गत देश के जाने–माने मूर्धन्य विद्वानों प्रो. विंध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, प्रो. राममूर्ति चतुर्वेदी, प्रो. के. ई. धरणीधरन, प्रो. कमलाकांत त्रिपाठी, प्रो. सच्चिदानंद मिश्र, डॉ. देवेन्द्र कुमार तिवारी, डॉ. बलराम शुक्ल, प्रो. मिथिलेश चतुर्वेदी, प्रो. गोपबंधु मिश्र, प्रो. गायत्री प्रसाद पाण्डेय, प्रो. रमेशचंद्र पण्डा, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. अच्युतानंद मिश्र, प्रो. गिरीश्वर मिश्र आदि के व्याख्यानों, 'विद्यानिवास मिश्र स्मृति व्याख्यान', के अन्तर्गत 'लोक का वैभव : अभिव्यक्ति और अनुभव' विषय पर डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी, के व्याख्यान, सत्रांत में काव्य–गोष्ठी और डॉ. दयानिधि मिश्र के धन्यवाद–ज्ञापन के साथ सपन्न हुआ। इस राष्ट्रीय वेबिनार में देश–विदेश के तमाम प्रतिभागियों ने ऑनलाइन सहभागिता–कर कार्यक्रम को सफल बनाया।

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

आलोचन दृष्टि प्रकाशन

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

दूरभाष : 09580560498 / 09451949951 / 7376267327